तान्त्रिकगुरु

परमहंस परिव्राजकाचार्य

अनन्तश्री स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव

प्रणीत

तान्त्रिक गुरु

या

तन्त्र और साधना-पद्धति

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्व या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा।।

-मार्कण्डेय चण्डी

सम्पादक

परमहंस परिव्राजक

डा. स्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वती

वेदान्ताचार्य, व्याकरणतीर्थ, शास्त्रचक्रवर्ती (Ph.D)

प्रकाशक-
डा. स्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वती
श्री श्री निगमानन्द विद्यानिकेतन
बी. २/१६०-सी-१-बी भदैनी, वाराणसी- २२१००१ (उ.प्र.)

चतुर्थ संशोधित संस्करण रासपूर्णिमा, संवत् २०५७

मूल्य : पचास रुपये

प्राप्तिस्थान-
१. श्री श्री निगमानन्द विद्या निकेतन
बी २/१६०-सी-१-बी भदैनी, वाराणसी - २२१००१
२. श्री भास्कर ज्योति पाल
११७/२ ए. मनोहर पुकुर रोड, कलिकाता - ७०००२६
३. सर्वोदय बुक स्टाल
हावड़ा स्टेशन, हावड़ा, प. बंगाल
४. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
३८/ U.A. जवाहरनगर, बंगलो रोड, दिल्ली - ११०००७
५. धार्मिक पुस्तकालय
विश्राम बाजार, मथुरा (उ.प्र.)
६. शिवानन्द एम्पोरियम
स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश (उ.प्र.)
७. अम्बिका पुस्तक सदन
शंकर आश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार - २४९४०७

मुद्रक : डिवाइन प्रिण्टर्स
बी. १३/४४ सोनारपुरा, वाराणसी, फोन : ०५४२-४५०६७१

ॐ तत् सत्

उत्सर्ग पत्र

मेरी गरिमामयी माँ! परलोक प्रस्थान करते समय तुमने मुझे जगज्जननी की गोद में सौंप दिया था। उसने अपनी मङ्गलमय गोद में मुझे किस यत्न से पाला है, उसी का निदर्शन स्वरूप यह क्षूद्र पुस्तक तुम्हारे गुलाबी चरणों में निवेदन कर रहा हूँ।

माँ! जगज्जननी की गोद में बैठकर मुझे ज्ञात हुआ कि तुम्हारी त्रिमूर्ति (कन्या, जाया, माता) उनका ही भिन्न-भिन्न भावों का विकास मात्र है। वस्तुतः तुम अभिन्न हो। इसलिए पुकार रहा हूँ माँ, इस शिशु का भार अब तुझे लेने की आवश्यकता नहीं, अब मैं ही तेरा भार ले लूँगा। मैं ही तुझे अपने हृदय में बैठाकर नयनों से पहरा लगाऊँगा। हे गौरि! मेरी मनोमयी देवि! प्रकटित हो- मैं तुम्हें एक बार देख सकूँ। मेरी साधना की साध को पूर्ण करो माँ। मेरे अन्दर ही अन्दर प्रकाशित हो कि प्राण के साथ तुम्हें उपलब्ध करूँ। हे प्रेममयि! मेरी मनोमयी बालिका का रूप लेकर मेरे हृदयासन पर विराजो- नृत्य करो और मैं आत्महारा होकर, पागल बन कर तुम्हें देखता रहूँ। मेरे इस हठ के समक्ष ब्रह्मपद भी अति तुच्छ है। माँ, सुन ले मेरी पुकार।

"क्षण भर तो हृदय में बैठ, बिहँस कर बोलो बात
आओ, आकर मेरा उपहार ग्रहण करो।"

तुम्हारा प्यारा पुत्र
नलिनीकान्त

T

ग्रन्थकार का वक्तव्य

सृष्ट्वाऽखिलं जगदिदं सदसत्स्वरूपं
शक्त्या स्वया त्रिगुणया परिपाति विश्वम्।
संहृत्य कल्पसमये रमते तथैका
तां सर्वविश्वजननीं मनसा स्मरामि ॥

जिनसे यह जगत् सृष्ट हुआ है, जिनको अवलम्बन करके यह अवस्थित है, कल्प के अन्त में जिनमें फिर यह लय होगा; ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर जिनकी आराधना करते हैं, उसी विंध्याद्रिनिलया महामाया के कृपालब्ध यह 'तान्त्रिकगुरु' सर्वसाधारणों के करों में परम आदर के साथ अर्पण कर रहा हूँ।

बङ्गदेश में तन्त्रशास्त्र का बड़ा ही प्रभाव है। शाक्त, शैव, वैष्णव आदि सभी साकार उपासक तन्त्रशास्त्र के अनुसार ही दीक्षा ग्रहण करते हैं। जप, पूजा, याग आदि अधिकांश ही तन्त्रोक्त मतानुसार अनुष्ठित होते हैं। कलियुग में तंत्रोक्त उपासना ही प्रशस्त तथा शीघ्र फलदायक होती है।

कृते श्रुत्युक्तमार्गः स्यात् त्रेतायां स्मृतिसंभवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्मतः॥

सत्यगुग में वेदोक्त, त्रेतायुग में स्मृत्युक्त, द्वापर में पुराणोक्त तथा कलियुग में तन्त्रोक्त विधि के अनुसार क्रियाएँ सम्पन्न की जाती है। अतएव कलियुग में तन्त्रमार्ग के अतिरिक्त अन्यान्य मार्ग प्रशस्त नहीं होते। सम्भवतः इसी शास्त्र वचन को अवलम्बन बना कर इस देश में तन्त्र का प्रभाव फैला है और तन्त्रशास्त्र के मतानुसार ही सन्ध्याह्निक, तपः, जप, पूजा का अनुष्ठान आज भी होता है। किन्तु बड़े ही दुःख का विषय है कि तन्त्रशास्त्र का इतना प्राधान्य रहने पर

ग्रन्थकार का वक्तव्य

सृष्ट्वाऽखिलं जगदिदं सदसत्स्वरूपं
शक्त्या स्वया त्रिगुणया परिपाति विश्वम्।
संहृत्य कल्पसमये रमते तथैका
तां सर्वविश्वजननीं मनसा स्मरामि ॥

जिनसे यह जगत् सृष्ट हुआ है, जिनको अवलम्बन करके यह अवस्थित है, कल्प के अन्त में जिनमें फिर यह लय होगा; ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर जिनकी आराधना करते हैं, उसी विंध्याद्रिनिलया महामाया के कृपालब्ध यह 'तान्त्रिकगुरु' सर्वसाधारणों के करों में परम आदर के साथ अर्पण कर रहा हूँ।

बङ्गदेश में तन्त्रशास्त्र का बड़ा ही प्रभाव है। शाक्त, शैव, वैष्णव आदि सभी साकार उपासक तन्त्रशास्त्र के अनुसार ही दीक्षा ग्रहण करते हैं। जप, पूजा, याग आदि अधिकांश ही तन्त्रोक्त मतानुसार अनुष्ठित होते हैं। कलियुग में तंत्रोक्त उपासना ही प्रशस्त तथा शीघ्र फलदायक होती है।

कृते श्रुत्युक्तमार्गः स्यात् त्रेतायां स्मृतिसंभवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्मतः॥

सत्यगुग में वेदोक्त, त्रेतायुग में स्मृत्युक्त, द्वापर में पुराणोक्त तथा कलियुग में तन्त्रोक्त विधि के अनुसार क्रियाएँ सम्पन्न की जाती है। अतएव कलियुग में तन्त्रमार्ग के अतिरिक्त अन्यान्य मार्ग प्रशस्त नहीं होते। सम्भवतः इसी शास्त्र वचन को अवलम्बन बना कर इस देश में तन्त्र का प्रभाव फैला है और तन्त्रशास्त्र के मतानुसार ही सन्ध्याह्निक, तपः, जप, पूजा का अनुष्ठान आज भी होता है। किन्तु बड़े ही दुःख का विषय है कि तन्त्रशास्त्र का इतना प्राधान्य रहने पर

भी आजकल हमारे यहाँ तन्त्रज्ञ गुरु कदाचित् ही मिलते हैं। क्योंकि केवल मात्र पाण्डित्य या बुद्धि के द्वारा तन्त्र समझने या समझाने की क्षमता नहीं होती। वस्तुतः गुरुमुख से यदि कोई तन्त्रशास्त्र का उपदेश न सुने तो उसका यथार्थ अर्थ या मर्म ग्रहण करना असम्भव सा है। यही कारण हैं कि इस प्रकार के प्रत्यक्ष फलप्रद शास्त्रपद्धति के अनुसार दीक्षा ग्रहण या क्रिया-कलाप का अनुष्ठान करने पर भी फल की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि सच्चे तंत्रज्ञ गुरु के अभाव में यथारीति क्रिया-कलाप का अनुष्ठान सम्पन्न नहीं हो पाता। फलतः शास्त्रग्रंथों से लोगों का विश्वास घटता जा रहा है। देश की इस दुर्दशा को देखकर मेरे कुछ परिचित शिक्षित साधनापिपासु सज्जनों ने मुझे **ज्ञानीगुरु** तथा **योगीगुरु** की तरह तन्त्रशास्त्र के सम्बन्ध में भी एक पुस्तक लिखने का अनुरोध किया। उन्हीं के उत्साह से उत्साहित होकर इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने का साहस मिला। मैं कहाँ तक सफल हो सका हूँ, उसका विचार सुधी साधक ही करेंगे।

हमारे देश में कई प्रकार के तन्त्रशास्त्र प्रचलित हैं। किन्तु मैंने किसी निर्दिष्ट ग्रन्थ का अनुसरण नहीं किया है। जिन क्रिया-कलापों के माध्यम से मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति होती है और गुरुजी से मुझे जो कुछ मिला है, उसी का कुछ अंश साधारण लोगों के निमित्त प्रकाशित कर रहा हूँ। जो सबके करने योग्य तथा सहजसाध्य है; उन्हें युक्ति के साथ यहाँ लिखा गया है। तन्त्रशास्त्र आर्य-ऋषियों की अलौकिक सृष्टि है। इन्हें समाहित चित्तसे पढ़ने पर विस्मित तथा स्तम्भित होना पड़ता है। ज्ञानी हो या अज्ञानी- सबकी समस्याओं का हल तंत्र में मिलता है। तंत्र साधना-शास्त्र है। उसे हम प्रधानतः दो हिस्सों में बाँट सकते हैं- प्रवृत्ति की साधना और निवृत्ति की साधना।

प्रवृत्ति मार्ग में रोग, ग्रहशान्ति, बाजीकरण, रसायन, द्रव्यगुण, षट्कर्म (मारण, स्तम्भन, सम्मोहन, उच्चाटण, वशीकरण तथा आकर्षण) और देव, दानव, भूत, प्रेत, पिशाच आदि की साधना प्रणाली विवृत्त हुये हैं। मैं यह नहीं चाहता कि असंयतचित्त अविद्याविमोहित मानव-समाज में अविद्या के साधनों को व्यक्त कर साधक की विरक्ति का हेतु बनूँ। निवृत्ति मार्ग की साधना-प्रणाली ही मेरे प्रतिपाद्य विषय हैं। नित्य-नैमित्तिक क्रियावान् साधक निवृत्ति मार्ग का अधिकारी है। आज भी समाज में नित्यनैमित्तिक क्रियायें प्रचलित हैं। अतः उन्हें यहाँ लिखकर मैं इस पुस्तक के कलेवर को बढ़ाना नहीं चाहता। यहाँ मैंने केवल साधना-पद्धति को ही प्रकाशित किया है। आशा है कि ग्रंथ में लिखी गयी साधना प्रणालियों के द्वारा साधना करने पर साधकगण क्रमशः आत्मज्ञान लाभ कर मानव जीवन के पूर्णत्व को प्राप्त कर पावेंगे।

साधारण लोगों की अवगति के लिए गृहस्थों के नित्य प्रयोजनीय प्राप्तव्यों के निमित्त प्रवृत्तिमार्ग की दो-चार साधना-प्रणालियाँ परिशिष्ट में दे दी गई है। मैं चाहता हूँ कि आप साधना के द्वारा शास्त्रवाक्य की सत्यताको उपलब्ध करें।

इस पुस्तक को तीन भागों में बाँटा गया है। पहले भाग में तंत्र तथा तंत्रोक्त साधनादि की युक्ति, द्वितीय भागमें साधना-प्रणाली तथा परिशिष्ट में साधारण मनुष्य के सुख तथा स्वास्थ्य की उन्नति के उपायों का वर्णन मिलेगा। प्रतिपाद्य विषयों की सत्यता के प्रमाण स्वरूप मैंने तन्त्रशास्त्र तथा पुराण शास्त्रों की युक्तियों को उद्धृत किया है। यथासम्भव सहज तथा प्रचलित सरल भाषा में मैंने लिखने का प्रयत्न किया है। अब गुणग्राही साधकवर्ग ही विवेचन करेंगे कि मैं

कहाँ तक सफल हो सका हूँ।

अन्त में यह स्पष्ट रूप से कहता हूँ कि आध्यात्मिक तत्त्वों को हृदयंगम करने के लिए विधिवत् चित्तशुद्धि की अत्यन्त आवश्यकता है। भगवान् की कृपा बिना साधक-तत्त्वों को हृदयंगम करने का दूसरा कोई पथ नहीं हैं। साधना-पिपासु व्यक्ति यदि मेरी वर्णाशुद्धियाँ, भाषादोष आदि क्षुद्र विषयों की आलोचना में वृथा समय न बिताकर स्वकार्य में व्रती हो सकें तो मैं अपना परिश्रम सार्थक समझूँगा। साधक यदि किसी विषय को समझ न सकें तो मेरे निकट आने पर मैं उन्हें सादर यत्न के साथ समझाने या साधन-तत्त्व की शिक्षा देने में कोई त्रुटि नहीं रखूँगा।* किमधिकविस्तरेण।

ढाका, शान्ति आश्रम 25वाँ श्रावण, झूलन (राखी) पूर्णिमा 1318 बंगाब्द	भक्तपदारविन्दभिक्षु **दीन-निगमानन्द**

** पूज्यपाद ग्रन्थकार गत १९३५ साल में महासमाधि लिये हैं।*

—प्रकाशक

T

जयगुरु

निवेदन

अनादिकाल से ही मानव समाज को अभीष्ट मार्ग प्रदर्शनार्थ बहु मार्गदर्शक महापुरुष धराधाम को पवित्र किये हैं। चाहे किसी भी मार्ग में कोई क्यों न जाये, अन्तिम लक्ष्य सभी का एक ही है। सीधा अपने स्वरूप को जानकर जन्म-मृत्यु के चक्कर से छूटना किसी को अभीष्ट है तो भोग-वासनाओं की पूर्ति करते हुए अन्त में मुक्ति मिले यह भी किसी की आकांक्षा है। किसी को तो जन्म-जन्म में यहाँ तक स्वर्गादि परलोक में भोग ही प्राप्त हो इसी प्रकार वासना है। परन्तु नारकीय कष्ट किसी को भी अभीष्ट नहीं। सुख जितने भी प्राप्त हों स्वरूपानन्द की अनुभूति भिन्न दुःखका आत्यन्तिक अभाव कभी भी किसी को नहीं हुआ है।

वेदान्त या उपनिषद् की साधन-प्रक्रिया में स्वरूपज्ञान या ब्रह्मज्ञान प्राप्ति का उपाय श्रवण-मनन-निदिध्यासन द्वारा महावाक्य जन्य बोधको बताया गया है। परन्तु वहीं पर केनोपनिषदादि में हैमवती उमा की आराधना से ब्रह्मज्ञान के लिए शक्ति प्राप्ति की बात भी दर्शायी गई है। वस्तुतः अध्यात्ममार्ग में अग्रसर होने के लिए भी शक्ति की आवश्यकता है। शक्ति के बिना अग्नि सूखे तिनके को भी जला नहीं सकी, वायु तिनके को उड़ा नहीं सकता तो जीव 'महतो महीमान्' या 'अणोरणीयान्' अर्थात् जो महान् से भी अतीव महान् अथवा सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म सुतरां इन्द्रिय मनका भी अगोचर है उसे कैसे जान सकता है? इसलिए कोई भी कार्य सम्पादन करने के लिए शक्ति की आवश्यकता है।

आधुनिक समाज में तन्त्रके नाम सुनने पर साधारण लोग डर जाते हैं। क्योंकि वर्तमान समाज में प्रायः तान्त्रिक ही मारण-उच्चाटन-वशीकरण आदि षट्कर्म तक ही सीमित रहते हैं। इससे आगे उनकी

गति ही नहीं है। तत्त्वज्ञान से किसी भी प्रकार सम्बन्ध नहीं है। यह तन्त्रशास्त्र का लक्ष्य नहीं कहा जा सकता। श्राद्धादि क्रिया में गीता-उपनिषत् पाठ की तरह यह भी जीविका मात्र है।

वस्तुतः तन्त्रशास्त्र ब्रह्मविद्या का ही ज्ञापक शास्त्र है। इस बात को युक्ति और प्रमाणों के साथ इस ग्रन्थ में प्रतिपादित किया गया है। उसी के साथ कुछ जीवनोपयोगी चमत्कारों की प्रक्रिया भी दर्शायी गयी है।

अनन्त श्री स्वामी निगमानन्द सरस्वती देवजी अपने जीवन का चरमलक्ष्य वेदान्त के निर्विकल्प समाधिद्वारा ब्रह्मात्मैक्य बोध को प्राप्त कर कृतकृत्य हुए थे। पर उनका साधन जीवन आरम्भ हुआ था तन्त्रशास्त्रानुसार महाशक्ति जगज्जननी की आराधना द्वारा । जिसका पूर्ण विवरण 'माँ की कृपा' ग्रन्थ में उपलब्ध है। वहीं से सोपान क्रम से वे ज्ञान-योग एवं प्रेम या भक्ति साधना के प्रत्येक स्तर को पार करते हुए तारापीठ महाश्मशान में जिन्हें जगज्जननी तारा के रूप में साक्षात्कार किये थे उन्हें ही जगदाकार में सर्वदा अनुभव करने लगे। यह ब्रह्मविद्या साधारणों को सुलभ कराने के लिए ही उन्होंने इस ग्रन्थरत्न की रचना की है।

प्रायः नब्बे वर्ष पूर्व यह ग्रन्थ प्रथम बंगला भाषा में प्रकाशित हुआ है, अब तक इसका हजारों की संख्या में प्रायः १४/१५ संस्करण प्रकाशित हो चुका है। हिन्दी, उड़िया, असमिया आदि भाषाओं में भी इसका कई संस्करण निकल चुका है। इसका पूर्व हिन्दी संस्करण प्रकाशन का भार सारस्वत मठ के ब्रह्मलीन महन्त श्रीमत् स्वामी सिद्धानन्द सरस्वती जी मुझे अर्पण किए थे, उस समय एकबार संशोधन किया गया था, परन्तु उसमें भी भाषागत एवं विषयगत बहुत्रुटि नजर में पड़ा, यहाँ तक कि इस हिन्दी अनुवाद का जो मूल वर्त्तमान में उपलब्ध बंगला भाषा के तान्त्रिक गुरुमें दिया गया बहुमन्त्रों की अशुद्धता में भी दृष्टि

पड़ी, शायद प्रकाशनगत त्रुटि के कारण बाद के संस्करणों में अशुद्धि की संख्या बढ़ी है। इन सब बातों को लक्ष्य रखते हुए पुनः अनुवाद किया गया। पर अन्य ग्रन्थों की तरह यहाँ पर भी पूर्व अनुवाद की पूर्ण सहायता ली गई है। अनुवाद में प्रयास रखा गया कि प्रत्येक 'मन्त्र शुद्ध हो तथा प्रत्येक पंक्ति अपना वास्तविक अर्थ प्रकट करें'। बहुत प्रयास के बाद भी त्रुटिया रह सकती हैं। क्योंकि तन्त्रके बहुमूल ग्रन्थ सान्निध्य में न रहने के कारण मिलान करना सम्भव नहीं हुआ तथा बहुवर्षों हिन्दी वलय में बिताने पर भी अनुवाद पूर्ण रूप से निर्भूल हो यह कहना सर्वथा अनुचित ही होगा। अतः मरालधर्मी पाठकों से निवेदन है कि जहाँ भी त्रुटि दिखाई पड़े उसे संशोधन कर हमें सूचित करने का कष्ट करें, जिससे अगले संस्करण में संशोधन किया जा सके। इस पुस्तक के प्रकाशन में 'डिवाइन प्रिण्टर्स' के मालिक श्री महेश कुमार जी का सहयोग सराहनीय है क्योंकि वे प्रेस का कर्त्तव्य निभाते हुए प्रूफ संशोधन आदि कार्य में व्यक्तिगत रुचि लेते हुए काफी सहायता की तथा उनके आत्मज राम और प्रेम भी इस कार्य में सार्थक सहायक रहे हैं। श्री श्री गुरुजी के चरणों में उनके सब प्रकार की मङ्गल कामना कर रहा हूँ।

विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में रहते हुए भी यह साधन-जीवन जिनकी कृपा से लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहा है तथा जिनकी आन्तरिक प्रेरणा से इस सम्पादन कार्य में प्रवृत्त हुआ हूँ, उन श्रीगुरुदेव के श्री चरणों में शतसहस्र नमन करते हुए उनकी सेवा स्वरूप यह अनुवाद उनके ही चरण कमलों में सश्रद्ध समर्पण कर रहा हूँ। इति शम्।

श्री श्री निगमानन्द विद्यानिकेतन
दत्तात्रेय जयन्ती, २०५७

श्री गुरुचरणाश्रित
स्वामी प्रज्ञानानन्द

T

सूची-पत्र

विषय पृष्ठ

प्रथम अंश - युक्तिकल्प

द्वितीय अंश - साधनाकल्प

परिशिष्ट

तान्त्रिकगुरु

प्रथम अंश - युक्तिकल्प

तन्त्रशास्त्र

आजकल अधिकांश नवशिक्षित तन्त्रशास्त्र को व्यवसायी गुरुओं के द्वारा रचित अर्थोपार्जन के साधन-स्वरूप कल्पितशास्त्र कहकर उसमें श्रद्धा नहीं रखते। फलस्वरूप उस शास्त्र को कालक्रम के अनुरूप व्यवसायोपयोगी करने के लिए मूलतन्त्र में अनेक प्रकार प्रक्षिप्त, रूपक और अर्थवादादि के योग से जो चेष्टा की गई है, उसे उस शास्त्र के आधुनिक मुद्रित ग्रन्थों को देखने से बहुत ही सरलता से जाना जा सकता है। वेद प्रकाशित होने के बहुत बाद में तन्त्र-शास्त्र प्रकाशित हुआ है। सृष्ट पदार्थके दर्शन से स्रष्टा अर्थात् ईश्वर-प्रतिपादन और उनकी उपासना ही वेद के विषय हैं। जब समय की गति के साथ हिन्दू जाति की बुद्धि की प्रखरता का उत्कर्ष साधन होने लगा, तब परमार्थ विषय में मन के अग्रसर होने पर बुद्धि के सहयोग से कालक्रम सें उपनिषद्, दर्शन और तन्त्र-शास्त्रादि प्रकाशित हुए हैं। तन्त्र कोई स्वतन्त्र शास्त्र नहीं है; यह वेद का ही रूपान्तर है– विशेषतः सांख्यदर्शन और उपनिषद् का सार है। उसमें मुक्ति का सहज उपाय निर्धारित और विचारित हुआ है। वर्तमान समय में वाक्-सर्वस्वता और क्रियाशून्यता-दोष से भारतीय-समाज में तन्त्रशास्त्र की जिस प्रकार घोर दुर्दशा उपस्थित हुई है, उससे तन्त्र का नाम सुनकर बहुत से लोग उपहास करेंगे– इसमें वैचित्र्य क्या? फलतः जिस प्रकार इच्छानुकूल प्रवृत्ति-प्रलोभिनी कल्पितव्यवस्था तन्त्र के भीतर

अन्तर्निविष्ट करने की चेष्टा की जाती है, उससे कुछ लोगों का उपहास करना भी नितान्त असंगत नहीं कहा जा सकता। मुसलमान-राजत्वकाल में हिन्दुओं का कोई भी ग्रन्थ निर्दोषावस्था में नहीं था, उस समय में ही तन्त्र-शास्त्र की दुर्दशा हुई है। एक ओर मुसलमानों का अत्याचार दूसरी ओर हिन्दू-समाज के सद्गुरुओं की विरलतावश शिक्षाविभ्राट से उत्पन्न स्वेच्छाचारिता से प्रक्षिप्त विषयादि से परिपूर्ण होकर प्रकृत तन्त्रशास्त्र अनेक स्थलों पर इस प्रकार विकृत होकर पड़ा है कि उसमें से अविकृत तत्त्व का अनुसन्धान करना अल्पाधिकारी के लिए असम्भव है। वेद और सदाचार-विरोधी कितने ही तन्त्रग्रन्थों की नवीन रचनाएँ भी हुई हैं, किन्तु उस कारण से साधारण लोगों के भ्रम में पड़ने पर भी तन्त्र-तत्त्वज्ञ उन्हें पहचाने बिना नहीं रह सकते। अनेक आधुनिक विज्ञ व्यक्ति कहते हैं कि एकबार प्रवृत्ति मार्ग पर मन के चले जाने पर उसे फिर सहसा निवृत्ति मार्ग पर लाना बहुत कठिन है। अकस्मात् किसी प्रकार निवृत्ति की उपलब्धि करने पर भी वह अपरिपक्व सिद्धि स्थिर नहीं रहती; इसलिए अत्यन्त कौशलपूर्वक सकामता के मध्य से सन्मार्ग पर मन को प्रवृत्त कराने के लिए आपात वेद-विरुद्ध व्यवस्था विधिविहित की जाती है। उनकी इस प्रकार व्याख्या भी प्रायः मूल्यहीन प्रतीत होती है। सत्त्व, रज, तम–त्रिगुणभेद से उपासना के अधिकार और प्रकारभेद की व्यवस्था वेद में भी है; इसलिए महायोगलीलावतार महादेव-प्रणीत मूल तन्त्रशास्त्र में वह तत्त्व छोड़ा नहीं गया है, केवल शास्त्रज्ञ विद्वान् उसे न समझें, पर साधनमर्मज्ञ उसे अच्छी तरह समझते हैं। न समझने से जो शास्त्र-निन्दा होती है वह केवल अर्वाचीनता ही है। उस स्थिति में आधुनिक कतिपय तन्त्रों के अनेक स्थलों पर महादेव और पार्वती के कथोपकथन के प्रसंगों की अवतारणा करके अनेक विकट, विकृत

और तुच्छ विधि-विधान धर्मशास्त्र के अन्तर्गत करने की चेष्टा की गई प्रतीत होती है। फिर अविकृत प्रकृत शिववाक्य तन्त्र में भी साम्प्रतिक दृष्टि से इस प्रकार अनेक अस्वाभाविक, अद्भुत और वीभत्स विषयों का वर्णन हुआ है कि उसका मर्म-रहस्यमूढ़, रुचिरोग-ग्रस्त, स्थूलनीति-सर्वस्व अनेक स्थूलाधिकारियों के विचार से महादेव और पार्वती का नाम से भी उनमें थोड़ी-सी भी पवित्रता का संपादन नहीं कर सकता। सारांश यह है कि सफल-साधना क्रियान्वित सद्गुरु की कृपानुकूलता के अभाव में बहुत से व्यक्ति तन्त्र-मथित नवनीत को न पहचान कर केवल मट्ठा पीकर विश्रृंखला फैला रहे हैं।

श्रुति-स्मृतिविरुद्धानि आगमादीनि यानि च।
करालभैरवञ्चापि यामलञ्चापियत् कृतम्।
एवम् विधानि चान्यानि मोहनार्थानि तानि वै।।

-कूर्मपुराण

सभी लोगों को मोहाभिभूत करने के लिए श्रुति-स्मृति विरुद्ध धर्मशास्त्र को महादेवद्वारा रचित कहने का कारण क्या था? तान्त्रिकरहस्य की मर्मग्रन्थि का भेद इसी स्थान पर ही करना पड़ेगा। तन्त्रशास्त्र की नींव के विचार से इसके प्रयोजन का प्रतिपादन करना ही ग्रन्थकार का लक्ष्य है।

प्रकृत तन्त्रशास्त्र में वेद-विरुद्ध व्यवस्था बहुत स्पष्टरूप से निषिद्ध हुई है।

देवीनाञ्च यथा दुर्गा वर्णानां ब्राह्मणो यथा।
तथा समस्तशास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम्।
सर्वकामप्रदं पुण्यं तन्त्र वै वेदसम्मतम्।।

सम्पूर्ण तन्त्रशास्त्र के विवेचन करके देखने पर स्पष्टरूप से आभासित होगा कि उसकी नींव सांख्य और उपनिषद् के आधार पर

T

स्थित है। हिन्दूसमाज में युगधर्म के अनुरूप पवित्र तन्त्रशास्त्र की सात्त्विक साधना का लोप होकर उसकी राजसिक और तामसिक-साधना की प्रक्रिया-प्रणाली ही प्रायः प्रचलित हुई है। इसीलिए अधिकार-तत्त्वबोध का अभाव ही तन्त्रशास्त्र के अनादर का कारण है। वस्तुतः तन्त्र को योगधर्म का भण्डार कहना भी अत्युक्ति नहीं है। इसीलिए मानसिक और बाह्यिक पूजा और प्राणायाम प्रभृति व्यवस्था अत्यन्त सुन्दररूप में सन्निविष्ट हुई है। वेद जिस प्रकार ज्ञान और कर्मकाण्ड इन दो भागों में विभक्त हैं। उसी प्रकार योगशास्त्र भी दो भागों में विभक्त है। तन्त्रोक्त क्रियाकलाप ही उसका कर्मकाण्ड है। तन्त्र की उपासना-प्रणाली अत्यन्त पवित्र है। इसमें प्राणायाम और साधनापथ अति उत्कृष्टरूप में सन्निविष्ट हैं।

योग और तन्त्रोक्त उपासना-प्रणाली का उद्भव एक उपकरण से ही हुआ है; इन सभी विषयों को पुराणों में बहुत सरल ढंग से समझाया गया है। तन्त्र प्रतिपाद्य साधना की मूलनींव महात्मा कपिलकृत सांख्य है। यह बात सत्य है कि कपिलदेव ने वर्तमान समय की तरह मूर्ति-उपासना-प्रणाली का उद्भावन नहीं किया है; किन्तु उन्होंने सांख्य में जिस प्रकृति-पुरुष के तत्त्व का प्रकाश किया है तन्त्र में भी उसी मूल आधार पर देव-देवी की उपासना प्रणाली विधि सम्पन्न हुई है। कपिल मुनि का पुरुष ही अन्त में हिन्दू उपासना के नाना रूपों में विकसित होकर रुचि और अधिकार के अनुसार नाना मूर्तियों में उपास्य हुआ है। प्रकृति ही भगवती देवी का प्रथम आविर्भाव है–वे ही काली देवी हैं–

तस्याः विनिर्गतायान्तु कृष्णाभूत् सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया।।

-मार्कण्डेयपुराण

T

प्रकृति के सत्त्वाधिक्य से पुरुष के सान्निध्य में महत्तत्त्व या बुद्धितत्त्व उत्पन्न होते हैं; बुद्धितत्त्व से अहंकार और उसी अहंकार के भिन्न-भिन्न विकार से इन्द्रिय और इन्द्रियों के विषय–दोनों की उत्पत्ति हुई है। पुरुष ही चैतन्य शक्ति है; सुख-दु:ख आदि से शून्य है। ये अकर्त्ता हैं, कोई कार्य नहीं करते हैं- समस्त विश्व-व्यापार प्रकृति का ही कार्य है। यह प्रकृति और पुरुष परस्पर सापेक्ष्य हैं। लोहा जिस प्रकार चुम्बक के समीपस्थ होने से उसी दिशा में जाता है, उसी प्रकार प्रकृति भी पुरुष-सन्निधान-प्रयुक्त विश्व-रचना में प्रवृत्त रहती है। प्रकृति का ही साक्षात् कर्तृत्व है, यही सांख्यदर्शन का मत है, इसलिए पुरुष देवी के क्रियाधाररूप में पदतल में है और उसी अभिनय में कालीदेवी की मूर्ति महादेव के ऊपर संस्थापित है।

कपिल-प्रकाशित प्रकृतिपुरुष का तत्त्व परिष्काररूप से सभी अधिकारियों को समान रूप से समझाने के लिए पुराण और तन्त्रशास्त्र का प्रयोजन हुआ है। प्रकृति-पुरुष के साकाररूप का तन्त्र और पुराणों में वर्णन हुआ है। सभी वेदों से जिस रूप सन्ध्योपासना और अन्यान्य वैदिक कर्मों की पद्धति विधिबद्ध हुई है, उसी रूपमें सांख्य दर्शन का अवलम्बन करके तन्त्रोक्त उपासना की प्रणाली व्यवस्थापित हुई है। तन्त्रशास्त्र योग का सर्वसम्पत्सम्पन्न अति विशुद्ध धर्मशास्त्र है। कपिल और पतञ्जलिमुनि ने जिस योगानुष्ठान के भावतत्त्व को समझाया है, उसी का ही कर्मज्ञानानुष्ठान से पूर्ण तन्त्रशास्त्र है। उपनिषद् में उपासना के जो सब मत हैं और रीतियाँ दिखाई देती हैं, थोड़ी अन्यरूप में होने पर भी तन्त्र में भी प्राय: उसी रूप में व्यवस्थित ढंग से विधि सम्पन्न हुई है। बीजमन्त्र और यन्त्र, उपनिषद् और तन्त्र दोनों ही शास्त्रों में हैं; इसलिए तंत्र कोई आधुनिक कल्पित शास्त्र है, इस प्रकार के किसी सिद्धान्त की मान्यता का कोई कारण नहीं है।

वेद और तन्त्रोक्त उपासना-प्रणाली पर दृष्टिपात करने से सहज ही आभासित होगा कि समय के परिवर्तन से मनुष्य की चिन्ताशीलता और बुद्धिवृत्ति के साथ-साथ उसकी रुचि और अधिकार में परिवर्तन हुआ है तथा मुनियों और ऋषियों ने भी समय-समय पर परिवर्तन की व्यवस्था की है। वेदोक्त कर्म अत्यन्त कष्टसाध्य है। किसी समय मनुष्य की शारीरिक और मानसिक दुर्बलता के आरम्भ हो जाने पर पारलौकिक सुख की अपेक्षा लौकिक सुख ही अधिक वांछनीय हो गया; तब क्रमशः वेद के कर्मकाण्डोक्त सभी कार्य शिथिल होने लगे, तत्काल ही सहज उपाय से ईश्वर की आराधना के लिए तन्त्रशास्त्र के व्यवहार के प्रति लोगों का अधिकतर अनुराग हुआ। जो वेद और तन्त्रोक्त प्राणायाम से अवगत हैं, वे ही इन दोनों में तत्काल बिना प्रयास ही पार्थक्य कर लेंगे।

इसी क्षण यह द्रष्टव्य है कि तन्त्र वेद की तरह महाजन और ऋषिगण द्वारा समर्थित है अथवा नहीं? रघुनन्दन का अट्ठाइस तत्त्व इस बंगप्रदेश में सर्व साधारण में प्रचलित है और उसकी मीमांसा वेदवाक्य के सदृश मान्य है। उस ग्रन्थ में प्रमाण स्थलों पर अनेक तन्त्र के वचन व्यवहृत हुए हैं। इस प्रकार स्थल विशेष पर अंतिम कर्त्तव्य निश्चित हुआ है। भगवान् शंकराचार्य ने स्वरचित 'आनन्द लहरी' स्तोत्र में तन्त्र के प्रति बहुत सम्मान प्रदर्शित किया है और 'शाक्तामोद' प्रभृति कई तन्त्र-संग्रह का संकलन भी प्रस्तुत किया है। पूर्णप्रज्ञदर्शन के भाष्यकार आनन्दतीर्थ ने भी अपने भाष्य में तन्त्र के प्रमाणों को उद्धृत किया है। ये स्मार्त भट्टाचार्य (रघुनन्दन), भगवान् शंकराचार्य, आनन्दतीर्थ प्रभृति ने जिन शास्त्रों का प्रामाणिक रूप में प्रयोग किया है, उन्हें जय की अभिलाषा और नाना प्रकार के स्वार्थों से प्रेरित होकर क्या कोई ऐसा है जो सदाशिवोक्त तन्त्रशास्त्र को अप्रामाणिक कहकर हास्यास्पद होने का साहस करेगा?

T

ऋषियों के द्वारा भी यह तन्त्रशास्त्र समर्थित और समादृत हुआ है, इसलिए प्रामाणिक रूप में स्वीकृत है। व्यासदेव कहते हैं-

गुरुतन्त्रं देवताञ्च भेदयन् नरकं व्रजेत्।
गङ्गादुर्गाहरीशानां भेदकृन्नारकी यथा।।

-वृहद्धर्मपुराण

गङ्गा और दुर्गा एवं हरि और हर में भेदज्ञानकारी जिस प्रकार नरकगामी होता है; उसी प्रकार गुरु, तन्त्र और देवता में भेदज्ञान करने पर नरकगामी होना पड़ता है। वैष्णवों के प्रधान शास्त्र श्रीमद्भागवत में भगवान् ने स्वयं कहा है-

वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः ।
त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत्।।

११.२७.७

वैदिक, तान्त्रिक एवं वैदिक-तान्त्रिक मिश्र-इन्हीं तीन प्रकार की विधियों के द्वारा जिसकी जिस प्रकार इच्छा हो वह उसी प्रकार मेरी आराधना करे।

सभी पुराणों से इसी प्रकार अनेक प्रमाण उद्धृत किए जा सकते हैं। इन सभी पुराणों के ऋषिवाक्यों को अग्राह्य कर जो विपरीत मत स्थापित करने की चेष्टा करते हैं, उसको असम्बद्ध प्रलापी और नास्तिक छोड़कर और क्या कहा जा सकता है? वस्तुतः पुराण की अवहेलना करने पर अधिकांश हिन्दुओं को विशेषतः प्रायः बङ्गदेशीय हिन्दुओं को धर्म के विषय में अवलम्बनशून्य होना पड़ेगा। अतएव तन्त्रशास्त्र को अप्रामाणिक कहना, सुवर्ण को दूर फेंककर वस्त्र में खाली गाँठें लगाना है।

वृहद्धर्मपुराण में आया है– भगवती ने शिवजी से कहा है– 'आप आगमकर्त्ता हैं और स्वयं विष्णु वेदकर्त्ता हैं। प्रथम आप

आगमकर्तृत्व में लगे हैं और बाद में वेदकर्तृत्व में हरि लगे हैं। आगम और वेद ही हमारी दो प्रधान बाँहें हैं। इन दोनों बाँहों द्वारा भूर्भुवादि त्रिलोक धारण किया गया है। इन सब से वेद के सदृश्य तन्त्र का भी अपौरुषेयत्व प्रमाणित हुआ है। तन्त्र में मद्य-मांस प्रभृति व्यवहृत हैं कहने से बहुतों की धारणा है कि तन्त्र वेद-विरुद्ध हैं। यह धारणा भी नितान्त भ्रमात्मक है। यजुर्वेद के इक्कीसवें अध्याय में सुरा का व्यवहार दिखाई देता है। यथा-

ब्रह्मक्षत्रं पवते तेज इन्द्रियं सुरया सोम सुत आसुतो मदीय शुक्रेण देव देवताः पितृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि।।

हे देव सोम! तुम सुराद्वारा प्रखर और सामर्थ्ययुक्त होकर अपने शुद्धवीर्यद्वारा देवतागण को परितुष्ट करो और रस-सहित अन्न यजमान को प्रदान करो और ब्राह्मण-क्षत्रियों को तेजसम्पन्न करो।

अतएव मद्यमांस सेवन वैदिक और पौराणिक मत के भी विपरीत नहीं है। वेद और पुराणों से उसका यथेष्ठ प्रमाण संगृहीत हो सकता है। स्थानाभाव के कारण बहुत से प्रमाण उद्धृत नहीं किये। महाप्रभु नित्यानन्द ने खड़दह (कलकत्ता के पास) में त्रिपुरा-यन्त्र स्थापित कर इसका परिचय दिया है।

यदि किसी शास्त्र में तन्त्र का उल्लेख नहीं दिखाई देता तो भी तन्त्र को अप्राचीन नहीं कहा जा सकता। कारण यह है कि तन्त्रशास्त्र अत्यन्त गोपनीय शास्त्र है; शास्त्रकारों ने कुलवधु सदृश साधनशास्त्र को गुप्त रखने का उपदेश प्रदान किया है। 'तन्त्र' शब्द के अर्थ को 'श्रुतिशाखाविशेष' कहकर मेदिनी-अभिधान में लिखा गया है। पूर्वतन आर्य-ऋषिगणं अति प्रखर बुद्धि-सम्पन्न थे। उन्होंने जिस प्रकार अत्यन्त-कौशल-सहित उपासना की व्यवस्था का निर्धारण किया है- उसके प्रति थोड़ा सा भी ध्यान दिया जाय तो उसका प्रकृतभाव कुछ

परिणाम में उपलब्ध किया जा सकता है और उससे मन में अत्यन्त पवित्र भाव का आविर्भाव होता है; उस आनन्द-भाव को दूसरे को समझाने का उपाय नहीं है। जिन्होंने उस सात्त्विकानन्द का अनुभव किया है उनसे अतिरिक्त और कोई भी इसे समझ नहीं पायेगा। वर्त्तमान समय में अधिकांश लोग इन सब विषयों के प्रति ध्यान न देने के कारण तन्त्रशास्त्र के प्रकृत अर्थ को हृदयङ्गम नहीं कर पाते; इसीलिए वे तन्त्रशास्त्र को वेद-विरुद्ध कार्यों के अभिप्राय से व्यवसायी सम्प्रदाय के द्वारा प्रस्तुत है; कह कर उपेक्षा करने में कुण्ठित नहीं होते।

निगम वेद को कहते हैं, आगम तन्त्र को। "कलावागमसम्मता" कलिकाल में आगम-सम्मत उपासना ही फलप्रदा है; कारण यह है कि इसमें दुर्बल मनुष्य के उपयोग करने योग्य साधना-विधान ही सन्निविष्ट है, इसलिए तन्त्र ही कलि का वेद है। अतएव–

आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत् सुधीः।

एक बात और है। तन्त्र आधुनिक हो अथवा जो भी हो, हम जब देखते हैं, ब्रह्मानन्द, पूर्णानन्द, जगन्मोहन, राजा रामकृष्ण, रामप्रसाद, सर्वानन्द और कमलाकान्त प्रभृति बङ्गमाता के सुसन्तानगण तन्त्रोक्त साधना से सिद्धिलाभ किया है, तब तन्त्रशास्त्र हमारे समीप अनादृत उपेक्षित क्यों होगा? एक स्त्री ने दूसरी स्त्री से पूछा- "भग्नि! क्या तुम्हारा लड़का मर गया है?" द्वितीया रमणी ने कहा, "यह कैसे उसे तो खिला कर आ रही हूँ।" प्रथम रमणी कुछ गम्भीर होकर बोली- "वही तो, दादा मिथ्या तो बोलते नहीं।" जिसका लड़का है वह कहती है कि लड़का जीवित है, किन्तु दादा जी मिथ्यावादी नहीं हो सकते कहकर दूसरी उसमें विश्वास नहीं करती है। उसी प्रकार नवशिक्षित "तन्त्र आधुनिक है" कहकर उसकी उपेक्षा करते हैं, परन्तु प्रत्यक्ष कितने व्यक्ति तन्त्रोक्त साधना से आत्मज्ञान की उपलब्धि कर धार्मिक

समाज में पूजित हुए हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण को छोड़कर अनुमान पर निर्भर रहना मूर्खता मात्र हैं। इन सभी प्रमाणों के रहते हुए भी जो तन्त्रशास्त्र की उपेक्षा करते हैं, वे वायस द्वारा श्रवणापहरण वृत्तान्त सुनकर उस वायस को लक्ष्य कर अनुसरण करते-करते पथ पर स्थित कूप में गिरने वाले मूर्ख के समान भ्रमान्ध कूप में ही गिरेंगे।

तन्त्रोक्त साधना

इस देश में अधिकांश स्थलों पर तन्त्र-मन्त्र से ही देवतागण की आराधना होती है और तान्त्रिक मत से ही देवता-आराधना में अतिशीघ्र फल-प्राप्ति होती है। इस प्रकार तान्त्रिकों ने सहज और सरल मार्गों का आविष्कार किया है, जिससे मनुष्य योग के पथ में सरलता से अग्रसर हो सके। तन्त्रशास्त्र भगवान शिव के द्वारा विरचित है, जो योग का रत्नोज्ज्वल पथ है, वह पार्थिव भोग के लिए ही विरचित है, यह विचारना भी महापाप है। जिस तन्त्रशास्त्र में मद्य, मांस प्रभृति विषयोपभोग की बात लिखी है, वह तन्त्रशास्त्र क्या ब्रह्माज्ञान में अदूरदर्शी है?

महानिर्वाण तन्त्र में कहाा गया है कि परमयोगी महोदव से आद्याशक्ति भगवती ने कहा है– "हे देवादिदेव महादेव! आप देवगण के गुरुओं के गुरु हैं, आपने जो परमेश परब्रह्म की बात कही है और जिसकी उपासना से मानवगण भोग और मोक्षलाभ कर सकते हैं। हे भगवन्! किस उपाय से वे परमात्मा प्रसन्न होते हैं ? हे देव! उनकी साधना और मन्त्र किस प्रकार है?उस परमात्मा परमेश्वर का ध्यान अथवा विधि किस प्रकार है? हे प्रभो! मैं इसके प्रकृत तथ्य को सुनने के लिए समुत्सुक हूँ। अतएव कृपाकर उसे मुझे बतलावें।"

सदाशिव ने कहा – 'हे प्राणवल्लभे! तुम मुझसे गुह्य से गुह्य

T

ब्रह्मतत्त्व सुनो। मैं इस रहस्य को कहीं भी प्रकाशित नहीं करता। गुह्य विषय मुझे प्राण की अपेक्षा भी प्रिय पदार्थ हैं, तुमसे स्नेह है इसलिए कह रहा हूँ उस सच्चित्शिवात्मा परब्रह्म को किस प्रकार जाना जा सकता है? जो सत्यासत्य अभिन्न और वाक्य तथा मन के अगोचर हैं उनको यथायथ स्वरूपलक्षण द्वारा किस प्रकार जाना जा सकता है? जो अनित्य जगन्मण्डल के बीच सत्रूप में प्रतिभासित है, जो ब्रह्मस्वरूप हैं, सर्वत्र समदृष्टि समाधि के द्वारा जिनको जाना जा सकता है, जो द्वन्द्वातीत निर्विकल्प और शरीरात्मज्ञानपरिशून्य हैं, जिससे विश्व-संसार समुद्भूत हुआ है और जिनसे समुद्भूत होकर निखिल विश्व स्थित हैं, जिनमें सकल विश्व लय प्राप्त किए रहता है, वही ब्रह्म तटस्थ-लक्षणद्वारा ज्ञेय हैं।

स्वरूपबुद्ध्या यद्वेद्यं तदेव लक्षणैः शिवे।
लक्षणैराप्तुमिच्छूनां विहितं तत्र साधनम्।।
तत्साधनं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहिता प्रिये।

–महानिर्वाणतन्त्र ३य उ०

हे शिवे! स्वरूपलक्षणद्वारा जो ब्रह्म ज्ञेय होते हैं, तटस्थ लक्षणद्वारा वे ही ज्ञेय रहते हैं। स्वरूपलक्षण द्वारा जानने के लिए साधना की अपेक्षा नहीं है। तटस्थ लक्षण के द्वारा ब्रह्मप्राप्ति के लिए साधना का विधान है। हे प्रिये! वही साधना, अर्थात् तटस्थलक्षण के द्वारा ब्रह्म की साधना को बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो।"

इसके द्वारा क्या नहीं समझा जा सकता है कि स्वरूपलक्षणा से ब्रह्म का स्वरूप अवगत होने पर भी वह सर्वसाधारण के लिए ज्ञेय नहीं हैं? इसलिए तटस्थलक्षण के द्वारा आराधना करने पर शीघ्र उसको प्राप्त क़िया जायेगा, इसलिए शिव विरचित तन्त्रसाधना प्रवर्तित हुआ है। तदनन्तर फिर क्या समझाना होगा कि तन्त्रोक्त

साधना अत्यन्त पवित्र है और उससे मोक्षप्राप्ति का सहज उपाय उपलब्ध होता है? तन्त्रशास्त्र विज्ञान है अथवा रसायन है, योग है अथवा भावसागर है, उसको विचार कर स्थिर करने का अधिकार किसी का भी नहीं है। तन्त्रशास्त्र के विचार करने पर मुग्ध और आश्चर्यचकित होना पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिन्होंने ज्ञान-विज्ञान की इतनी उन्नत सीमा पर अधिरोहण किए थे, क्या वे मनुष्य थे अथवा देवता? तन्त्र की अविष्क्रिया, तन्त्र का विज्ञान और तन्त्र की अभावनीय अलौकिक सभी व्यापारों का दर्शन कर निश्चय विश्वास होताा है कि वह मनुष्य के द्वारा आविष्कृत नहीं हुआ है; वस्तुत: देव-देव परमयोगी शिवद्वारा उसका प्रचार हुआ था। तन्त्र में जो सब विषय लिखे गये हैं, उनकी परीक्षा के लिए अधिक प्रयास करना नहीं पड़ता, तन्त्रोक्त साधनाप्रणाली से शीघ्र ही फल प्राप्त होता है। यथाविधि अनुष्ठान कर सकने पर एक रात्रि में शवसाधना की सिद्धि होने पर ब्रह्मपद की उपलब्धि की जा सकती है। तन्त्र की युक्ति यह है कि कलि का मनुष्य अल्पायु और अल्पचित्त होगा, उसके द्वारा कठोर साधना सम्भव नहीं होगी, इसी से उसी अल्पायु, अल्पचित, अल्पमेधा जीवन के निस्तार के लिए महादेव ने इस मत का प्रचार किया है। अतएव तन्त्र केवल अज्ञानी के अन्धकारमय हृदय की कई एक कुक्रियाओं की पद्धति से परिपूर्ण नहीं है। यह भोगासक्त जीवन को भोग का पथ देकर निवृत्ति पथ से जाने की पद्धतियों से परिपूर्ण है। अब तान्त्रिक साधनतत्त्व का थोड़ा विश्लेषण किया जाय।

वेद में प्रणव-मन्त्र से परब्रह्म की उपासना हुई है। क्योंकि-

तस्य वाचकः प्रणवः।

–पातञ्जलदर्शन

अ-उ-म वर्णों के योग से ब्रह्मा, विष्णु, शिव प्रतिपादित होते

हैं। क्लीं शब्द में 'श्रीकृष्णाय भगवते गोपीजनवल्लभाय नमः' प्रतिपादन करते हैं। फलस्वरूप साधारणतः ॐ शब्द से सगुण ब्रह्म का सर्वरूप प्रतिपादन करते हैं। प्रणव के चिन्तन से त्रिगुण की त्रिमूर्ति अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव का चिन्तन करना सम्पूर्णरूप से सहज व्यापार नहीं है। वह अधिकांश स्थलों पर असम्भव हो जाता है। इसी कारण तन्त्र में अधिकारी भेद से देव और देवी की एक-एक मूर्ति की साधना की व्यवस्था प्रकाश किया गया है। वैदिक मन्त्र ॥ॐ॥ का सरल रूप में उच्चारण सभी के लिए सम्भव नहीं है, किन्तु तन्त्रोक्त मन्त्र (दीर्घ प्रणव और अन्यान्य बीजमंत्र प्रभृति) अति सरलता से ही उच्चारित होते हैं सर्वसाधरण के लिए तंत्रशास्त्र की व्यवस्था हुई है। उसकी अशिक्षित लोग भी सरलता से उपासना की प्रणाली भी पृथक्-पृथक् रूप से हिन्दूशास्त्र में निर्दिष्ट हुई है। स्त्री, शूद्र, प्रभृति को वेद का अधिकार प्राप्त नहीं हैं। उनके लिए भी तन्त्रोक्त सहज उपासना प्रस्तुत हुई है। जो वेद के अधिकारी थे, उन्होंने कालक्रम से वेद-पथ का अतिक्रमण कर तन्त्रोक्त साधना पद्धति को अपनाया था; इसलिए ब्राह्मणों में तन्त्र का अधिक आदर हुआ है।

प्रकृति के परिणाम अथवा विकार द्वारा सम्पूर्ण विश्व-व्यापार उत्पन्न हुआ है। परिणामस्वरूप आदिकारण का नाम ही प्रकृति शब्द में उल्लिखित है। प्रकृति का कर्तृत्व वेदसम्मत है। प्रकृति की उपासना भी सत्ययुगावधि प्रचलित है। सत्ययुग में मार्कण्डेय मुनि द्वारा चण्डी का प्रणयन हुआ; उसमें भी प्रकृति के कर्तृत्व का अतिविस्तार से वर्णन हुआ है। यथा–

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ।

वह महाविद्या नित्य है, जन्म-मृत्यु-रहित-स्वभाव, जगत् का आदि कारण है; यह ब्रह्माण्ड ही उसकी मूर्ति है, उसी से यह संसार

T

विस्तारित हुआ है।

त्रेतायुग में जो राम-सीता हैं, उनका उपनिषद् में भी वर्णन है। उसी उपनिषद् की छाया का अवलम्बन लेकर महात्मा वाल्मीकि ने महाकाव्य रामायण की रचना की है। राम-सीता भी उपनिषद् में प्रकृति-पुरूष रूप में वर्णित हैं–

श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनो
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ।।३।।
सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता
प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः।। ४।।

–रामोत्तरतापनी

श्रीराम के सन्निध्यवशतः जगत् को आनन्दप्रदायिनी और सभी प्राणियों की उत्पत्ति और प्रलय करने वाली सीता को मूल-प्रकृति के रूप में समझें। जब सीता प्रणवसहित अभेद प्राप्त करती हैं, तब ब्रह्मवादी उन्हें प्रकृति की संज्ञा देते हैं। द्वापरयुग में श्रीकृष्ण और योगमाया, भागवत प्रणेता ने रासलीला में उनका वर्णन परिष्कृतरूप में किया है। यथा–

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्यरन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः।।

उसी शारदोत्फुल्लमल्लिकाशोभित रात्रि को देखकर भगवान् ने योगमाया को आश्रय करके क्रीडा करने का विचार किया।

श्रीमद्भगवद्गीता में प्रकृति के कर्तृत्व का वर्णन हुआ है। यथा–

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।

हे कौन्तेय! मेरे अधिष्ठानवशतः ही प्रकृति इस सचराचर

जगत् को जन्म देकर मेरे अधिष्ठान के लिए जगत् नानारूप में जन्म ग्रहण करती है।

उपरोक्त गीतावावक्य में प्रकृति ने ही जगत् को जन्म दिया है– कहा गया है कि वही प्रकृति देवी तन्त्र के प्रधान अधिष्ठात्री देवता है।, उनको उपनिषद् और पुराणादि ने अनुमोदित किया है। तन्त्र में देव और देवी दोनों की उपासना ही विधिबद्ध हुई है। भारतवर्ष में विभिन्न सम्प्रदायों के उपासक देखे जाते हैं। उनमें एक सम्प्रदायों के लोग केवल प्रकृतिदेवी के उपासक हैं; वे भी तन्त्रोक्त साधना की व्यवस्था के अनुसार परिचालित हैं। जिसप्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में योगशास्त्र को कर्म का कौशल कहा है, यथा–

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्मात् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

उसी प्रकार तन्त्रशास्त्र में भी अति सुकौशल-सहित देव-देवी की उपासना-प्रणाली योगशास्त्र के विधानानुसार विधिबद्ध हुई है। तन्त्रशास्त्र ने देहभेद से नाना प्रकार के आचारों और भावों को प्रकाशित किया है। किसी-किसी तन्त्रशास्त्र में गुप्त साधना की कथा भी प्रकाशित हुई है। जो मनुष्य जिस प्रकार के आचार अथवा भाव और जिस साधना का अधिकारी है, उसी के अनुरूप अनुष्ठान करने पर फलभागी होता है और साधना से निष्पाप होकर संसार-समुद्र से समुत्तीर्ण होता है। जन्म-जन्मार्जित पुण्य-प्रभाव से कुलाचार में जिन लोगों की वासना रहती है, वे कुलाचार के अवलम्बन से आत्मा को पवित्र करके साक्षात् शिवमय हो जाते हैं, जिस स्थान पर भोगबाहुल्य की विस्तृति है, वहाँ साधना के योग की सम्भावना क्या है; वहाँ भोग की अभाव है, किन्तु कुलाचार में प्रवृत्त होने से भोग और योग दोनों की उपलब्धि की जा सकती है।

T

म-कार तत्त्व

तन्त्रशास्त्र में पञ्च-मकारकी साधना का उल्लेख है। पञ्च म-कार अर्थात् पाँच द्रव्यों का आरम्भिक अक्षर 'म' है। यथा मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इन्हीं पाँचों को पञ्च म-कार कहते हैं। पञ्च म-कार का साधना-फल भी असीम है। यथा-

मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च।
म-कारपञ्चकं कृत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।

पञ्च म-कार साधकों का पुनर्जन्म नहीं होता है। साधारण लोग इसके मूलतत्त्व और उद्देश्य को न समझ पाने के कारण इस सम्बन्ध में अनेक बाते कहते हैं। विशेषत: वर्तमान काल के शिक्षित लोगों में मद्यपान-व्यवस्था, माँसभोजन प्रथा, मैथुन का प्रवर्तन और मुद्रा का व्यवहार देखकर तन्त्रशास्त्र के प्रति अतिशय अश्रद्धा दिखाई पड़ती है; केवल यही नहीं तान्त्रिक लोगों का नाम सुनकर जैसे सिहरन उत्पन्न होती है। वस्तुत: अनेक स्थलों पर देखा जाता है कि लोग मद्यादि का सेवन आरम्भ करके और किसी भी प्रकार से निवृत्ति-पथ पर जा नहीं सकते। मद्यादिसेवन करके भोग-तृप्ति का साधन प्राप्त हो जाने पर फिर धर्मपथ पर आ सकने में सक्षम हो सकते हैं; ऐसा विश्वास किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकताा है। जो मद्यपान में आशक्त हैं, धर्मपथ तो दूरकी बात है, वे नैतिक पथ पर भी विचरण करने में समर्थ नहीं होते। मद्यपान से मनुष्य की आसक्ति असत् पथ में ही प्रभावित होती है। तब तन्त्रशास्त्र में मद्य-मांस का व्यवहार क्यों दिखाई पड़ता है? पूर्व में ही कहा गया है कि सत्त्व, रज: और तम: किसी भी गुणभेद से उपासना का अधिकार और प्रकार-भेद हुआा है। इसलिए पञ्च म-कार भी स्थूल और सूक्ष्मभेद से अधिकारानुयायी व्यवहृत होता है। आगे पञ्च म-कार के सूक्ष्मतत्त्व की विवेचना की जाय। शिव जी कहते हैं–

सोमधारा क्षरेद् या तु ब्रह्मारन्ध्राद् वरानने ।
पीत्वानन्दमयस्तमं यः स एव मद्यसाधकः ।।

हे वरानने! ब्रह्मारन्ध्र से जो अमृतधारा क्षरित होती है, उसके पान करने से लोग आनन्दमय हो जाते हैं। इसीका नाम मद्यसाधना है।[१]

मा शब्दाद्रसना ज्ञेया तदंशान् रसनाप्रिये।
सदा या भक्षयेद्देवि स एव मांससाधकः।।

हे रसनाप्रिये! मा रसना शब्द का नामान्तर है। उससे उत्पन्न वाक्योंका भक्षक–मांस साधक कहलाता है। वह मौनी होता है।

गंगायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः।।

गङ्गा और यमुना में दो मत्स्य निरन्तर चलते हैं। जो व्यक्ति इन दो मत्स्यों को खाता है–उसका नाम मत्स्य-साधक है। इड़ा और पिंगला नाड़ी को गङ्गा और यमुना कहते हैं। श्वास-प्रश्वास ही दो मत्स्य हैं, जो प्राणायामद्वारा श्वास-प्रश्वास को रोक कर कुम्भक का पुष्टि-साधन करते हैं, उसी को मत्स्य-साधक कहा जाता है।

सहस्रारे महापद्मे कर्णिकामुद्रितश्चरेत्।
आत्मा तत्रैव देवेशि केवलः पारदोपमः।।
सूर्यकोटिप्रतीकाशश्चन्द्रकोटिसुशीतलः ।
अतीव कमनीयश्च महाकुण्डलिनीयुतः।
यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रासाधक उच्यते।।

---

१. *मतान्तर से*

यदुक्तं परमं ब्रह्म निर्विकारं निरञ्जनं।
तस्मिन् प्रमदन-ज्ञानं तन्मद्यं-परिकीर्त्तितम्।।

– निर्विकार निरंजन परब्रह्म से योग-साधना द्वारा जो प्रमदन ज्ञान है, उसी का नाम मद्य है।

हे देवेशि! शिर में स्थित सहस्रदल में कर्णिका के भीतर शुद्ध पारदतुल्य आत्मा की स्थिति है। यद्यपि उसका तेज कोटि सूर्य सदृश है, किन्तु स्निग्धता में कोटि चन्द्रतुल्य है। यह परम पदार्थ अतिशय मनोहर और कुण्डलिनीशक्ति समन्वित है–जिसके ज्ञान का उदय इस प्रकार होता है, वही प्रकृत मुद्रा-साधक है।

मैथुनं परमं तत्त्वं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्।

एवं मां सनोति हि यत्कर्म तन्मासं परिकीर्त्तितम्।
न च काय-प्रतीकन्तु योगिभर्मांसमुच्यते॥

जो सब सत्कर्म निष्कल परब्रह्म को समर्पित करता है, उसी कर्मसमर्पण का नाम मांस है।

मत्स्यमानं सर्वभूते सुखदुःखमिदं प्रिये।
इति यत् सात्त्विकं ज्ञानं तन्मत्स्यः परिकीर्तितः॥

सभी भूतों में अपने समान सुख-दुःख में समज्ञान --यही जो सात्त्विक ज्ञान है, उसका नाम मत्स्य है।

सत् सङ्गेन भवेन्मुक्तिरसत्सङ्गेषु बन्धनम्।
असत्सङ्गमुद्रणम् यत् तन्मुद्रा परिकीर्त्तिता॥

सत्सङ्ग में मुक्ति और असत्सङ्ग में बन्धन–इसको जानकर असत्सङ्ग के परित्याग का नाम मुद्रा है।

कुलकुण्डलिनीशक्तिर्देहिनां देहधारिणी।
तया शिवस्य संयोगो मैथुनं परिकीर्त्तितम्॥

मूलाधारस्थित कुण्डलिनीशक्ति को योग-साधनाद्वारा षट् चक्र-भेदद्वारा शिरः स्थित सहस्रदलकमलकर्णिका के भीतर बिन्दु-रूप परम-शिव सहित संयोग करने का नाम मैथुन है।

यही पञ्च-मकार है। इसका नाम लययोग है। इसलिए पञ्च म-कार योग का कार्य मम रचित "ज्ञानीगुरु" के साधना-काण्ड में प्रकृति-पुरुषयोग की साधना प्रणाली प्रकाशित हुई है।

T

मैथुनात् जायते सिद्धिर्ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्।।

मैथुन व्यापार सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण है, इसे परमतत्त्व कहकर शास्त्र में इसका वर्णन किया गया है। मैथुन से सिद्धिलाभ होता है और उससे सुदुर्लभ ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि होती है। वह मैथुन किस प्रकार का है?

रेफस्तु कुङ्कुमाभासः कुण्डमध्ये व्यवस्थितः।
मकारश्च विन्दुरूपो महायोनौ स्थितः प्रिये।।
अकार-हंसामारूह्य एकता च यदा भवेत्।
तदा जातो महानन्दो ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्।।

रेफ कुंकुमवर्ण कुण्ड में अवस्थित रहता है, म-कार बिन्दुरूप में महायोनि से अवस्थित है। अकाररूपी हंस के आश्रय से जब इन दोनों की एकता स्थापित होती है; उसी समय सुदुर्लभ ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। जो इस प्रकार का मिलन करा सकते हैं- वे ही **मैथुन-साधक** हैं। जिस प्रकार मैथुन-कार्य आलिङ्गन, चुम्बन, शीत्कार, अनुलेप, रमण और रेतोत्सर्ग इन्हीं छः अङ्गों सहित क्रिया-सम्पन्न होता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक मैथुन-व्यापार में भी इसी प्रकार छः अङ्गों को देखा जाता है। यथा-

आलिङ्गनं भवेन्न्यासश्चुम्बनं ध्यानमीरितम्।
आवाहनः शीत्कारः स्यात् नैवद्यमनुलेपनम्।।
जपनं रमणं प्रोक्तं रेतःपातश्च दक्षिणा।
सर्वथैव त्वया गोप्यं मम प्राणाधिके प्रिये।।

योगक्रिया तत्त्वादिन्यास का नाम आलिंगन, ध्यान का नाम चुम्बन, आवाहन का नाम शीत्कार, नैवेद्य का नाम अनुलेपन, जप का नाम रमण और दक्षिणा का नाम रेतःपातन है। फलस्वरूप षडङ्ग योग में इसीप्रकार के षडङ्ग साधना करने का नाम ही मैथुन साधना है।

पञ्चमे पञ्चमाकारः पञ्चाननसमो भवेत्।

पञ्च म-कार की साधना में साधक शिवतुल्य हो जाता है। इसलिए पञ्च म-कार का प्रकृत कार्य योग की क्रिया है, इसमें सन्देह नहीं है। तन्त्र और योग दोनों शास्त्र ही सदाशिव के द्वारा कथित है। सूक्ष्म पञ्च म-कार की साधना योगशास्त्र में कही गयी है। तन्त्र की स्थूल साधना है, इसलिए सूक्ष्म पञ्च म-कार तन्त्रशास्त्र का उद्देश्य नहीं है। तब भी तन्त्र में सूक्ष्म का आभास है। रूपकादि विश्लेषण करने पर भोग की सूक्ष्म साधना का पता लगाया जा सकता है। किन्तु तंत्रशास्त्र का वह उद्देश्य नहीं है। एक ही व्यक्ति की एक बात के लिए द्विविध शास्त्र के प्रणयन की क्या आवश्यकता है?

जगत् में दो पथ हैं। एक का नाम निवृत्ति और दूसरे का नाम प्रवृत्ति है। निवृत्ति योग और प्रवृत्ति भोग है। आगमसारोक्त पञ्च म-कार निवृत्ति के पथ से और महानिर्वाणतन्त्र प्रभृति में वर्णित स्थूल पञ्च म-कार प्रवृत्ति के पथ पर चलते हैं; इस प्रकार दोनों में यही भेद है। जिनकी विषय-वासना निवृत्ति होकर विषय-वैराग्य में बदल गई है, उनके लिए निवृत्ति पथ का योगपथ सूक्ष्म पञ्च म-कार की साधना है और जिनकी भोगवासना शतवाहु सृजन करके समस्त संसार को रोक लेना चाहती है,उनका उपाय क्या है? उन पर दया करके ही सदाशिव ने स्थूल पञ्च म-कार की साधना को प्रकाशित किया है। उद्देश्य भोग के मध्य से योगपथ को उन्नत बनाना है, प्रवृत्ति के पथ से निवृत्ति को लाना है।

बङ्ग के एकमात्र गौरव भक्तावतार श्रीमन्महाप्रभु चैतन्य ने हरिदास को हरिनाम के प्रचार का आदेश दिया। किन्तु हरिदास ने उससे असफल होकर प्रत्यागमन करके कहा- "प्रभो! भोगासक्त जीव भोग का परित्याग कर हरि नाम लेने की इच्छा नहीं करता है।" तब चैतन्यदेव ने स्वयं हरिनाम का प्रचार करना आरम्भ किया। उन्होंने सर्वसाधरण से

कहा, "तुम लोग मद्यमांस खाकर रमणी के अंक में बैठकर हरिनाम लो"। तब समूह के समूह लोग आकर हरिनाम महामंत्र को ग्रहण करने लगे। हरिदास ने कहा- "प्रभो हमारे लिए इस प्रकार का कठोर संयम विधान है, और साधारण के लिए इस रूप व्यवस्था का क्या कारण है? चैतन्यदेव ने हँसकर कहा- "तुम लोग विषयविरागी ईश्वरानुरागी भक्त हो, इसी कारण तुम लोगों के लिए सात्त्विक पथ की व्यवस्था की है; किन्तु साधारण भोगासक्त जीव भोग को छोड़कर जीवित रहने की इच्छा नहीं रखते हैं। भगवान् की अपेक्षा भोग से अधिक प्रेम करते हैं। उनके वासनानुयायी न चलने पर हरिनाम क्यों लेंगे? इसीलिए उनके भोग में ही हरिनाम की व्यवस्था की है। कुछ दिन बाद हरिनाम के गुण के कारण अपने से ही सब त्याग कर देंगे।" चैतन्यदेव के इस उपदेश के मर्म को ग्रहण करने में जो समर्थ हुए हैं, वे सहज ही तंत्रशास्त्र के मद्यमांस आदि की व्यवस्था को हृदयंगम कर सकते हैं।

अतएव मद्यमांसादि व्यवस्थाद्वारा तन्त्रशास्त्र का निकृष्टत्व प्रतिपन्न न होकर बल्कि सर्वाङ्गपूर्णत्व ही साधित हुआ है। कारण शास्त्र सर्वप्रकार अधिकारी के अधिकार्य विषयों का उपदेष्टा है। इसीलिए कुत्सित अभिप्राय चरितार्थकामी के पक्ष में भी शास्त्र उपदेश करने में कुण्ठित क्यों होगा? जिनकी अन्तर की वृत्ति दूषित है, वे शास्त्रोपदेश न पाने पर भी इच्छानुसार अपनी वृत्ति चरितार्थ न करके स्थिर नहीं रह सकते। व्याघ्र शास्त्रोपदेश निरपेक्ष होकर ही हिंसावृत्ति चरितार्थ करता है। इसलिए जिसकी जो वृत्ति है, वह उसका अनुशीलन किए बिना नहीं रह सकता। बल्कि इसी शास्त्रोपदेश के अनसुार अपनी कुत्सित वृत्ति के निष्पादन करने में सचेष्ट होने पर समय पाकर कभी भी इन सभी वृत्तियों का ह्रास होकर सद्वृत्ति का उन्मेष हो सकता है। कुत्सित वृत्ति को चरितार्थ करने के लिए शास्त्रविधि का अनुवर्तन करने पर इस प्रकार कुछ अनुष्ठान

करने पड़ते हैं जो उनके द्वारा असत्वृत्ति का ह्रास कर देते हैं। इसलिए तन्त्रशास्त्र उन स्थानों पर भावी मंगल का द्वार उन्मुक्त कर देता है।

एक आख्यायिका है कि एक समय किसी दुर्दान्त तस्कर ने किसी एक स्थान पर जाते-जाते पथ में एक साधु के पवित्र आश्रम को देखकर वहाँ उपस्थित हुआ। उसी स्थान पर साधु को बहुत से शिष्यों से परिवृत्त दर्शन करते हुए देखकर और उनकी विशुद्ध आमोद-प्रमोद और भक्ति-भाव देखकर तस्कर की भी शिष्य होने की प्रबल इच्छा हुई। उसने उसी समय साधु के समीप प्रस्ताव रखा। उन्होंने चोर के प्रस्ताव को सुनकर तथा अतिशय विस्मित होकर कहा–"वत्स! तुमने चौर्यवृत्ति का अवलम्बन कर अशेष पाप संचित किया है, मेरे शिष्यत्व ग्रहण करने से क्या होगा? जो हो तुम अगर मेरे एक आदेश का सर्वदा पालन कर सको, तब मैं तुमको दीक्षित करके शिष्यरूप में ग्रहण कर सकता हूँ।" चोर ने तब अतीव आनन्द के साथ साधु की आज्ञा पालन करना अंगीकार किया। साधु ने कहा -"इच्छानुकूल तस्कर वृत्ति को चरितार्थ करो, उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं हैं, किन्तु तुम कभी भी मिथ्या नहीं बोलोगे, इसको अङ्गीकार करना होगा।" साधु के वाक्य श्रवण मात्र से परिणाम पर विचार न कर उसके आदेश पालन की सम्मति दे दी। साधु ने उसे दीक्षित कर शिष्यरूप में ग्रहण किया। क्रमशः तस्कर सत्य बोलकर विश्वासभाजन होकर अपने व्यवसाय में लीन रहने लगा। वह मन ही मन विचार करने लगा हाय, मैंने क्या किया है? मैंने सत्य बोलकर असद्वृत्ति का अवलम्बन करने पर भी श्रेष्ठत्व प्राप्त किया, न जाने सद्विषय के अवलम्बन करने से किस अपूर्व सुख का भोग कर सकता। इसलिए आज से और कुत्सित वृत्ति का अनुसरण नहीं करूँगा। इसी प्रकार तस्कर की कुवृत्ति दूर हुई। उसमें सद्वृत्ति बढ़ने लगी और वह क्रमशः साधु नाम से विश्रुत हुआ।

T

इसलिए कहता हूँ, स्वभाव से ही कुवृत्तिसम्पन्न व्यक्तियों के लिए उनकी प्रवृत्त्यानुमोदित तत्काल प्रवृत्त करने वाले सब विषय तंत्रशास्त्र में निबद्ध हैं और उनके अन्तराल में इस प्रकार के उपाय निहित है कि उनके द्वारा कल्याण की ही प्राप्ति होगी। अन्यथा अपनी प्रवृत्तिद्वारा अनुमोदित विषयों में प्रवृत्ति नहीं हो पाती। अतएव पञ्च म-कार रूपक नहीं है और सूक्ष्मभाव भी इस शास्त्र का उद्देश्य नहीं हैं और पञ्च म-कार की साधना शराब पीकर नारी संग में रंग करना नहीं है, उनकी क्रमशः विवेचना की जाय। तब यह निश्चय है कि यथार्थ परमार्थान्वेषी विषयविरागी साधक के लिए तंत्र की स्थूल-साधना का थोड़ा भी प्रयोजन नहीं है।

प्रथम तत्त्व

पञ्च म-कार को ही पञ्चतत्त्व कहते हैं। मद्य ही प्रथम तत्त्व है। महानिर्वाणतंत्र में मद्य की इसी प्रकार व्यवस्था की गयी है-

गौड़ी पैष्टी तथा माध्वी त्रिविधा चोत्तमा सुरा।
सैव नानाविधा प्रोक्ता तालखर्जुरसम्भवा।।
तथा देशविभेदेन नाना द्रव्यविभेदतः।
बहुधेयं समाख्याता प्रशस्ता देवतार्चने।।
येन केन समुत्पन्ना येन केनाहृतापि वा।
नात्र जातिविभेदोऽस्ति शोधिताा सर्वसिद्धिदा।।

गौड़ी (गुड़ के द्वारा जो मद्य प्रस्तुत होता है) पैष्टी (पिष्टक द्वारा जो मद्य प्रस्तुत होता है) और माध्वी (मधुद्वारा जो मद्य प्रस्तुत होती है) ये तीन सुरा ही उत्तम कह कर गण्य है। ये सब सुरा ताल, खर्जुर और अन्यान्य द्रव्य रस से संभूत होती हैं। देश और द्रव्य भेद से नाना प्रकार की सुरा की सृष्टि होती है। देवार्चन के लिए सभी सुरा प्रशस्त

है। यह सब सुरा जिस प्रकार उद्भूत और जिस प्रकार जिस किसी व्यक्ति के द्वारा लाई गई क्यों न हो, शोधित होने पर कार्य सुसिद्ध होता है। इसमें जाति का विचार नहीं है।

महौषधं यज्जीवानां दुःखविस्फारकं महत्।
आनन्द-जनकं यच्च तदाद्यतत्त्वलक्षणम्।।
असंस्कृतञ्च यत्तत्त्वं मोदकं भ्रमकारणम्।
विपदरोगजननन्त्याज्यं कौलैः सदा प्रिये।।

आद्यतत्त्व का लक्षण यही है–यह महौषधिस्वरूप है। इसके सहारे जीवगण सभी दुःखों के भोग को भूल जाते हैं। यह अतिशय आनन्द का विधान करता है। यदि आद्यतत्त्व संस्कृत नहीं होता तब उससे मोह और भ्रम की उत्पत्ति होती है। हे प्रिये! कुलसाधकगण के लिए असंस्कृत तत्त्व का परित्याग करना ही सर्वदा कर्तव्य है।

मद्यादि सेवन का उद्देश्य धर्म नहीं हैं, परन्तु धर्म के उद्देश्य से ही पञ्चतत्त्व के अनुष्ठान की प्रयोजनीयता है। वस्तुतः मद्यपान करते समय हृदय में जिस भाव का पोषण होता है, वही उच्छ्वसित होता है और एकाग्रता दृढ़ होकर उत्तरोत्तर साधना-पथ पर अग्रसर होता है। साधक के पान के लिए साधना नहीं है–साधना के लिए ही पान है। यथा–

मन्त्रज्ञानस्फुरणाय ब्रह्मज्ञानस्थिराय च।
अलिपानं प्रकर्तव्यं लोलुपो नरकं व्रजेत्।।

देवता का ध्यान परिस्फुट रखने के लिए और अपने सहित देवता का अभेदज्ञान स्थिर रखने के लिए जपादि के पूर्व मद्यपान करना चाहिए। आनन्द के लिए क्षुब्ध होकर पान करने से नरकगामी होना पड़ता है।

इस स्थल पर आशंका हो सकती है कि मद्यपान से विचलित

T

व्यक्ति का कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान किस प्रकार रहेगा? वस्तुत: इसी आशङ्का से ही महादेव ने आदेश दिया है कि जितने पान करने पर दृष्टि और मन विचलित न हो उसी परिमाण से पान करना चाहिए। इसके अतिरिक्त पान को पशुपान कहते हैं। यथा–

शताभिषिक्तकौलश्चेत् अतिपानात् कुलेश्वरि।
पशुरेव स मन्तव्यः कुलधर्मबहिष्कृतः।।

हे कुलेश्वरि! शतवार अभिषिक्त कौल व्यक्ति भी अतिपान-दोष से दूषित होने पर धर्मच्युत होंगे और उनको पशुओं में गिनना होगा।

अतएव मद्यपान करके मत्त होना तन्त्र का उद्देश्य नहीं है। उसमें मन्त्रपूत और संस्कृत होने से साधक तेजोधर्मी होता है, उस समय यह साधनानुयायी कुण्डलिनीशक्ति के मुख में गिरकर उसको उद्बोधित करता है, इसीलिए साधक का मद्यपान है। नहीं तो एक ही तंत्रशास्त्र मद्यपान के शत-शत दोषों को दिखाकर साधक के लिए उसकी व्यवस्था क्यों करेगा?

संसार में परमार्थत: हितकर और अहितकर वस्तु क्या है? श्रुति का कथन है–कोई भी वस्तु वस्तुत: अहितकर अथवा जहर नहीं है; प्रकृति की परिच्छिन्नतानिबन्धन में कौन सी वस्तु हितकर, विशिष्ट प्रकृति के अनुकूल अथवा संवादी और कौन सी वस्तु अहितकर विशिष्ट प्रकृति के प्रतिकूल, बाधाप्रद अथवा विसंवादी नाम से प्रतीयमान होती है। विषय वैषम्य ही विष है, नहीं तो विष वस्तुत: विष नहीं है। चरक संहिता में कहा है- "जो अन्न प्राणीगण के लिए प्राण-स्वरूप है, अयुक्तिपूर्वक भक्षित होने पर वही अन्न भी जीवन संहार करता है, फिर विष प्राणहर होने पर भी यदि यत्नपूर्वक व्यवहृत हो, तब वह रसायन है–प्राणप्रद है।" संसार में कोई द्रव्य एकांत हितकर अथवा एकांत अहितकर नहीं है। प्रयोजन और कार्यसाधन के

लिए यथोचित व्यवहार भी अहितकर नहीं है। तेज पदार्थ के प्रयोग व्यतिरेक से जिसकी कुण्डलिनी नहीं जगेगी, उसके लिए यथाविधि मद्य प्रयोग में दोष क्या है? और जिसकी कुण्डलिनी जगी है, जिसका सुषुम्ना-मार्ग परिष्कृत हुआ है, उसका उस कार्य से क्या प्रयोजन है? शास्त्र में उन लोगों के लिए मद्यपान का निषेध किया है।

इस समय लगता है और कहने की आवश्यकता नहीं कि तंत्रशास्त्र का उद्देश्य नहीं है कि लोग मतवाला होकर आनन्द की उपलब्धि करें। मद्यपायी जो मनुष्यत्व के बाहर चला जाता है, मद्यपायी जो पशु से भी अधम होकर पड़ा रहता है, मद्यपायी जिसका समस्त हिताहित ज्ञान लुप्त हो जाता है, उससे सर्वदर्शी सर्वज्ञानी महायोगबलशाली महादेव अवगत थे। किन्तु इस तेज:प्रदान द्वारा कुण्डलिनी के जागरण के लिए उनके द्वारा तन्त्र की साधना प्रचारित हुई है। जिस प्रकार **"विषस्य विषमौषधम्"** अर्थात् विष के प्रयोग से ही विष की चिकित्सा होती है; उसी प्रकार सुरा सेवन की व्यवस्था हुई है; किन्तु उपयुक्त गुरु के न होने से मन्त्रार्थ और देवतास्फूर्ति के परिवर्त्त में नशा की स्फूर्ति और जीवन ही नष्ट हो जाता है। उपयुक्त गुरु के उपदेशानुसार समयविशेष से नाना प्रकार से सुरा प्रयोग करने से निश्चय ही कुण्डलिनी चैतन्य होगी, अतएव मद्यपान करके मत्तता और तज्जनित पाशव आनन्दानुभव शास्त्र का उद्देश्य नहीं है। कुण्डलिंनीशक्ति हम लोगों के देहस्थ शक्तिसमूह का शक्तिकेन्द्र है। उसी शक्तिकेन्द्र के उद्घोषित करने के लिए उसके मुख में मद्य प्रदान किया जाता है। इसका उद्देश्य अति शुभकर है। पाश्चात्य देशों में जो मेसमेरिजम और हिपनटिक विद्या का प्रचलन हुआ है, वे भी स्वीकार करते हैं; किन-किन औषधियों के द्वारा ऐसी अवस्था आ सकती है, किन्तु क्यों और किस प्रकार आ सकती है वह उनको अज्ञात है,

इसलिए वे सभी तथ्यों को जानते नहीं। तांत्रिक साधकोंने उसे जाना था, इसलिए महाशक्ति की आराधना में शक्तिकेन्द्र को जगाने के लिए सुरापान का आयोजन हुआ था।

तन्त्रशास्त्र में सुरापान की इस प्रकार की व्यवस्था है। महाशक्ति की पूजादि करके कुलसाधक हृष्टमन से परमामृतपूर्ण संस्कृत और निवेदित स्व स्व पात्र ग्रहण करके मूलाधार से जिह्वाग्र पर्यन्त कुलकुण्डलिनी की चिन्ता करते हुए मूलमन्त्र उच्चारित कर श्रीगुरु की आज्ञा ग्रहण के अनन्तर कुण्डलिनीमुख में परमामृत प्रदान करें।' कुण्डलिनी-जागरण के लिए सुषुम्ना पथ से इस मद्य को चलाना होता है। योनिमुद्रा[१] का अवलम्बन करके ही उक्त कार्य सम्पन्न करना होता है। इस तत्त्व शिक्षा के लिये सद्गुरु का प्रयोजन होता है।

अन्यान्य तत्त्व

द्वितीय तत्त्व **मांस** है; उसके सम्बन्ध में शास्त्र का इस प्रकार विधान है। यथा–

मांसस्तु त्रिविधं प्रोक्तं जलभूचरखेचरम्।
यस्मात् कस्मात् समानितं येन तेन विघातितम् ।।
तत् सर्वं देवताप्रीत्यै भवेदेव न संशयः।
साधकेच्छा बलवती देये वस्तुनि दैवते।।
यद्यदात्मप्रियं द्रव्यं तत्तदिष्टाय कल्पयेत्।
बलिदानविधौ देवि विहितः पुरुषः पशुः।
स्त्रीपशुर्न च हन्तव्यस्तत्र शाम्भवशासनात्।।

मांस त्रिविध हैं– जलचर, भूचर और खेचर। ये जिस किसी

---

१. *योनिमुद्रा का साधन मत्प्रणीत 'ज्ञानीगुरु' ग्रन्थ विशद रूप से वर्णित है।*

व्यक्ति द्वारा मारा जाय अथवा जिस किसी स्थान से लाए जाय, निःसन्देह उससे देवगण की तृप्ति होती है। देवता को कौन सा मांस अथवा कौन सी वस्तु देय है, वह साधक की इच्छा के अनुगत है। जो मांस, जो वस्तु अपने को तृप्तकर है, इष्टदेवता के उद्देश्य उसी को प्रदान करना कर्त्तव्य है। देवि! पुरुष-पशु ही बलिदान के लिए विहित है; स्त्री-पशु बलि देना शिव की आज्ञा के विरुद्ध है; इसलिए उसे नहीं दिया जाता है।

अतएव जान्तव मांसद्वारा साधना भिन्न है; उसका अर्थ वाक्यसंयम करना अथवा मौनी होना है; यह तन्त्र का उद्देश्य नहीं है।

बुद्धितेजोबलकरं द्वितीयं तत्त्वलक्षणम् ।

द्वितीय तत्त्व पुष्टिकर, बुद्धि, बल और तेजोविधायक है। तृतीय तत्त्व **मत्स्य** है–

उत्तमास्त्रिविधा मत्स्याः शालपाठिनरोहिताः।
मध्यमाः कण्टकैर्हीना अधमा बहुकण्टकाः।
तेऽपि देव्यै प्रदातव्या यदि सुष्ठु विभर्जिताः।।

मत्स्य में शाल, रोयल और रोहित यही तीन जातियाँ उत्तम हैं। कण्टकहीन अन्यान्य मत्स्य मध्यम और बहुकण्टकशाली मत्स्य अधम है; यदि शेषोक्त मत्स्य सुन्दररूप से भर्जित हो उससे देवी का निवेदन किया जा सकता है।

जलोद्भवम् यत् कल्याणि कमनीयं सुखप्रदम्।
प्रजावृद्धिकरञ्चापि तृतीयतत्त्वलक्षणम्।।

कल्याणि! तृतीय तत्त्व जल से उत्पन्न है- प्रजावृद्धिकर, जीव के लिए जीवनस्वरूप और सुखप्रद है।

इस समय भी क्या कहना होगा कि तन्त्र में मत्स्य रूपक नहीं है; वह हमारा नित्य का खाद्य है–शाल, रोयल, रोहू, मत्स्य इत्यादि?

T

इस समय चतुर्थ तत्त्व मुद्रा का विचार किया जाय-

मुद्रापि त्रिविधा प्रोक्ता उत्तमादिप्रभेदतः।
चन्द्रबिम्बनिभा शुभ्रा शालितण्डुलसम्भवा।
यवगोधूमजा वापि घृतपक्वा मनोहरा।।
मुद्रेयमुत्तमा मध्या भृष्टधान्यादिसम्भवा।
भर्जितान्यन्यवीजान्यधमा परिकीर्तिता।।

मुद्रा भी उत्तम, मध्यम और अधम ये ही त्रिविध हैं। जो चन्द्रवत् शुभ्र शालितण्डुल अथवा जव-गोधुम प्रस्तुत है- वह घृतपक्व मनोहर है; वही उत्तम कहकर परिगणित है। जो भृष्ट धान्य अर्थात् लावा से प्रस्तुत है वह मध्यम है और जो अन्य शस्य-भर्जित है उसी को अधम कहा गया है।

सुलभं भूमिजातञ्च जीवानां जीवनञ्च यत्।
आयुर्मूलं त्रिजगतां चतुर्थतत्त्वलक्षणम्।।

चतुर्थ तत्त्व सुलभ, भूमिजात और जीवों के जीवनस्वरूप तथा तीनों जगत् के जीवों के आयु का मूलस्वरूप है। मांस-मत्स्यादि व्यवहार का कारण भी सुरापान के सदृश समझना चाहिए। मनु ने कहा– "आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।" अर्थात् आचाररहित विप्रं वेदोक्त फल की प्राप्ति कर नहीं सकता। इन सभी शास्त्रों में शय्यात्याग से पुनर्निद्रा पर्यन्त पद-पद पर कठोर नियम विधिबद्ध हुआ है; अधिकांश व्यक्ति उस आचार में असमर्थ होते हैं। भोगाशक्ति का त्याग करके कितने लोग वैदिक आचार पालन में अग्रसर होंगे? उनके लिए तन्त्र का पञ्च म-कार है। पञ्च म-कार की साधना से भोग क्रमशः भगवन्मुखी होकर साधक को परम ज्ञान में उपनीत करेगा; तन्त्र में इच्छानुकूल मत्स्य-मांसाहारादि की विधि नहीं है। यथा–

मन्त्रार्थस्फुरणाय ब्रह्मज्ञानोद्भवाय च।

T

सेव्यते मधुमांसादि तृष्णया चेत् स पातकी।।

मन्त्रार्थ और देवता की स्फूर्ति के लिए और ब्रह्मज्ञान के उद्भव के लिए मद्य-मांस प्रभृति नियमानुकूल व्यवहृत होते हैं। जो लोभवशतः मांसादिका भोजन करेगा, उनकी गणना पातकियों में होगी।

बंगदेश (इस समय संपूर्ण देश) में प्रायः अधिकांश व्यक्ति मद्य-मांस खाते हैं। सात्त्विक वैष्णव-धर्म ग्रहण करके भी कलि के प्रबल प्रताप से अधिकांश व्यक्ति मत्स्य के लोभ का वर्जन नहीं कर सकते। जिसे आचार का प्रतिपालन करना असम्भव है, उस पथावलम्बन से उक्त फल की प्रत्याशा असंभव है। इसी से त्रिकालदर्शी महादेव ने कलि के भोगासक्त जीवों के लिए मत्स्यमांसादिद्वारा साधना की व्यवस्था की है। मनुने भी कहा है–

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ।।

मनुष्यादि के लिए मांसभक्षण में, मद्यपान में, मैथुन में दोष नहीं है–कारण यह है कि यह प्रवृत्तिकर्म है। बाद में निवृत्तिकाल में महाफल की प्राप्ति होगी।

पञ्चम तत्त्व

पञ्चमतत्त्व के सम्बन्ध में थोड़ा सा विशद विचार करना होगा।

शेषतत्त्वं महेशानि निर्वीर्यं प्रबले कलौ।
स्वकीया केवला ज्ञेया सर्वदोषविवर्जिता।।

महेशानि! प्रबल कलिकाल में मानवगण निर्वीर्य हो जायेंगे। इसलिए अन्तिम तत्त्व (मैथुन) सर्वदोषवर्जित अपनी पत्नी के साथ ही सम्पन्न करना होगा; इसलिए और किसी दोष के होने की आशंका नहीं रहेगी।

T

मैथुन के विषय में भी शिव का इसी प्रकार गूढ़ आदेश है कि कुलज्ञानहीन मैथुनासक्त और सविकल्प व्यक्ति के लिए यथाविधि उनके आदेश का पालन करना असम्भव है। इसी कारण सदाशिव ने कहा है-

बिना परिणीतां वीरः शक्तिसेवां समाचरन्।
परस्त्रीगामिनां पापं प्राप्नूयान्नात्र संशयः।।

–महानिर्वाणतन्त्र

विवाहिता पत्नी के अतिरिक्त साधक अन्य स्त्री के ग्रहण करने से परस्त्रीगमन का पापभागी होगा–इसमें सन्देह नहीं है।

इस स्वकीय पत्नी में भी शिव ने साधनाङ्ग विधिबद्ध नियम करके **''पतनं विधिवर्जनात्''**- विधिलंघन से पतन अनिवार्य कहा है। इसलिए वेद, स्मृति और पुराणादि की अपेक्षा मैथुन के विषय में तन्त्र में कठिन विधि व्यवस्थापित हुई है। तब जो तन्त्र की दुहाई देकर सुरापान और परकीया रमणी के साथ आनन्द से व्यभिचार करता है, उसकी बात ग्राह्य नहीं है। जो भी हो तन्त्र के मैथुन में जो सहस्त्रार में जीवात्माका रमण नहीं है, वह उपरोक्त दो वचनों से ही प्रमाणित हुआ है।

महानन्दकरं देवि प्राणिनां सृष्टिकारणम्।
अनाद्यन्तजगन्मूलं शेषतत्त्वस्य लक्षणम्।।

पञ्चमतत्त्व महा आनन्ददायक है, प्राण सृष्टिकारक है और आद्यन्तरहित जगत् का मूल कारण है।

अन्तिम तत्त्व की आकांक्षा, उत्पन्न जीवमात्र के हृदय में वर्तमान है–जिसके आकर्षण से जीव नरक के पथ पर चढ़ जाता है, उसे क्या इच्छा करने से ही छोड़ा जा सकता है? जो व्यक्ति रमणी के हाथ की अवहेलना किया, वह प्राकृतिक बाहुबन्धन अथवा आकर्षण की अग्नि से बच गया है। इसी से अन्यान्य शास्त्र कहते हैं– ''कामिनीकाञ्चन त्याग करो''? किन्तु तन्त्रशास्त्र कहता है–''परित्याग

T

का उपाय क्या है? बल प्रयोग से कितने दिन तक उसका त्याग किया जा सकेगा? वह बल अधिक दिन तक रहने वाला नहीं है। इस विश्वप्रसारित प्रकृति का अनलबाहु के हाथों से बचना अथवा रमणी आसंग-स्पृहा परित्याग करना सहज नहीं है अथवा उस परित्याग की शक्ति किसी में भी नहीं है। **रमणीत्व को जननीत्व में परिणत करो,** उसके होने से तुम्हारी प्राकृतिक पिपास मिट जाएगी।'' इसी से तन्त्र में पञ्चम तत्त्व की साधना है। इसी से रमणी को साथ लेकर उच्चस्तर पर अधिरोहण किया जाता है। पञ्चम तत्त्व की साधना में प्रकृति वशीभूत होती है, आत्मजय होती है और बिन्दु साधनों में सिद्धि लाभ होती है। क्योंकि प्रकृतिमूर्ति रमणी अथवा मातृशक्ति सदा आकर्षित करती रहती है और बाँध के रखती है। यदि उसी शक्ति की साधना द्वारा उससे आत्म सम्मिश्रण कर लिया जाय तब और उसकी आकांक्षा क्यों रहेगी। इसी कारण उसको वशीभूत किया गया।[१] तब साधक विश्व-ब्रह्माण्ड के नर-नारी के बीच और स्वतन्त्र सत्ता देख नहीं पाते; सम्पूर्ण शक्ति का समावेश उसी एक स्थल पर होता है। तब वह और रूपज मोह नहीं रहता–प्राण का बंधन हो जाता है। आत्मा में आत्मा का मेल-मिलाप, बिजली-बिजली से जिस प्रकार जुड़ जाती है, यह भी उसी प्रकार का मिलन है। इसमें और विच्छेद नहीं होता है। दोनों शक्तियाँ एक होकर आत्मसम्पूर्ति का लाभ उठाती हैं। इससे प्रकृति की प्रधान आसक्ति की आग बुझ जाती है, जीव जिस आकांक्षा से दौड़ता है, उसकी ज्वाला कम हो जाती है। तब जीव जीवन्मुक्त हो जाता है।

तन्त्रोक्त साधना से क्रमशः नर नारी के चिन्तन से महायोगी हो

---

१. मेरे द्वारा प्रणीत "ज्ञानीगुरु" ग्रन्थ के नादबिन्दुयोग शीर्षक प्रबन्ध में इस तत्त्व को विशद करके लिखा गया है।

जाता है; धारणा, ध्यान और समाधि में मग्न होता है, तब नारी उसके संयम का आश्रय बनती है। इसी से आध्यात्मिक योगी–इसी से तान्त्रिक साधक ने साधन-पर्वत के शिखर पर बैठकर ज्ञान की प्रदीप्त अग्नि जलाकर तत्त्व-रहस्य का आविष्कार किया है। यह तत्त्व-रहस्य जगत् का अति अपूर्व कठोर विज्ञान है; यह कविकल्पना-प्रसूत गाथा नहीं है। किन्तु यह भी स्मरण रखना होगा कि तत्त्वदर्शी गुरु की सहायता के बिना यह कार्य सम्पादन कभी न करें, क्योंकि पञ्चतत्त्व के एक-एक तत्त्व का आकर्षण मनुष्य को आबद्ध करके रखता है। साधारणरूप से उसके एक-एक पदार्थ के सम्मिलन अथवा व्यवहार से मनुष्य को पशुत्व प्राप्त होता है; जड़-मनुष्य जड़ता की शृंङ्खला में और बँध जाता है और पाँच-पाँच को लेकर मत्त होने पर मनुष्य नितान्त अध:पतन को पहुँचेगा, इसमें और सन्देह क्या है? पञ्चतत्त्व की साधना करना और कालभुजङ्ग लेकर क्रीड़ा करना दोनों समान है। कुलाचार सम्पन्न न हो सकने पर मनुष्य इस पञ्चतत्त्व-साधना का अधिकारी नहीं होता है। इसका अपव्यवहार करने पर मनुष्य क्या इस लोक क्या परलोक दोनों को विनष्ट कर देता है।

हर-गौरी के चित्र को देखकर हम इसी कठोर सत्य पर पहुँच सकते हैं। महाकाल, महामृत्यु वृषभारोहण में–उनके अङ्क में विश्वजननी प्रतिष्ठित हैं। पुराणादि के रूपक की भाषा में चतुष्पाद धर्म का नाम वृष है। पूर्णचतुष्पाद धर्म के ऊपर महाकाल प्रतिष्ठित है और उनके अंक में उनकी शक्ति अथवा प्रकृति अधिष्ठित है। इस चित्र का मर्मार्थ–जीवन-मरण के क्रोड़ में अधिष्ठित है, अर्थात् मरण के ही राज्य में जीवन के नेपथ्य का विधान हुआ है। मरण के भीतर से ही जीवन का पथ है। यह तत्त्व वृषरूपी अटल विश्वजनीन सत्य में प्रतिष्ठित है। महायोगी शङ्कर के अंक में जिस प्रकार शंकरी अवस्थित

हैं, उसी प्रकार तान्त्रिक साधक के अंक में पञ्चम तत्त्व हैं। किन्तु पूर्ण चतुष्पाद धर्मरूपी वृषभ के ऊपर अधिष्ठित होना चाहिए। इसी में कौल के अतिरिक्त और किसी को इस साधना का अधिकार नहीं है। मनुष्य जब कौलाचार में अधिष्ठित रहता है, तब वह सम्पूर्ण धर्मज्ञ है, इसी से तब उसके क्रोड़ में पञ्चम तत्त्व अधिष्ठित है। वह तब आविष्टिशक्ति में अनुप्रविष्ट रहता है।

मनुष्य चिरदिन से ही आत्मविस्मृत है; वह रजोगुण के प्राबल्य से अपने को अपने ही सहज समुन्नत समझता है। यदि मनुष्य अपनी अवस्था स्वयं न समझ कर, अपने को उच्चाधिकारी कुलाचार ज्ञान सम्पन्न समझ कर कठिन से कठिनतर साधना करने के लिए जाता है तो उसका पतन अनिवार्य है। इसीलिए गुरु का प्रयोजन है। शास्त्रवित् चिकित्सक जिस प्रकार व्याधि का निर्णय करके औषधि की व्यवस्था करते हैं, आध्यात्मिक-ज्ञानसम्पन्न गुरु भी उसी प्रकार शिष्य के अधिकार को समझ कर साधना-पद्धति का पथ स्थिर कर देते हैं। साधक की आध्यात्मिक अवस्था को लेकर साधना के पथ को निर्दिष्ट कर देते हैं। उस अवस्था को तन्त्रशास्त्र सात भागों में विभक्त कर **सप्त आचार** नाम दिया है।

सप्त आचार

आचार नाम से शास्त्रविहित अनुष्ठेय कुछ कार्यों को समझना अर्थात् शास्त्र में जिन कार्यों को विधेय कहकर निर्दिष्ट किया गया है, जिनका अनुष्ठान अवश्य ही करना होगा, उसी को आचार समझना चाहिए। शास्त्रविधिनिन्दित कार्य को भी आचार कहा जाता है, किन्तु वह कदाचार है। अतएव आचार शब्द से शास्त्रविधि-विहित अनुष्ठेय

T

कार्यसमष्टि को ही समझा जाता है। आचार सप्तविध है यथा- वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धाचार और कौलाचार।

इस समय कौन आचार किस प्रकार का है- उसका लक्षण निर्देशित किया जा रहा है।

वेदाचार- साधक ब्राह्ममुहूर्त में गात्रोत्थानपूर्वक गुरुदेव के नाम के अंत में 'आनन्दनाथ' यह शब्द उच्चारण करके उनको प्रणाम करेगा। सहस्त्रदल पद्म में ध्यान लगाकर पञ्चोपचार से पूजा करेगा और वाग्भव बीज (ऐं) मन्त्र दश अथवा उससे अधिक बार जप करके परम-कला कुलकुण्डलिनीशक्ति के ध्यानानन्तर यथाशक्ति मूलमंत्र जप करके जपसमापन के अन्त में बहिर्गमन करके नित्यकर्म-विध्यनुसार त्रिसन्ध्या स्नान और समस्त कर्म करेगा। रात्रि में देवपूजा नहीं करनी चाहिए। पर्वदिन में मत्स्य, मांस का परित्याग करना चाहिए और ऋतुकाल को छोड़कर स्त्रीगमन नहीं करना चाहिए। यथाविहित अन्यान्य वैदिक अनुष्ठान करें।

वैष्णवाचार- वेदाचार के व्यवस्थानुसार सर्वदा नियमित क्रियानुष्ठान में तत्पर रहें। कभी भी मैथुन तथा उससे संक्रान्त बात भी न करें। हिंसा, कुटिलता, मांसभोजन, रात में माला-जप और पूजा-कार्य वर्जन करें। श्रीविष्णुदेव की पूजा करें और समस्त जगत् को विष्णुमय देखें।

शैवाचार- वेदाचार के नियमानुसार से शैवाचार की व्यवस्था की गई है। परन्तु शैवों में विशेष यह है कि पशुघात निषिद्ध है। सर्व कर्मों में शिवनामका स्मरण करें और व्योम्-व्योम् शब्द द्वारा गाल बजायें।

दक्षिणाचार- वेदाचार के क्रम से भगवती की पूजा करें और रात्रियोग में विजया (भाँग) ग्रहण कर गद्-गद् चित्त से मन्त्र-जप करें।

चतुष्पथ में, श्मशान में, शून्यागार में, नदीतीर पर, मृत्तिका के नीचे, पर्वतगुहा में, सरोवर तट पर, शक्तिक्षेत्र में, पीठस्थल में, शिवालय में, आंवला वृक्षतल पर, पीपल अथवा बिल्वमूल में बैठकर महाशंखमाला (नरास्थिमाला) द्वारा जप करें।

वामाचार- दिन में ब्रह्मचर्य और रात्रि में पञ्चतत्त्व (मद्य-मांसादि) द्वारा देवी की आराधना करें। चक्रानुष्ठान करके मन्त्रादि जप करें। यह वामाचार क्रिया सर्वदा मातृजारवत् गोपनीय है। पञ्चतत्त्व और ख-पुष्प[1] द्वारा कुल-स्त्री की पूजा करें; उससे ही वामाचार होगा। वामास्वरूपा होकर परमाप्रकृति की पूजा करें।

सिद्धान्ताचार- जिससे ब्रह्मानन्द ज्ञान प्राप्त हो जाय, इस प्रकार वेद, शास्त्र, पुराणादि में गूढ़ ज्ञान होता है। मन्त्र द्वारा शोधन करके देवी का प्रीतिकर जो पञ्चतत्त्व है, उसमें पशुशंका वर्जनपूर्वक प्रसादरूप में सेवन करें। इस आचार की साधना के लिए पशुहत्या द्वारा (यज्ञादि सदृश) कोई हिंसा दोष नहीं होगा। सदा रुद्राक्ष अथवा अस्थि माला और कपालपात्र (खोपड़ी) साधक धारण करेगा और भैरव-वेश धारण करके निर्भय होकर प्रकाश्य स्थान पर विचरण करें।

कौलाचार- कौलाचारी व्यक्ति को महामन्त्र-साधना में दिशा और काल का कोई नियम नहीं है। किस स्थान पर शिष्ट, किस स्थान पर भ्रष्ट अथवा कहाँ भूत अथवा पिशाचतुल्य होकर नाना वेश सहित कौलव्यक्ति भूमण्डल पर विचरण करेगा। कौलाचारी व्यक्ति का कोई निर्दिष्ट नियम नहीं है। उसके लिए स्थानास्थान

---

१. ख-पुष्प अर्थात् स्वयम्भू, कुण्ड, गोलक और वज्रपुष्प, इन सभी गुप्त तत्त्वों को इसी स्थान पर गुप्त रखना समीचीन समझा।

T

कालाकाल अथवा कर्माकर्म आदि का थोड़ा भी विचार नहीं होता। कर्दम और चन्दन में समज्ञान, शत्रु और मित्र में समज्ञान, श्मशान और गृह में समज्ञान, काञ्चन और तृण में समज्ञान इत्यादि– अर्थात् कौलाचारी व्यक्ति प्रकृत जितेन्द्रिय होता है। (अतः अन्तिमतत्त्व की साधना का अधिकारी है) अर्थात् वह निःस्पृह, उदासीन और परम योगीपुरुष और अवधूत शब्द का द्योतक है।

अन्तःशाक्ता वहिःशैवाः सभायां वैष्णवा मताः।
नानावेशधराः कौला विचरंति महीतले।।

-श्यामारहस्य

अन्दर से शाक्त, बाहर से शैव, सभा में वैष्णव इसी प्रकार नाना वेशधारी कौल समस्त पृथ्वी में विचरण करता है।

साधारण आचार अपेक्षा वेदाचार, वेदाचार से वैष्णवाचार, वैष्णवाचार से शैवाचार, शैवाचार से दक्षिणाचार, दक्षिणाचार से वामाचार, वामाचार से सिद्धान्ताचार और सिद्धान्ताचार से कौलाचार श्रेष्ठ होता है; कौलाचार ही आचार की अन्तिम सीमा है, इससे श्रेष्ठ आचार नहीं है। साधक को वेदाचार से आरम्भ करके क्रम से उन्नति की उपलब्धि करनी होती है; एक ही बार में कोई कौलाचार में आगमन नहीं कर सकता है।

तन्त्रोक्त इस सप्त आचार के प्रति एक मनोनिवेश करने से तन्त्रशास्त्र-निन्दाकारीगण अपने भ्रम को समझ सकते हैं। यह मद्यमांस भोगादिविलास को पूर्ण करना नहीं है। यह संयम की पूर्ण साधना है। साधक वेदादि आचार क्रम से संयम, अभ्यास और भगवद्भक्ति लाभ करते हुए सिद्धान्ताचार तक पहुँचता है। इसके बाद साधक जितनी ही उच्च भूमि पर आरोहण करेगा उतनी ही कर्मादि से निवृत्त हो जाएगा।

क्रमशः ज्ञान का विकास होगा। इसी प्रकार से उच्च ज्ञानभूमि पर अधिरोहण करने से ही जप-पूजादि नहीं रहेंगे, तब एक चिन्मयी महाशक्ति को ही सर्वत्र देख सकेगा; उस अवस्था में साधना भी नहीं रहेगी, साध्य भी नहीं, द्रष्टा भी नहीं, दृश्य भी नहीं, ज्ञान भी नहीं, ज्ञेय भी नहीं, ध्यान भी नहीं, ध्येय भी नहीं **"एकमेवाद्वितीयम्"** एक महाशक्ति ही तब अवशिष्ट रहेंगी।[१] मेरा मैंपना विलुप्त होगा- मन का अस्तित्व विनष्ट होगा, इन्द्रिय-प्राणादि निरुद्ध होंगे। साधक इस अवस्था में पहुँच सकने पर कृतकार्य होता है और कर्म नहीं रहता-कर्मबन्धन भी नहीं रहता और शरीरपात होने के बाद परम कैवल्यपद प्राप्त करता है–**न स पुनरावर्त्तते**–उनको और इस संसार में पुनरावृत्त होना नहीं पड़ता है। इसी को ही निर्वाणमुक्ति कहते हैं, यही कौलाचार की चरमावस्था है।

योगमार्गं कौलमार्गमेकाचारक्रमं प्रभो।
योगी भूत्वा कुलं ध्यात्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।

-रुद्रयामल

हे प्रभो! योगसाधना और कौलसाधना एक ही प्रकार के हैं। कारण कौल व्यक्ति योगी होकर कुल अर्थात् कुलकुण्डलिनी का ध्यान करके सम्पूर्ण सिद्धियों को प्राप्त करता है।

------

१. वही श्रुति का कथन है–"यत्र ही द्वैतमिव भवति" "यत्र वा अन्यदिव स्यात्तत्रान्योऽन्यत् पश्येत् अन्योऽन्यद् विजानीयात्।" "यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत् केन कं विजानीयात्।"

T

भावत्रय

भाव शब्द से ज्ञानकी ही अवस्था-विशेष समझी जानी चाहिए। दिव्य, वीर और पशुक्रम से भाव तीन प्रकार के हैं।

दिव्यभाव- दिव्यभाव में देवतुल्य, सर्वदा विशुद्धान्तःकरण होना पड़ता है। सुख-दुःख, शीत-ग्रीष्म प्रभृति द्वन्द्वभाव सह्य करना होता है। दिव्यभावावलम्बी व्यक्ति रागद्वेष-विवर्जित, सर्वभूतों में समदर्शी और क्षमाशील होकर रहता है।

वीरभाव- जो सभी प्रकार के हिंसा-कार्य से विरत, जो सभी जीवों के हितसाधन में रत, जो जितेन्द्रिय है, जो महाबलशाली, वीर्यवान् और साहसिक पुरुष है, जिसको सुख-दुःख का समज्ञान है, इस प्रकार के साधक व्यक्तिको वीर कहा जाता है।

पशुभाव- पशुभाव में निरामिषभोजी होकर साधक पूजा करेगा। मन्त्रपरायण व्यक्ति ऋतु-काल बिना अपनी स्त्री को स्पर्श नहीं करेगा। रात्रिकाल में माला-जप नहीं करेगा और सुरा का भी स्पर्श नहीं करेगा।

पूर्वोक्त आचारसप्तक को दिव्य, वीर और पशु भावत्रय के अन्दर सन्निविष्ट किया गया है। अर्थात् एक-एक भाव के अन्तर्गत कई एक को रखकर आचार नियोजित किया गया है।

वैदिकं वैष्णवं शैवं दक्षिणं पाशवं स्मृतम्।
सिद्धांतवामे वीरे तु दिव्यं सत् कौलमुच्यते।।

-विश्वसारतन्त्र

वैदिक आचार, वैष्णवाचार, शैवाचार और दक्षिणाचार पशुभाव के अन्तर्गत हैं। सिद्धाचार और वामाचार वीरभाव के अन्तर्गत हैं और कौलाचार दिव्यभाव के अन्तर्गत होगा।

यहाँ पर संशय उठ सकता है कि त्रिविधभाव और सप्त आचार होने का कारण क्या है? एक भाव और एकाचार होने से ही क्या हानि थी? उसकी मीमांसा यह है कि सभी मानव-जीव एक प्रकार के प्रकृति-विशिष्ट नहीं हैं; गुणभेद से सभी की प्रकृति स्वतन्त्र है। इसलिए भाव-त्रिविध और आचार सप्तविध किए गये हैं। उनमें जिसको जो उपयोगी है; वह उस प्रकार भाव और आचार ग्रहण करने से ही सिद्धि-लाभ कर सकते हैं। यहाँ देखना होगा कि वह गुण-भेद किस प्रकार का है?

सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेद से साधन तीन प्रकार के हैं। कारण यह है कि उत्तम, मध्यम और अधम-इन्हीं तीन प्रकार के भावों से वह संगठित हुआ है। यथा–

शरीरं त्रिविधं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम्।
तत्रैव त्रिविधं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम्।।

-रुद्रयामल

अतएव जिसकी जिस प्रकार की प्रकृति है; उसके लिए उसी प्रकार का साधन ही उपयोगी होता है। तमोगुण सम्पन्न व्यक्ति कभी भी उत्तम अर्थात् सात्त्विक साधन के उपयुक्त नहीं हो सकता। कारण इस प्रकार के स्थल पर गुण-विपर्यय के लिए विरक्ति बिना आनन्दोद्भव नहीं होता। मनके स्फूर्तियुक्त न होने से किसी कार्य में ही सिद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती। इसलिए जिससे मन स्फूर्तिमय हो वही उसके लिए विहित है। इसलिए तमोगुणविशिष्ट व्यक्ति के लिए तामसिक साधना ही प्रशस्त है। इस प्रकार रजोगुणविशिष्ट व्यक्ति के लिए राजसिक और सत्त्वगुणविशिष्ट व्यक्ति के लिए सात्त्विक साधना ही मंगलकर होती है। यहाँ समझना होगा कि इस शक्ति के अनुसार जिसके शरीर में जिस प्रकार कार्यक्षम होगा, उसके लिए उस प्रकार के भाव की ही साधना-

प्रणाली श्रेयस्कर होगी। इसलिए साधनाप्रणाली को शास्त्र में सात्त्विकादि भेद से तीन प्रकार से उल्लेख किया गया है। यथा–

शक्तिप्राधान्यात् भावानां त्रयाणां साधकस्य च।
दिव्यवीरपशुनाञ्च भावत्रयमुदाहृतम्।।

–रुद्रयामल

-साधक की क्षमता के अनुसार दिव्य, पशु, वीरक्रम से भाव तीन प्रकार से कहे गये हैं। भाव शब्द मानसिक धर्म को समझना चाहिए। यथा–

भावो हि मानसो धर्मो मनसैव सदाभ्यसेत् ।

–वामकेश्वरतंत्र

–मानसिक धर्म का नाम भाव है, उसको मन के द्वारा ही अभ्यास करना होता है।

इस समय बात यह है कि मनोभाव तो अपने आप ही मन में उठता है। अर्थात् तमोगुण-सम्पन्न व्यक्ति का भाव तामसिक, रजोगुण सम्पन्न व्यक्ति का भाव राजसिक और सत्त्वगुण सम्पन्न व्यक्ति का मनोभाव सात्त्विक तो अपने आप ही होता है। तब मन द्वारा साधक और कौन सा अभ्यास करेगा? उसकी युक्ति यह है कि मुक्ति-प्रार्थना ही साधना का उद्देश्य है। सात्त्विक साधनाके बिना जब अन्यान्य साधना-कार्य के द्वारा मुक्तिलाभ असम्भव है, तब स्वयमुद्भूत तामसिक मनोभावयुक्त व्यक्ति के लिए उपाय क्या है? कारण सात्त्विक भाव अवलम्बन करने के लिए अभ्यास करना होगा। इसलिए शास्त्र का उपदेश यह है कि–

आदौ भावं पशोः कृत्वा पश्चात् कुर्यादावश्यकम्।
वीरभावं महाभावं सर्वभावोत्तमोत्तमम्।
तत्पश्चादतिसौन्दर्यं दिव्यभावं महाफलम्।।

क्रमशः अभ्यास करने के लिए प्रथम पशुभाव अवलम्बन पूर्वक कार्य समापन करके उत्तम वीरभाव धारण करना चाहिए, उसके बाद वीरभाव का कार्य समापन करके अति सुन्दर दिव्यभाव को धारण करें। अतएव समझना होगा कि तमोगुणात्मक प्रणाली को पशुभाव, रजागुणात्मक प्रणाली को वीरभाव और सत्त्व-गुणात्मक-प्रणाली को दिव्यभाव कहते हैं। इसलिए प्रथमावस्था में पशुभाव, मध्यमावस्था में वीरभाव और अन्तिमावस्था में दिव्यभाव आचरणीय है।

अतएव शास्त्रयुक्ति के अनुसार प्रथम ही पशुभाव है। इसका कारण यह है कि पशु अर्थ में अज्ञान है; अर्थात् जो पाशबद्ध अज्ञानावस्थापन्न है, वही पशु है। इसलिए अज्ञानी व्यक्ति का नाम पशु है। साधारणतः मानव-जीवन को सोलह वर्ष की अवस्था तक ही अज्ञानावस्था में रहना पड़ता है। इस सोलह वर्ष तक की मनोवृत्ति को पशुभाव कहते हैं। सत्रह वर्ष से पचास वर्ष की अवधि तक की ज्ञानावस्था को वीरभाव कहते हैं और इक्यावन वर्ष से वृद्धावस्था तक की परिपक्व ज्ञानावस्था को दिव्यभाव कहते हैं। जिस समय तक जीव का ज्ञानोदय नहीं होगा वास्तविक रूप से उस समय तक पशुतुल्य ही उसे रहना होता है। इसलिए उस काल की मनोवृत्ति को पशुभाव कहने में कोई बाधा नहीं देखी जाती है, इसके बाद जब ज्ञान का उद्रेक होता है तब सभी मनोवृत्तियाँ उत्तेजित रहती हैं, इसलिए उस समय के भाव को वीरभाव कहते हैं। सबके अन्त में ज्ञान परिपक्व होने पर मनोवृत्ति जब शीलता प्राप्त करती है और किसी प्रकार भोगस्पृहा नहीं रहती, तब मन भी निर्मल होकर शीतलता प्राप्त करता है; इसलिए तत्कालीन मनोवृत्ति को दिव्यभाव कहते हैं। यथा–

सर्वे च पशवः सन्ति तलवद् भूतले नराः।
तेषां ज्ञानप्रकाशाय वीरभावः प्रकाशितः।
वीरभावं सदा प्राप्य क्रमेण देवता भवेत्।।

इस पृथ्वी में समस्त लोग पशुतुल्य हैं, जब उनमें ज्ञानोदय होता है, उसी समय उनको वीरपुरुष कहा जाता है। क्रमशः वीरभाव से देवतुल्य गति प्राप्त होती है।

इसी कारणवश तन्त्रशास्त्र में दिव्य, वीर एवं पशुक्रम से त्रिविध भाव की संस्थापना की गई है।[१]

भावत्रयगतान् देवि सप्ताचारांस्तु वेत्ति यः।
स धर्मं सकलं वेत्ति जीवन्मुक्तो न संशयः।।

-विश्वसारतन्त्र

---

१. जिन पाठकों ने बंकिमचन्द्र के "देवी चौधराणी" ग्रन्थ का अध्ययन किया होगा। भवानी पाठक ने प्रफुल्ल को तन्त्रोक्त भावत्रय के आश्रित शिक्षा दी थी। प्रफुल्ल के तीन वर्ष तक के संयम की जो व्यवस्था थी वह तांत्रिक पशुभाव की व्यवस्था थी। बाद में चतुर्थ वर्ष में उसके वीरभाव का आदेश हुआ। अर्थात् प्रफुल्ल को प्रथम पशु सदृश डरे-डरे खाद्यादि सम्बन्ध में सतर्कता ग्रहण करनी पड़ी थी। वह शिक्षा पूर्ण होने पर प्रफुल्ल को और उस सतर्कता ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं थी। तब वीरभाव में उसको नाना प्रकार सात्त्विकभावविरोधी खाद्यादि के सम्मुख उपस्थित होना पड़ा। उद्देश्य यह है कि इस समस्त खाद्यादि ग्रहणजनित मन्द फल के साथ उसका पूर्वप्रकार से शुद्धीकृत सात्त्विक भाव से संघर्षण उपस्थित हो, वही वीर, वीरभाव में उसी मन्द फल की पराजय करे। पञ्चम वर्ष में उसके प्रति इच्छानुकूल भोजन का उपदेश हुआ; उसने वीरभाव का विकास करके दिव्यभाव को ग्रहण किया। तन्त्रोक्त भावत्रय के आश्रय से किस प्रकार शिक्षा प्राप्त होती है-प्रफुल्ल उसका दृष्टान्त है। कवि का तन्त्रशास्त्र में आस्था न रहने पर भी अज्ञात भाव से तन्त्र के आचार और भाव की व्याख्या की है। इसमें तन्त्र किस प्रकार उन्नत शास्त्र है वह सहज ही अनुमेय है। इस प्रकार किसी नई बात का पता लगाना कोई बहुत सहज नहीं है। जो इस विशाल हिन्दूधर्म के किसी शास्त्रकार ने कुछ कहा नहीं है।

हे देवि! जो भावत्रय सन्निविष्ट सप्ताचार को जानते हैं। वे सकल धर्म को ही जानते हैं, वही व्यक्ति जीवन्मुक्त पुरुष हैं।

यहाँ तक जो कुछ विचार किया गया, उससे पाठकगण समझ गये होंगे कि तान्त्रिक साधना अधिकारीभेद से निर्णीत हुई है और वह साधक के हृदय की अवस्था को लेकर हुई है। इसीलिए मद्यमांसादि लेकर जो साधना है, वह आध्यात्मिक उन्नत हृदय साधकों के लिए हैं। अतएव भाव अथवा ज्ञान का अनुवर्ती होकर आचार अथवा अनुष्ठेय विषय का अवलम्बन करना होगा। साधकं जिस समय जिस प्रकार ज्ञान से सम्पन्न होते हैं, उसी समय वही ज्ञानानुगत अर्थात् उसी ज्ञान सहित पराकाष्ठा को आचार कहते हैं। उसी का आश्रय लेना होगा। इसका विपर्यय करने से साधना में सिद्धि की प्राप्ति नहीं होगी–पर प्रत्यवायभागी होना पड़ेगा।

तन्त्र का ब्रह्मवाद

प्रकृति और पुरुष के एकात्मभाव का नाम ही ब्रह्म है। यथा-

शिवः प्रधानः पुरुषः शक्तिश्च परमा शिवा।
शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म योगिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

-भगवती गीता

शिव ही परम पुरुष और शक्ति ही परमा प्रकृति, तत्त्वदर्शी योगीगण प्रकृति-पुरुष की एकता को ब्रह्म कहते हैं।

वाह्य जगत् के अन्दर जो महती शक्ति है, उसी का नाम प्रकृति है और वाह्य जगत् में जो चैतन्य-स्फूर्ति स्वप्रकाश है, उसी का नाम शिव है। इसी चैतन्य और महती शक्ति का जब समष्टिरूप में एकासन पर दोनों को एकत्र जड़ित इस प्रकार अनुभव होगा अर्थात् दोनों में से एक को स्वतन्त्र करने जाने पर जब दोनों अदृश्य होंगे इस प्रकार बोधगम्य होगा, तभी साधक ब्रह्म को पहचान सकेगा। एक ब्रह्म ही

चणकवत् द्विधा होकर पुरुष-प्रकृति रूप में परिदृश्यमान हुए हैं। यथा–

त्वमेको द्वित्वमापन्नः शिवशक्तिप्रभेदतः ।

-काशीखण्ड

–वही अद्वितीय परमात्मा ही शिव और शक्तिभेद से द्वित्वभावापन्न हुआ है।

सृष्टि के पूर्व यह जगत् केवल सन्मात्र था। वे एक और अद्वितीय थे। उन्होंने विचार किया कि मैं प्रजा रूप में बहुत होऊँगा।

सत्यलोके निराकारा महाज्योतिःस्वरूपिणी।
माययाच्छादितात्मनी चणकाकाररूपिणी।।
मायावल्कलं सन्त्यज्य द्विधा भिन्ना यदोन्मुखी।
शिवशक्तिविभागेन जायते सृष्टिकल्पना।।

-निर्वाणतन्त्र

सत्यलोक में आकार रहित महाज्योतिःस्वरूप परब्रह्म महाज्योतिःस्वरूपा निजमाया द्वारा स्वयं ही आवृत्त होकर चणक-तुल्य ढङ्ग से विराजित हैं। चणक (चना) जिस प्रकार एक आवरण (छिलका) में अङ्कुर सहित दो दल एकत्र आबद्ध रहते हैं, प्रकृति और पुरुष उसी प्रकार ब्रह्मचैतन्य-सहित आच्छादन से आवृत्त रहते हैं। वही मायारूप वल्कल (छिलका) भेद करके वे शिव-शक्ति रूप में प्रकाशित हुए हैं। प्रकृति-पुरुष को "ब्रह्म-चैतन्य सह" कहने का प्रयोजन यह है कि प्रकृति-पुरुषात्मक जीवदेह ब्रह्म-चैतन्य द्वारा ही सचेतन होती है। ब्रह्म-चैतन्य परित्यक्त होने पर जीवन शरीर का केवल जड़-मात्र रहता है।

ब्रह्म जब निर्गुण और निष्क्रिय रहता है, तभी वह ब्रह्म है और सगुण होते ही ईश्वर अथवा पुरुष हो जाता है और वही इच्छा अथवा वासनाशक्ति ही प्रकृति या आद्याशक्ति महामाया है। वही पुरुष और

प्रकृति सर्वत्रगामी और सर्ववस्तु में ही अवस्थिति कर रहे हैं। इस संसार में इन दोनों से विहीन होकर कोई वस्तु नहीं रह सकती है। परमात्मा निर्गुण हैं, वे कभी भी दृश्य नहीं होते। परमा-प्रकृतिरूपिणी महामाया सृजनादि के समय सगुणा और समाधि अवस्था में निर्गुणा होकर रहती है। प्रकृति अनादि है, अतएव वे सतत ही इस संसार के कारण रूप में विद्यमान हैं; कभी भी कार्य रूप में नहीं होती है। वे जब कार्यरूपिणी होतीं हैं तभी सगुणा होती हैं और जब पुरुष के सन्निधान में परमात्मा सहित अभिन्नरूप में अवस्थान करती हैं, गुण-त्रय की साम्यावस्था के कारण गुणोद्भव के अभाव में तभी प्रकृति निर्गुणा होकर रहती है।

अतएव "मैं बहुत होऊँगा" ब्रह्म का इस प्रकार वासना संजात होने पर उसको प्रकट चैतन्य और उसी वासना को मूलातीत मूल प्रकृति कहते हैं।

योगेनात्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः।
पुमांश्च दक्षिणार्द्धाङ्गं वामाङ्गं प्रकृतिः स्मृता।।
सा च ब्रह्मस्वरूपा च माया नित्या सनातनी।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्मृता।।

-ब्रह्मवैवर्त्तपुराण

परमात्मस्वरूप भगवान् ने सृष्टिकार्य के लिए योगावलम्बन करके अपने को दो भागों में विभक्त किया। इस भागद्वय में दक्षिण अर्द्धाङ्ग में पुरुष और वामार्द्धाङ्ग में प्रकृति है। वह प्रकृति ब्रह्मस्वरूपिणी, मायामयी, नित्या और सनातनी है। जिस प्रकार अग्नि के रहने से उसकी दाहिका शक्ति रहती है उसी प्रकार जिस स्थान पर आत्मा रहती है, उसी स्थान पर शक्ति रहती है और जिस स्थान पर पुरुष, उसी स्थान पर प्रकृति विराजिता है। कारण–

शक्तिशक्तिमतोश्चापि न विभेदः कथंचन ।

शक्तिमान् से शक्ति कभी भी भिन्न नहीं हो सकती है। यथा–

यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः।
नानयोरन्तरं विद्याच्चन्द्रचन्द्रिकयोर्यथा।।

-वायुपुराण

चन्द्र से चन्द्रकिरण की जिस प्रकार पृथक् सत्ता नहीं होती, उसी प्रकार शिव और शक्ति की पृथक् सत्ता नहीं है, इसीलिए जहाँ शिव वहीं शक्ति और जहाँ शक्ति वहीं शिव है। सांख्य कहता है–

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्ग्वन्धवत् उभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः।।

-सांख्यकारिका

प्रकृति अचेतन है, इसलिए अन्धस्थानीय है; पुरुष अकर्त्ता है इसलिए पङ्गुस्थानीय है; दोनों संयुक्त होकर एक अन्य के अभाव को दूर करते हैं।

जिस प्रकार अन्धा देख नहीं पाता और पंगु चल नहीं पाता, किन्तु अन्धे के कन्धे पर पंगु चढ़कर पथ दिखाता है; अन्धा उसको कन्धे पर रखकर चलता जाता है। उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष संयुक्त होकर एक के अभाव को दूसरा पूर्ण करता है; उसके संयोग के फल से सृष्टि साधित होती है।

यह प्रकृति-पुरुष उभयात्मक ब्रह्म ही तन्त्र की शिव-शक्ति है। किन्तु वेदान्तके मत में माया मिथ्या है; केवल अधिष्ठानरूप ब्रह्म में ही माया कल्पित बनी रहती है। इसलिए अधिष्ठान की सत्ता से रहित माया की पृथक् सत्ता की प्रतीति नहीं होती है। पर यहाँ शक्ति में ही अधिष्ठान-भूत सत्तारूप ब्रह्म की उपासना सम्भव है ऐसा स्वीकार करना होगा। फलस्वरूप इसी आकार में शक्ति के स्वरूपत्व का प्रतिपादन होने से किसी भी प्रकार के विरोध नहीं हो सकता। क्योंकि ब्रह्म-उपासना के स्थान पर केवल ब्रह्म को ग्रहण किए बिना जिस

प्रकार ब्रह्मातिरिक्त सत्ता अभावप्रयुक्त शक्ति-विशिष्ट ब्रह्म को ग्रहण करना होगा। उसी प्रकार शक्ति की आराधना करने पर भी परब्रह्मसत्ताविशिष्ट शक्ति की उपासना को समझना होगा। परिणाम यह है कि जिस प्रकार निरुपाधिक विशुद्धचैतन्यस्वरूप परब्रह्म की उपासना सम्भव ही नहीं, उसी प्रकार ब्रह्म को छोड़कर केवल महाशक्ति की उपासना भी सम्भव नहीं है। अधिकन्तु शक्ति का आश्रय नहीं है, वे ब्रह्म के ही आश्रित हैं। वही तान्त्रिकों की महाशक्ति है–

शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिता।

शवरूप महादेव ही निष्क्रिय परब्रह्म हैं। उन्हीं को आश्रय करके ब्रह्मशक्ति क्रियाशील है, उसी महाकाली ने शिव के ऊपर स्थित होकर सृष्टि-स्थिति-लय कार्य को सम्पन्न किया है। यथा–

सदाशिवत्वं यत् प्राप्तः शिवः साक्षादुपाधिना।
सा तस्यापि भवेच्छक्तिस्तया हीनो निरर्थकः।।

-सूतसंहिता

शिव निर्गुण, शक्तिद्वारा उपाधि विशिष्ट होकर सगुण होते हैं, इसलिए शक्तिहीन शिव निरर्थक अर्थात् सान्त जीव के पक्ष में वही अनन्त अवश्य ही निरर्थक है।

ब्रह्म का गुण ही शिव है, किन्तु यदि शक्ति द्वारा उपाधिमूलक न हों तब गुण का अवलम्बन कहाँ है? अवलम्बनहीनता के कारण ही वे फिर निर्गुण हैं। निर्गुण होने के कारण से ही निष्क्रिय हैं, इससे ही शिव का शिवत्व नहीं है। भगवान् शङ्कराचार्य ने कहा है–

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।

शिव यदि शक्तियुक्त है, तभी उनका प्रभाव है, नहीं तो वे निष्क्रिय हैं।

T

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

-केनोपनिषद्

ब्रह्म निर्गुण हैं। निर्गुण की उपासना सम्भव ही नहीं; अतएव शक्ति की सहायता से उसकी उपासना करनी चाहिए। तान्त्रिक की शक्ति-उपासना सगुण-ब्रह्मकी उपासना मात्र हैं। संक्षेप से कहें तो आद्याशक्ति महामाया ही सगुण ब्रह्म है, शवरूप शिव अवलम्बनमात्र हैं।

चितिस्तत्पदलक्ष्यार्था चिदेकरसरूपिणी।

चिति यह पद 'तत्' पद का लक्ष्यार्थ बोधक है, अतएव वे एकमात्र चिदानन्दस्वरूपा हैं।

अतः संसारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीम्।
आराधयेत् परां शक्तिं प्रपञ्चोल्लासवर्जिताम्।।

-सूतसंहिता

अतएव संसारनाश के निमित्त वह साक्षीमात्र है। समस्त प्रपञ्च और उल्लासादि परिवर्जित आत्मस्वरूपा परा-शक्ति की आराधना कीजिए।

इस महाशक्ति भगवती देवी की आराधना से ब्रह्म-सायुज्य की प्राप्ति होती है। यह भगवती ही जो परमतत्त्व परमब्रह्म हैं। यह भगवान् वेदव्यास के प्रति ऋगादि वेदचतुष्टय की उक्ति से सर्वसम्मति क्रम से प्रमाणित होगा।

ऋग्वेद की उक्ति -

यदन्तःस्थानि भूतानि यतः सर्वं प्रवर्त्तते।
यदाहुस्तत् परं तत्त्वं सैका भगवती स्वयम्।।

स्थूल सूक्ष्म यह समस्त जगत्-प्रपञ्च जिसमें सूक्ष्मरूप से

विलीन रहता है और जिसके इच्छानुसार सचराचर जगत् से प्रकाशमान होता है जो स्वयम् भगवती शब्द से कीर्तिमयी होती है– वही परमतत्त्व है।

यजुर्वेद की उक्ति -

या यज्ञैरखिलैरीशा योगेन च समीड्यते।
यतः प्रमाणं हि वयं सैका भगवती स्वयम्।।

निखिल यज्ञ और योग द्वारा जो स्तुयमान होते हैं और जिससे हमलोग धर्म विषय में प्रमाणस्वरूप हुए हैं, वही अद्वितीया भगवती ही परमतत्त्व हैं।

सामवेद की उक्ति -

ययेदं भ्राम्यते विश्वं योगिभिर्या विचिन्त्यते।
यद्भासा भासते विश्वं सैका दुर्गा जगन्मयी।।

जिसके द्वारा यह विश्व-संसार भ्रम विलसित हुआ है, जो वह योगीगण की चिन्तनीया हैं, जिसके तेज:प्रभाव से ही समस्त जगत् प्रकाशित हो रहा है, वह जगन्मयी दुर्गा ही परमतत्त्व हैं।

अथर्ववेद की उक्ति -

यं प्रपश्यन्ति देवेशीं भक्तानुग्राहिणो जनाः।
तामाहुः परमं ब्रह्म दुर्गा भगवतीं मुने।।

जिनके अनुग्रहाश्रित लोग भक्तिद्वारा जिनको विश्वेश्वरी स्वरूप में देख पाते हैं, उनको भगवती दुर्गा कहते हैं, वे ही ब्रह्मतत्त्व हैं।

वेदचतुष्टय की उक्ति द्वारा अविसंवादितरूप से मीमांसित हुआ कि यह देवी ही ब्रह्मवादी ऋषिगण द्वारा परिनिश्चित होकर वेद और वेदान्त में इसी रूप से प्रदर्शित हुई हैं। इसी से तान्त्रिक साधक

T

सच्चिदानन्दमयी पराशक्ति देवी को परब्रह्मरूपिणी ज्ञान से उपासना करते हैं। पर शक्ति के अवलम्बन के लिए शवरूप महादेव को संयुक्त कर लिए हैं। अतएव तन्त्र-शास्त्र के मत से प्रकृति-पुरुषात्मक शिवशक्ति ही परब्रह्म और उनकी उपासना ही ब्रह्म-उपासना है।

शक्ति-उपासना

शक्ति-उपासना आधुनिक नहीं है। आर्यजाति की प्रबल ज्ञानोन्नति के समय वे महाशक्ति के अस्तित्व को हृदयंगम करनेमें समर्थ हुए थे।[१] सत्ययुग में सुरथ त्रेता में रघुवंशावतंस श्रीरामचन्द्र ने इस महाशक्ति की पूजा की थी। वह महाशक्ति नित्या, जन्म-मृत्यु-रहित-स्वभावा, जगज् की आदि-कारण हैं। यह ब्रह्माण्ड ही उनकी मूर्ति है, उससे यह संसार निस्तार हुआ है। जिस अनादि मूलशक्ति से यह निखिल ब्रह्माण्ड सृष्ट हुआ है। विज्ञान भी उसके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकता है। इस निखिल जगत् के मूल में जो

---

१. प्रयाग नगरी के लाट की प्रस्तर-लिपि का पाठ करके ज्ञात होता है कि सप्तदश शताब्दी के पूर्व गुप्तवंशीय नरपतिगणों में कई एक शक्ति के उपासक थे। कान्यकुब्जपति महेन्द्रपालदेव और उनके पुत्र विनायकपाल प्रदत्त ताम्रशासन पाठ से अवगत हाता है कि शकाब्द की अष्टम शताब्दी से कान्यकुब्जाधिपतिगण प्राय: सभी शाक्त थे। गौड़श्वर महाराज लक्ष्मण सेन के ताम्रशासन के शीर्षदेश में देवी दाक्षायणी की प्रतिमूर्ति उत्कीर्ण है। इसके द्वारा सहज ही अनुमित होता है कि शक्ति सेनराजागणों की कुलदेवता हैं। प्राय: आठ शताब्दी पूर्व में ही तान्त्रिक धर्म का प्रबल उन्नति हुई थी। इसी समय हमारी बंगला भाषा का जन्म हुआ। शक्ति उपासक ब्राह्मण ही बंगला अक्षर और बङ्गभाषा का जन्मदाता है। शक्ति उपासक द्वारा ही बंगला भाषा का सर्वप्रथम महाकाव्य (कविवर मुकुन्दराम चक्रवर्ती कृत चण्डीकाव्य) रचा गया था।

अनिर्वचनीय, अचिन्त्य, अनन्त, अज्ञेय एक महाशक्ति विराजित रहती है। इसे पाश्चात्य पंडितगण मुक्त-कंठ से स्वीकार किये हैं। विज्ञान के ऊबड़-खाबड़ मार्ग से अहर्निश भ्रमण करके पाश्चात्य वैज्ञानिकगण इस महाशक्ति के अस्तित्व मात्र से अवगत हुए हैं।[१] जिस समय हरबर्ट स्पेंसार प्रभृति पंडितगणों के पूर्वपुरुष निर्वसन होकर वृक्षकोटर में रहते थे और वनजात फलमूल से क्षुन्निवारण करते थे, उसी समय आर्यगण ज्ञान और भक्ति के सरल मार्ग से गमन करके उसी महाशक्ति का दर्शन पाये थे।

उपनिषद् के समय आर्यगण समझ गये थे कि जिस शक्ति से देवराज इन्द्र विश्व-ब्रह्माण्ड चूर्ण कर सकते हैं। जिस शक्ति से अग्नि विश्वदहन कर सकती हैं, जिस शक्ति से पवन विश्व-विलोड़न कर सकता है–वह शक्ति उनकी अपनी शक्ति नहीं है। अन्य एक महाशक्ति से वे अपनी-अपनी शक्ति प्राप्त किये हैं। उस समय उसी महाशक्ति ने आर्यों को भगवतीरूप में दर्शन दान किया था।

अद्वैतवादियों ने इसी महाशक्ति को ज्ञानयोग से विलोड़न करके ऊपरी ओर एक अपूर्व, अद्वितीय चिन्मय पदार्थ को द्रष्टृ-रूप में संस्थापित किया है और उनके नीचे उन्हीं के आश्रय से दृश्यरूप से इस विश्व-ब्रह्माण्ड की अनन्त शक्ति के केन्द्रीभूत पदार्थ की रक्षा करके विश्वलीला की सुन्दर मीमांसा की है। सांख्यकारों ने भी इस ऊपर के पदार्थ को पुरुष और नीचे के पदार्थ को प्रकृति कहा है।

---

१. हार्बर्ट स्पेंसार कहे हैं— "There is an Infinite and Eternal Energy from which everything proceeds"

स्पेंसर ने इस महाशक्ति के स्वरूप को अपरिज्ञेय कहा है। पंडित प्रवर मिल ने इनकी जड़-शक्ति के रूप में विवेचना की है। भक्ति का अभाव ही उनकी इस प्रकार की विवेचना का कारण है।

T

इसलिये तान्त्रिकों की आराध्य महाशक्ति इन दोनों की विशाल समष्टि होकर खड़ी है। जड़-अजड़, चर-अचर सभी इसी अनन्त सत्ता के अर्न्तगत है। इसलिए ये ही निर्गुण समय में तुरीया, सगुण अवस्था में सत्त्वरजस्तमोमयी हैं–तब रजोगुण में सृष्टि, सत्त्वगुण में स्थिति और तमोगुण में विनाश साधित हाता है। महानिर्वाणतन्त्र से उद्धृत करके इस सम्बन्ध में कुछ वर्णित हो–

भगवान् महादेव ने कहा है–'हे देवि! लोग तुम्हारी साधना से ब्रह्म-सायुज्य को प्राप्त कर सकते हैं, इसलिये मैं तुम्हारी ही उपासना की बात कहता हूँ। हे शिवे! तुम्हीं परब्रह्म की साक्षात् प्रकृति हो, तुम्हीं से ही जगत् की उत्पत्ति हुई है; तुम जगत् की जननी हो। हे भद्रे! महत्तत्त्व से परमाणुपर्यन्त और समस्त चराचर सहित यह जगत् तुम्हीं से उत्पादित हुआ है; यह निखिल जगत् तुम्हारी अधीनता से आबद्ध है। तुम्हीं सम्पूर्ण विद्याओं की आदिभूता हो और हमलोगों की जन्मभूमि हो। तुम सम्पूर्ण जगत् को अवगत हो किन्तु तुमको कोई भी नहीं जान सकता। तुम सर्वदेवमयी और सर्वशक्तिस्वरूपिणी हो। तुम्हीं स्थूल, तुम्हीं सूक्ष्म, तुम्हीं व्यक्त और अव्यक्तस्वरूपिणी हो; तुम निराकार होकर साकार हो; तुम्हारे प्रकृततत्त्व से कोई भी अवगत नहीं है। तुम सर्वस्वरूपिणी और सभी की प्रधान जननी हो; तुम्हारे तुष्ट होने से सभी तुष्ट होते हैं। तुम सृष्टि के आदि में तमोरूप-अदृश्य भाव से विराजिता थीं; तुम्हीं परब्रह्म की सृष्टि करने की वासना हो; तुम्हीं से जगत् उत्पन्न हुआ है। महत्तत्त्व से आरम्भ करके महाभूत पर्यन्त निखिल जगत् तुम्हारी ही सृष्टि है। सर्वकारणों के कारण परब्रह्म केवल निमित्त मात्र है। ब्रह्म सत्स्वरूप और सर्वव्यापी हैं; उन्होंने सम्पूर्ण जगत् को आवृत्त करके रखा है; वे सर्वदा एक भाव से अवस्थित हैं; वे चिन्मय और सभी वस्तुओं से निर्लिप्त हैं। वे कुछ भी नहीं करते हैं;

T

सत्य और ज्ञान-स्वरूप आद्यन्त वर्जित और वाणी और मन से अगोचर हैं। तुम परात्परा महायोगिनी, तुम उसी ब्रह्म की इच्छामात्र अवलम्बन करके इस चराचर जगत् का सृजन, पालन और संहार करती हो।[१]

यह महाशक्ति विद्या और अविद्या-स्वरूप में मुक्ति और बन्धन का कारण बन कर रहती हैं। यदि कोई कहे कि एक ही प्रकृति बन्धन और मुक्ति का कारण किस प्रकार हुई? उसका उत्तर यह है कि एक ही सुन्दर रमणी जिस प्रकार प्रियजन के सुख का, सपत्नी के दुःख का और निराश प्रेमी के मोह का कारण हो जाती है; उसी प्रकार महाशक्ति विद्या और अविद्यारूप से मुक्ति और बन्धन का कारण होकर रहती हैं। महामति मेधस ने कहा है–

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया संमोह्यते जगत्।
सैव प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी।।

–श्रीचण्डी

---

१. शृणु देवी महाभागे तवाराधनकारणम्।
तव साधनतो येन ब्रह्मसायुज्यमश्नुते।।
त्वं परा प्रकृतिः साक्षात् ब्रह्मणः परमात्मनः।
त्वत्तो जातं जगत् सर्वं त्वं जगज्जननी शिवे।।
महदाद्यणूपर्यन्तं यदेतत् सचराचरम्।
त्वयैवोत्पादितं भद्रे त्वदधीनमिदं जगत्।।
त्वमाद्या सर्वविद्यानामस्माकमपि जन्मभूः।
त्वं जानासि जगत् सर्वं न त्वां जानाति कश्चन।। -इत्यादि

–महानिर्वाणतंत्र ४र्थ उल्लास

वही मूला प्रकृति महाशक्ति नित्या हैं, जगन्मूर्ति हैं और उन्होंने समस्त जगत् को मुग्ध कर रखी है। वे प्रसन्न होने पर मनुष्यों को मुक्ति के लिये वरदान करती हैं। वे विद्या हैं, सनातनी और सभी की ईश्वरी तथा मुक्ति और बन्धन की हेतुभूता हैं।

तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः।
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणः।।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः।
महामाया हरेश्चैतत्तया संमोह्यते जगत्।।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।।

–श्रीचण्डी

जगत् की स्थिति के सम्पादन के लिय उस महामाया के प्रभाव से जीवगण ममता-आवर्त्त-परिपूर्ण मोहगर्त्त में निपतित होते हैं। दूसरों की बात क्या कहूँ, जो जगत्पति हरि हैं, वे भी इसी महामाया द्वारा वशीकृत रहते हैं। ये सर्वेन्द्रियशक्ति की नियन्त्री हैं; इनका ऐश्वर्य अचिन्त्य है; ये ज्ञानीगण के चित्त को भी बलपूर्वक संमुग्ध कर देती हैं। इनके द्वारा ही चराचर समस्त जगत् प्रसूत हैं; ये प्रसन्न होने पर लोगों की मुक्तिदात्री होती हैं।

तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति।।
व्याप्तन्तयैतत् सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर।
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया।।

सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा।
स्थिति करोति भूतानां सैव काले सनातनी।।
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीवृद्धिप्रदा गृहे।
सैवाभावे तथा लक्ष्मीर्विनाशायोपजायते।।
स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगंधादिभिस्तथा।
ददाति वित्तंपुत्रांश्च मतिं धर्मे तथा शुभाम्।।

–श्रीचण्डी

इस देवी के द्वारा ही यह विश्व ब्रह्माण्ड मुग्ध होता है; यही इस विश्व की सृष्टि करती हैं; इनके निकट प्रार्थना करने से तुष्ट होकर ज्ञान और सम्पदा प्रदान करती हैं। इस महाकाली द्वारा अनन्त विश्व परिव्याप्त है। ये महाप्रलय काल में ब्रह्मादि को भी अकस्मात् आत्मसात् कर लेती हैं और खण्डप्रलय में ही समस्त प्राणीगण का पालन करती हैं, किन्तु इनकी कभी भी उत्पत्ति नहीं होती। ये नित्या हैं। लोगों के अभ्युदयकाल में ये ही वृद्धिप्रदा लक्ष्मी हैं और अभाव के समय अलक्ष्मीरूप में विनाश करती हैं। इनका स्तवन करके पुष्प, गन्ध, धूपादि द्वारा पूजा करने से वित्त-पुत्रादि, दान और धर्म से शुभबुद्धि प्रदान करती हैं।

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा।

–श्रीचण्डी

इन्हीं महाशक्ति के शरणापन्न होकर इनकी आराधन कर सकने से भोग, स्वर्ग और मुक्ति की प्राप्ति होती है।[1]

एकमात्र महामाया की आराधना करके उनको प्रसन्न कर लेने पर

---

1. महामाया की आराधना का कारण और तत्साधनोपाय मत्प्रणीत 'ज्ञानीगुरु' पुस्तक में मायावाद शीर्षक निबन्ध में विस्तार से लिखा गया है।

जो मुक्ति का हेतुभूत तत्त्वज्ञान उत्पन्न हो जाता है, आशा है कि इसको सभी समझ गये होंगे। हम लोगों के ज्ञान को वही विषयरूपिणी महामाया संसारस्थितिकारण से विध्वंस करके ममतावर्तपूर्ण मोहगर्त्त में गिराती हैं। वह ज्ञान उसी ज्ञानातीत महामाया के बलद्वारा आकर्षण और हरण करके जीव को संमुग्ध कर रखता है। इस प्रकार से वे इस जगत् को स्थिर रखती हैं। नहीं तो कौन किसका है--किसके लिये क्या है? यदि मायावरण उन्मुक्त हो जाय, यदि मोह का चश्मा खुल जाय-तब कौन किसका पुत्र है, कौन किसकी कन्या है, कौन किसकी स्त्री है। वही महामाया रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द द्वारा हाट बसा करके जीवगण को प्रलुब्ध करके इस भवरूपी हाट में खेल रहीं हैं। इस रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द के प्रलोभन से जीव अपने को जोड़कर घूम रहा है--इनके आकर्षण में सम्पूर्ण जीव उन्मत्त हैं। जीव का साध्य नहीं कि यह नशा, यह आकुल तृषा निवारण कर पावे। पर यदि वह विषयाधिष्ठात्री देवी उस परमविद्या--मुक्ति की हेतुभूता सनातनी प्रसन्न हों, तभी जीव इस बंधन से विमुक्त हो सकता है। इसीलिये परमतत्त्वज्ञ महेश्वर ने कहा है-

शाक्तिज्ञानं विना देवि मुक्तिर्हास्याय कल्पते।

–श्रीचण्डी

अर्थात् शक्ति-उपासना भिन्न मुक्ति की आशा हास्यजनक और वृथा है। शक्ति-उपासना उसी ब्रह्मरूपिणी महामाया की साधना है। उनकी साधना करके साधक प्रकृति की जो सुखलालसा है, उसका ही उपभोग करता है और मोहावर्त्त को विनष्ट करता है। प्रकृति के रस का उपभोग करके माया के बंधन के आकर्षण की आकुलता को विनष्ट करके, शक्तिसाधना में उत्तीर्ण हो सके तो साधक ब्रह्मसायुज्य की प्राप्ति कर सकता है।

साधक प्रथमतः सद्गुरु के निकट से देवी का मन्त्र ग्रहण करते

हुए काय-मन-वाणीद्वारा उनको आश्रय करें, सर्वदा उनमें मनोविधान की चेष्टा करेगा तद्‌गतप्राण होकर रहेगा। सर्वदा उसका प्रसंग, उनके गुणगान और उनके नाम-जप में समुत्सुक रहेगा। जो साधकोत्तम मुक्ति की इच्छा करेगा, वह उनका भक्तिपरायण होकर उनकी पूजादि के प्रसंग में प्रीतिपूर्वक हृदय से तल्लीन होगा। अपने-अपने वर्णाश्रमादि और वेदविहित और स्मृत्यनुमोदित पूजा-यज्ञादि द्वारा उनकी ही अर्चना करेगा अर्थात् कामनारहित होकर इन सब अनुष्ठानों को देवी की प्रीति के लिये ही करेगा। क्योंकि–

ज्ञानात् संजायते मुक्तिर्भक्तिर्ज्ञानस्य कारणम् ।
धर्मात् संजायते भक्तिर्धर्मो यज्ञादिको मतः ॥

-भगवतीगीता

यज्ञादिद्वारा धर्मलाभ, धर्म से भक्ति, भक्ति से ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

अतएव धर्मार्थ सभी मुमुक्षु लोग यज्ञ, तपस्या और दान द्वारा देवी की उपसना करेंगे; उनके द्वारा क्रमशः जब भक्ति दृढ़तरा होगी, उसके बाद ही तत्त्वज्ञान का उदय होगा। उसी तत्त्वज्ञान के द्वारा मुक्ति प्राप्त होगी। इसी प्रकार शास्त्रविधिविहित कर्म से अन्तःकरण निर्मल होगा, तब आत्मज्ञान उद्दीप्त होने से सदा इच्छा होगी कि कितने दिनों में परमधन की प्राप्ति होगी। तब समस्त जगत् और सभी (स्त्री-पुत्रादि) के प्रति घृणा होकर और उसके द्वारा देवी के सच्चिदानन्द स्वरूप नित्य विग्रह में मनोनिवेश होता है, उसके लिये उपयोगी वेदान्तादि शास्त्र में मनोनिवेश होता है। गुरूपदेश की सहायता से इन सब अध्यात्मशास्त्रों के विचार करते-करते उनके नित्य कलेवर का उसी अपार आनन्द सागर से किसी समय भी अत्यल्प काल के लिये भी अन्तःकरण का स्पर्श होता है। उसीसे जगत् के समस्त पदार्थ अत्यन्त जघन्य सुख का कारण-रूप

से प्रतीत होता है। उसे किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं रहती है, इसलिये कामना का परित्याग हो जाता है। सम्पूर्ण जीव पदार्थों को देवी की सत्ता का निश्चय होने से सभी जीवों के प्रति परम यत्न उपस्थित होता है। इसलिए हिंसा का भी परित्याग हो जाता है। इस प्रकार भावापन्न होने से ही तत्त्वविद्या आविर्भूता होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। तत्त्वज्ञान के उपस्थित होने से ही उनका नित्यानन्द विग्रह जो परमात्मभाव है, उसी का साक्षात् प्रत्यक्ष होता है। उसी से ही साधक जीवन्मुक्ति को प्राप्त करता है–

निर्गुणा सगुणा चेति द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः ।
सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः ॥

-देवीभागवत

वही परमब्रह्मस्वरूपिणी सच्चिदानन्दमयी पराशक्ति देवी को ब्रह्मवादी मनीषियों ने सगुण और निर्गुण भेद से दो प्रकार बता कर कीर्त्तन किया है; उसके बीच संसारासक्त सकाम-साधकगण उसके सगुणभाव को और वासनावर्जित ज्ञान को वैराग्यपूर्ण निर्मलचेता योगीगण निर्गुणभाव को समाश्रयपूर्वक उपासना करते हैं, उसका कारण देवी की वाणी के द्वारा ही मीमांसित होगा। गिरिराज के प्रश्न पर पार्वती ने कहा है–

"हे पितः! सहस्र-सहस्र मनुष्यों में से कोई मुझ में भक्तियुक्त होता है। सहस्र-सहस्र भक्तियुक्तों में से कोई मेरा तत्त्वज्ञ होता है। मेरा जो रूप परमसूक्ष्म, सुनिर्मल, निर्गुण, निराकार, ज्योतिःस्वरूप, सर्वव्यापी है; परन्तु निरंश, वाक्यातीत, समस्त जगत् का अद्वितीय कारण- स्वरूप; समस्त जगत् का आधार, निरालम्ब, निर्विकल्प, नित्यचैतन्य, नित्यानन्दमय है, मेरे उसी रूप को मुमुक्षु व्यक्ति देहबन्ध विमुक्ति के निमित्त अवलम्बन करते हैं। हे राजन्! मायामुग्ध व्यक्ति सर्वगत अद्वैतस्वरूप मेरे अव्ययरूप को नहीं जान सकता है। किन्तु जो भक्तिपूर्वक मेरा भजन करता है, वे

ही मेरे परमरूप से अवगत होकर माया जाल से उत्तीर्ण होते हैं। हे भूधर! सूक्ष्मरूप सदृश स्थूलरूप में भी मैं यह समस्त विश्व को परिव्याप्त कर रही हूँ। इसलिए समस्त रूप ही मेरे स्थूलरूप में गण्य हैं। तथापि मेरी दैवी मूर्ति की आराधना करनी होगी, कारण वही शीघ्र मुक्तिदान में समर्थ हैं।'' यथा–

महाकाली तथा तारा षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी बगला छिन्नमस्ता महात्रिपुरसुन्दरी॥
धूमावती च मातङ्गी नृणामाशु विमुक्तिदा।

-भगवतीगीता

''इन कई एक मूर्तियों में से किसी भी एक मूर्ति की दृढ़ भक्तिपूर्वक उपासना करने से शीघ्र ही मुक्ति की प्राप्ति होती है। प्रथमतः क्रियायोग द्वारा उपासना करते-करते जब गाढ़तर भक्ति का उदय होता है, तब परमात्मास्वरूप मेरे सूक्ष्मरूप में दृढ-विश्वास के हेतु कभी-कभी अवलोकित होकर जगत् की किसी भी रमणीय वस्तु को उसकी अपेक्षा रमणीय है, ऐसा ज्ञात नहीं होता। जगत् के किसी लाभ को उससे अधिक बोध नहीं होता है। उससे क्रमशः मुझे प्राप्त होकर वे साधक दुःखालय अनित्य पुनर्जन्म को फिर भोग नहीं करते। अनन्यमना होकर जो व्यक्ति मुझे सदा स्मरण करते हैं, मैं उनको इस दुस्तर संसार सागर से अवश्य ही उद्धार करती हूँ। अनन्यचेता होकर मेरे जिस रूप का भजन करे, उसी से ही मुक्ति की प्राप्ति होगी। किन्तु सत्वर मुक्तिलाभ के लिये शक्तिमय रूप का आश्रय लेना कर्त्तव्य है। अतएव पिताजी! आप मेरे जिस किसी शक्तिमय रूप का आश्रयपूर्वक उसी में ही भक्ति स्थापन करके सर्वदा मुझमें ही अन्तःकरण का अभिनिवेश करें, तो उसी से ही मुझे प्राप्त करेंगे।''

निष्कर्ष यह कि स्थूलरूप से चिन्तन न करके सूक्ष्मरूप से कोई हृदय में धारण करने में समर्थ नहीं हो सकता। जिस सूक्ष्मरूप के दर्शन

मात्र से मनुष्यगण मोक्षधाम के अधिकारी होते हैं, जब तक स्थूलरूप में चिन्तन नैपुण्य नहीं होता, तब तक उस सूक्ष्मरूप में अन्तःकरण गमन नहीं कर पाता। अतएव मुमुक्षु व्यक्तिगण प्रथमतः स्थूलरूप का अवलम्बन करके क्रियायोग और ध्यानयोग द्वारा उसी रूप के विधि-विधान से अर्चना करते हुए क्रम से सूक्ष्मरूप का अवलोकन करते हैं।

यहाँ तक जो कुछ विचार हुआ, उसका सारांश यह है कि उपासना नहीं करने से मनुष्य सिद्धि की प्राप्ति नहीं कर सकता। किंतु निर्गुण ब्रह्म शरीर-रहित हैं। इसलिये किस रूप में उनकी उपासना हो सकती है। उसी चित्-स्वरूप, अद्वितीय, मायापरिशून्य और अशरीरी ब्रह्म ने उपासकों की उपासना के सौकर्यार्थ काली, दुर्गा, अन्नपूर्णा प्रभृति स्त्रीरूप और शिव, विष्णु प्रभृति पुरुषरूप का परिग्रह किया है। स्त्रीमूर्ति की अर्थात् देवी का अन्तःकरण अत्यन्त कोमल है, इसलिए साधक की दुर्गति देखने से सहज ही दया-प्रवण हो जाती है। किंतु पुरुष-विग्रह अति कठोर तपस्या करने पर दया करते हैं। अन्य देवताओं के उपासकों में कोई मुक्तिलाभ करता है, कोई अतुल भोग-सुख को प्राप्त करता है, किंतु देवी के उपासकों को भुक्ति और मुक्ति दोनों ही हस्तगत है। अतएव सभी को महाशक्ति देवी की उपासना करना कर्त्तव्य है, क्योंकि उसमें शीघ्र ही फल-लाभ होता है। यह महाशक्ति विद्या और अविद्या रूप में द्विविधा है। विद्या और अविद्या दोनों ही माया-कल्पित हैं। जो बन्धन का कारण है, वह अविद्या है और जो मुक्ति का कारण है, वह विद्या नाम से प्रसिद्ध है। विद्या की सर्वदा सेवा करें, कभी भी अविद्या की सेवा न करें। कारण अविद्या कर्म के द्वारा बन्धन उत्पन्न करके ज्ञान को विनष्ट करती है। ज्ञान के नष्ट होने से हानि होती है; हानि होने से ही संहार, संहार होने से ही घोर और घोर से ही नरक होता है। अतएव कभी भी अविद्या की सेवा न करें।

जो विद्या हैं, वही महामाया हैं, पण्डितगण सदा उनकी सेवा करेंगे। इसी में अपने-अपने अधिकारानुसार सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी देवी के निष्कल ब्रह्मरूप की अथवा देवी की स्थूल मूर्ति की उपासना करें। देवी का वह उत्कृष्ट सूक्ष्मरूप कोई भी ध्यान-धारणा से नहीं ला सकता; केवल निर्मलचेता योगीगण निर्विकल्प समाधियोग से उसे प्राप्त करते हैं, यथा–

एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम्।
योगिनस्तं प्रपशन्ति महादेव्याः परं पदम्॥
परात्परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम्।
अनन्तप्रकृतौ लीनं देव्यास्तत् परमं पदम्॥
शुभ्रं निरञ्जनं शुद्धं निर्गुणं दैन्यवर्जितम्।
आत्मोपलब्धिविषयं देव्यास्तत् परमं पदम्॥

-कूर्मपुराण

एकमात्र अद्वितीय, सर्वत्रगामी, नित्य चैतन्य-स्वरूप केवल योगीगण ही उस निरुपाधिक स्वरूप का दर्शन कर पाने में समर्थ होते हैं। प्रकृति-परिलीन, अनन्तमङ्गलस्वरूप देवी के उस परात्परतत्त्व और परमपद का योगीगण ही अपने हृदय-कमल में साक्षात्कार कर सकते हैं। देवी का वही अतीव निर्मल, सतत विशुद्ध, सर्वदीनतादिदोषवर्जित, निर्गुण, निरंजन, केवल आत्मोपलब्धि के विषय परमधाम का एकमात्र विमल चेता योगेश्वर पुरुष ही दर्शन कर सकते हैं।[1]

अतएव साधारण लोगों के लिये काली-आदि स्थूल-रूप की उपासना विधिबद्ध हुई है। मैं भी इस ग्रन्थ में उस विषय में ही बताऊँगा।

---

1. देवी के योगोक्त साधनोपाय मेरे द्वारा रचित "ज्ञानीगुरु" पुस्तक के "साधनकाण्ड" में द्रष्टव्य है।

देवमूर्ति का तत्त्व

भक्तों को मोक्ष प्रदानार्थ, उपासना के सौकार्य के लिये भक्त-वत्सल निराकार परमब्रह्म ने आकार परिग्रहण किया है। जैसे कि–

सर्वेषामेव मर्त्यानां विभोर्दिव्यवपुः शुभम्।
सकलं भावनायोग्यं योगिनामपि निष्कलम्॥

–लिंगार्चनतन्त्र

अर्थात् ब्रह्म का कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोगशाली मनुष्य का भावनायोग्य सुन्दर शरीर है। इसलिये आवासयोग्य रमणीय पुरी भी है। वह पुरी परम रम्य और सुषुप्त है। अर्थात् सब लोगों की जिस प्रकार जाग्रतावस्था की अपेक्षा स्वप्नावस्था अधिकतर गुप्त और अधिकतर आश्चर्य भूमि है, फिर सुषुप्ति अवस्था भी उसकी अपेक्षा गुप्ततम और अत्याश्चर्यरूप में दर्शनीय है; आद्याशक्ति की पुरी भी उसी प्रकार गुप्ततम अत्याश्चर्यरूप में दर्शनीय है। वह पुरी चतुर्दशद्वारयुक्त है; सब प्रकार के रत्नमय तोरण-प्राकार सकल रत्नों से विभूषित हैं। चतुर्दिक् मुक्तमाला से परिशोभित है। विचित्र ध्वज-पताका सब अत्यन्त अलंकृत है। आरक्तनेत्र सहस्र-सहस्र भैरव खट्वांग धारण कर द्वार-देश की रक्षा कर रहे हैं। देवी की आज्ञा बिना ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर भी उस द्वार का समुल्लंघन नहीं कर पाते हैं। पुरी में सभी कल्प-वृक्ष फल-फूल के भार से झुकी शाखाओं सहित भक्त लोग को धर्मार्थ-काम-मोक्ष प्रभृति फल प्रदान करते हैं। उस सुविस्तीर्ण पुरी के उत्तर प्रदेश में अतिवृहत् पारिजात उद्यान है; वह उद्यान सदा ही प्रफुल्ल कुसुमों से समाकीर्ण है; विचित्र भ्रमर-माला पुष्प से पुष्पान्तर में उड़कर बैठे हैं। वसन्त ऋतु सर्वदा विराजमान है; और मन्द-मन्द वायु सदा प्रवहमान है। ब्रह्मादि देवतागण नाना प्रकार से पक्षीरूप धारण कर मधुर शब्दों में कालीगुणगान करके काल-यापन कर रहे हैं। पूर्वदिशा में चारुतर एक सरोवर है, उसके चारों ओर स्वर्णमय

कल्हार-कमल-कुमुदराजि विराजित हैं। वे विचित्र मधुप-श्रेणी-युक्त होकर मंद-मंद वायु से संचालित हैं। पुलिन देश विविध सुन्दर पुष्पों से सुशोभित हैं। चतुर्दिक् मणिमय सोपानयुक्त तीर्थचतुष्टय सुशोभित हैं। पुरी के मध्यस्थल में सुरम्य वासगृह नानारत्नों से विनिर्मित और सुवर्णवेष्ठित मणिमय एकशत स्तम्भयुक्त है; उस मणि-मन्दिर के अभ्यन्तर में एक सुविस्तीर्ण रत्नसिंहासन दशसहस्र सिंहों के मस्तक से देदीप्यमान है। उस सिंहासन के ऊपर एक सुदीर्घ शव शयनावस्था में स्थित हैं। उस शव पर महाकाली समवस्थिता हैं। वह ब्रह्मरूपिणी स्वेच्छानुकूल कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की सृष्टि स्थिति और प्रलय का सम्पादन करती हैं। विजया प्रभृति चतुःषष्टि योगिनी उनकी परिचर्या करती हैं। इस देवी के दक्षिण भाग में सदाशिव महाकाल हैं, महाकाल के सहित महाकाली प्रफुल्लचित्त से सदा इच्छानुकूल विहार करती हैं। शास्त्र में देवीके इस रूप के ध्यान का वर्णन है। यथा–

मेघाङ्गीं शशिशेखरां त्रिनयनां रक्ताम्बरं विभ्रतीं
पाणिभ्यामभयं वरञ्च विकसद्रक्तारविन्दस्थिताम् ।
नृत्यन्तं पूरतो निपीय मधुरं माध्वीकमद्यं महा-
कालं वीक्ष्य प्रकाशतिाननवरामाद्यां भजे कालिकाम् ॥

जिनका वर्ण मेघतुल्य है; ललाट की चन्द्रलेखा जाज्वल्यमान है, जिनके तीन नेत्र हैं; परिधान में रक्त वस्त्र हैं, दोनों हाथों में वर और अभय है; जो विकसित रक्तपद्म पर उपविष्ट हैं, जिनके सम्मुख पुष्पजात सुमधुर माध्वी मद्यपान करके महाकाल नृत्य कर रहे हैं; जो महाकाल के इस प्रकार की अवस्था देखकर हँसती हैं। उस आद्याकाली का भजन करता हूँ।

पाठक! इस समय देवी के इस रूप का ज्ञान-सहित विश्लेषण करने में परब्रह्म की पराशक्ति का ही परिचय पाओगे। इसलिये यह रूप

कितने ज्ञान-विज्ञान का आभास देता है; विचार करने पर विस्मित और पुलकित होकर ऋषियों को ससंभ्रम से प्रणाम करोगे। स्वेत, पीत आदि रंग जिस प्रकार कृष्णवर्ण में विलीन होते हैं, उसी प्रकार सर्वभूत ही प्रकृति में विलीन रहता है। इस कारण वह निर्गुणा निराकारा योगियों के हितकारिणी पराशक्ति कृष्णवर्ण के रूप से कहकर निरूपित हुई हैं।[1] नित्या, कालरूपा, अव्यया और कल्याणरूपा उस काली के अमृतत्त्व प्रयुक्त ललाट पर चन्द्रकला चिह्न को कल्पित किया गया है। जिस कारण से वे चन्द्र, सूर्य और अग्निरूप नेत्र द्वारा कालसम्भूत निखिल जगत् का संदर्शन करते हैं। उसी कारण से उनके नयन-त्रय की कल्पना हुई है। वे सम्पूर्ण प्राणियों को ग्रास करते हैं और कालदण्ड द्वारा चर्वण करते हैं, इसलिए सभी प्राणियों का रक्त उस महेश्वरी के रक्त वसन के रूप में कहा गया है। विपद से जीवों की रक्षा और अपने-अपने कार्यों में प्रेरणा देना उनके वर और अभय रूप हैं। वे रजोगुण जनित विश्व में अधिष्ठान करती हैं, इसी कारण वे रक्त कमल संस्थिता हैं। ज्ञानस्वरूपा सभी लोगों की साक्षीस्वरूपिणी वह देवी मोहमयी सुरापान कर कालोचित क्रीड़ाकारी-काल को देख रही हैं। अल्पबुद्धि भक्तवृन्द के हितानुष्ठान के लिये पराशक्ति देवी का बहुविध रूप कल्पित हुआ है। जैसे कि–

गुणक्रियानुसारेण रूपं देव्याः प्रकल्पितम् ।

-महानिर्वाणतन्त्र

---

1. पराशक्ति अरूपा हैं, इसलिए वर्णहीना हैं। जहाँ सभी वर्णों का अभाव है, वही निविड़ कृष्णवर्ण होता है, यह बात विज्ञानसम्मत है। विज्ञान और भी कहता है कि हमारी आँखें जिस ज्याति का धारण नहीं कर पाती हैं, वही निविड़ कृष्णवर्ण दिखाई देता है। इसी से महाज्योति काली कृष्णवर्ण हैं। किन्तु ज्ञाननेत्र से महाज्योतिरूप दिखाई देती हैं।

उपासकों के कार्यों की सुविधा के लिये गुण और क्रियानुसार देवी के रूप की कल्पना की गयी है।

उन्हीं सब मूर्तियों में से जिसको जिस मूर्ति की अभिलाषा है अथवा जिसमें प्रीति है, वही उसकी उपासना करे। पर उपासना अभिन्न-ज्ञान से करनी होगी। इनमें कोई उत्कृष्ट और कोई उनकी अपेक्षा निकृष्ट है, जो इस रूप में ज्ञान करता है, वह व्यक्ति रौरव नामक घोर नरक में जाता है। देवताओं में एक की प्रशंसा करने से सभी की प्रशंसा होती है और एक की निन्दा करने से सभी की निन्दा होती है। देवता प्रशंसा से सुख का अनुभव नहीं करते और निंदा से भी दुःखी नहीं होते, किन्तु निन्दाकारी देवनिन्दा जनित पाप से नरक जाता है। अतएव साधक रुचिभेद से ध्यानयोग से पृथक्-पृथक् आकृति की उपासना अवश्य करें, किन्तु ये सब आकृतियाँ वस्तुतः अभिन्न हैं, इस ज्ञान को दृढ़ रखें। एक महामांया ने ही लोगों के मोह के लिए स्त्री-पुरुष रूप मूर्ति में भिन्न-भिन्न नाम और रूप अवलम्बन किया है; वस्तुतः ये भिन्न नहीं हैं।

अब तक जिस आद्याशक्ति महामाया के विषय में विचार किया गया, उसी देवी ने सूक्ष्मरूप से जीव के आधार-कलम में कुल-कुण्डलिनीशक्तिरूप में अवस्थित किया है।[1] यही कुण्डलिनी निर्वाणकारिणी आद्याशक्ति महाकाली हैं। कुलकुण्डलिनी योगियों के हृदय में तत्त्वरूपिणी और सभी जीवों के मूलाधार में विद्युताकार रूप में विराजमान हैं। जैसे कि–

योगिनां हृदयाम्बुजे नृत्यन्ति नृत्यमञ्जसा ।
आधारे सर्वभूतानां स्फुरन्ति विद्युदाकृतिः ॥

---

1. मूलाधारपद्म और कुण्डलिनी का विवरण मेरे द्वारा रचित 'योगीगुरु' ग्रन्थ में विशद रूप में दिया गया है।

साधना का क्रम

इस महाशक्ति के उपासकों को शाक्त कहा जाता है। तन्त्रशास्त्र में उस महाशक्ति की उपासना-प्रणाली सविस्तार लिखी गई है। अतएव तन्त्रशास्त्र ही शाक्तों का प्रधान ग्रन्थ है। इसका अन्यतम नाम आगमशास्त्र है। आगम किसे कहते हैं? यथा–

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतञ्च गिरिजामुखे ।
मतं श्रीवासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते ॥

-रुद्रयामल

जो शिवमुख से निर्गत होकर पार्वती के मुख में अवस्थिति करता है और जो वासुदेव-सम्मत है, उसे आगम कहा गया है।

आगमशास्त्र जब वासुदेव-सम्मत है, तब इसके साथ वेदका कोई असामंजस्य नहीं- यह निश्चित हुआ। किन्तु आगमसे सत् आगम ही समझना होगा। परमज्ञानी सदाशिव ने असदागमकी निन्दा की है। जैसे–

आवाभ्यां पिशितं रक्तं सुराञ्चैव सुरेश्वरि ।
वर्णाश्रमोचितं धर्ममविचार्यार्पयन्ति ये ।
भूतप्रेतपिशाचास्ते भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः ॥

-आगमसंहिता

भावार्थ यह है कि जो वर्णाश्रमोचित धर्म का विचार न करके महाशक्ति देवी को मांस, रक्त और मद्य अर्पण करेंगे; वे भूत, प्रेत, पिशाचस्वरूप ब्रह्मराक्षस हैं। इसी कारण शाक्तों में भी सम्प्रदाय-विभाग हैं। शक्ति-उपासकगण (उपास्य-भेदसे) काली, तारा, जगद्धात्री, अन्नपूर्णा प्रभृति शक्ति-मूर्ति की उपासना करते हैं।

प्रथमतः उपासक सद्गुरु से मन्त्र गहण करेंगे। दीक्षारहित मनुष्य पशु में परिगणित हैं, इसीलिए अदीक्षितों का समस्त कार्य ही वृथा है। यथा-

T

उपचारसहस्त्रैस्तु अर्चितं भक्तिसंयुक्तम्।
अदीक्षितार्चनं देवा न गृह्णन्ति कदाचन॥

अदीक्षित व्यक्ति के भक्तिपूर्वक सहस्त्र उपचार द्वारा अर्चना करने पर भी देवगण उस अदीक्षित की अर्चना कदापि ग्रहण नहीं करते हैं।

इसी कारण यत्नपूर्वक गुरु-ग्रहण करते हुए साधक मन्त्र ग्रहण करें। शक्तिमन्त्र का उपासकों की दीक्षा के साथ शाक्ताभिषेक होना कर्त्तव्य है। यथा-

अभिषेकं विना देवि कुलकर्म करोति यः।
तस्य पूजादिकं कर्म अभिचाराय कल्पते॥
अभिषेकं विना देवि सिद्धविद्यां ददाति यः।
तावत् कालं वसेद् घोरे यावच्चन्द्रदिवाकारौ॥

–वामकेश्वरतन्त्र

अभिषिक्त हुए बिना जो व्यक्ति तान्त्रिक मत से उपासना करते हैं, उनकी जप-पूजादि अभिचार स्वरूप है। जो व्यक्ति अभिषेक-रहित दश विद्याओं की कोई मन्त्रदीक्षा देता है, वह व्यक्ति जब तक चन्द्र, सूर्य रहेंगे; तब तक घोर नरक में वास करेगा।

अतएव शाक्तों का प्रथमतः दीक्षा सहित शाक्ताभिषेक, उसके बाद पूर्णाभिषेक, तदन्तर क्रमदीक्षा लेना कर्तव्य है। महादेव ने कहा है-

क्रमदीक्षाविहीनस्य कालौ न स्यात् कदाचन।

–कामाख्यातन्त्र

कलियुग में क्रमदीक्षा के बिना कभी भी सिद्धि नहीं होगी। उन्होंने और भी कहा है-

यदि भाग्यवशाद्देवि क्रमदीक्षा च जायते।
तदा सिद्धिर्भवेत्तस्य नात्र कार्या विचारणा॥
क्रमदीक्षाविहीनस्य कथं सिद्धिः कालौ भवेत्।

T

क्रमं विना महेशानि सर्वं तेषां वृथा भवेत् ॥

–*कामाख्यातन्त्र*

किसी के भाग्यवश यदि क्रमदीक्षा होती है तब निश्चय ही सिद्धि की प्राप्ति होगी– सन्देह नहीं है। क्रमदीक्षा के बिना कलियुग में किसी मन्त्र की भी सिद्धि नहीं होगी और जप-पूजादि सभी वृथा होगी।

इस समय किस पद्धति के अनुसार पूर्वोक्त त्रिविधभाव और सप्त-आचार की क्रिया सम्पन्न करनी होगी। उसी का विचार किया जाय।

प्रथमतः साधक गृहस्थाश्रम में अवस्थितिपूर्वक सद्गुरु से मन्त्रदीक्षा लेकर पशुभाव के अनुसार वेदाचार द्वारा वैदिक कर्म, वैष्णवाचार द्वारा पौराणिक कर्म और शैवाचार द्वारा स्मार्त कर्म करें। बाद में शाक्ताभिषिक्त होकर दक्षिणाचार द्वारा साधना करें। उसके बाद पूर्णाभिषेक के अन्त में गृहावधूत होकर वीरभावानुसार वामाचार द्वारा यथाविधि साधना की उन्नति करेगा। उसके बाद साम्राज्यदीक्षा से दीक्षित होकर वीरभावानुसार सिद्धान्ताचार की साधना का कार्य सम्पन्न करेगा। पुनः महासाम्राज्य की दीक्षा लेकर दिव्यभावानुसार कुलाचार द्वारा साधना करेगा। इसके बाद पूर्णदीक्षा से दीक्षित होकर दिव्यभावानुसार साधना की चरमोन्नति सम्पन्न करेगा। इस प्रकार साधनाकार्य द्वारा दिव्यभाव के परिपक्व हो जाने पर निष्क्रिय होकर कालयापन करेगा। नीचे संस्कार-भेद से साधनाधिकार की एक तालिका दी जाती है।

मन्त्रदीक्षा– मन्त्रदीक्षा ग्रहण करके नित्यकर्म, नैमित्तिक कर्म, काम्यकर्म और पञ्चांग पुरश्चरण करेगा अर्थात् इष्टदेवता का जितना मन्त्रजप है उसका दशांश तर्पण, उसका दशांश अभिषेक और उसका दशांश ब्राह्मण-भोजन और ग्रहपुरश्चरण करेगा।

शाक्ताभिषेक– शाक्ताभिषेक लेकर वार, तिथि, पक्ष, मांस, ऋतु, अयन, वत्सर, पुरश्चरण करेगा। नक्षत्रपुरश्चरण, ग्रह-पुरश्चरण,

करणपुरश्चरण, योगपुरश्चरण, संक्रांतिपुरश्चरण इत्यादि करेगा।

पूर्णाभिषेक- पूर्णाभिषिक्त होकर षट्कर्म अर्थात् शान्तिकर्म, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन और मारणकर्म, ब्रह्ममन्त्र जप; पादुकामंत्र जप, रहस्यपुरश्चरण, वीरपुरश्चरण और दशार्णमन्त्र श्रवण; वीर-साधना, चिता-साधना, शव-साधना, योगिनी-साधना, मधुमति-साधना, सुन्दरी-साधना, शिवा-बलि, लता-साधना, श्मशान-साधना और चक्रसाधना इत्यादि करेगा।

क्रमदीक्षा- क्रमदीक्षा लेकर ककार-कूट-स्तोत्र अर्थात् मेधा-साम्राज्य स्तोत्र-पाठ और तीन देवताओं (काली, तारा और त्रिपुरादेवी) का रहस्य पुरश्चरण करेगा।

साम्राज्य दीक्षा- साम्राज्य दीक्षा लेकर उर्ध्वाम्नाय में अधिकार, पराप्रसाद मन्त्र अर्थात् अर्द्धनारीश्वर मन्त्रसाधना तथा महाषोड़ा मन्त्र जप करेगा।

महासाम्राज्य दीक्षा- महासाम्राज्यदीक्षा लेकर योग और निर्गुण ब्रह्म की साधना करेगा।

पूर्णदीक्षा- पूर्णदीक्षा से सहज ज्ञान प्राप्ति और सर्व-साधना त्याग, सहज भावावलम्बन। सोऽहं, अहं ब्रह्मास्मि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म इत्यादि अद्वैत भाव अर्थात् जगत् मिथ्या और ब्रह्म ही सत्य है और वही ब्रह्म ही मैं हूँ; इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करेगा।

उपरोक्त व्यवस्थाएँ पञ्च-उपासकों, (शाक्त, शैव, वैष्णव, सौर, गाणपत्य) को करने के लिए ही है। संस्कारभेद से साधनाधिकार प्राप्त करके क्रियानुष्ठान करना होगा; नहीं तो फल की आशा दूर वरन् प्रत्यवायभागी होना पड़ेगा, हर साधक इस बात को स्मरण रखें। यहाँ वक्तव्य यह है कि शास्त्र में साधना-पन्थ असंख्य प्रकार से वर्णित है; उनमें जो सिद्धि प्राप्ति की इच्छा करेगा वह गुरूपदिष्ट पथ का अवलम्बन करें।

उसके बिना और कोई उपाय नहीं है। कारण शास्त्र में ही कहा गया है कि–

> पन्थानो बहवः प्रोक्ता मन्त्रशास्त्रमनीषिभिः ।
> स्वगुरोर्मतमाश्रित्य शुभं कार्यं न चान्यथा ॥

–शैवागम

मुनिगण द्वारा बहुविध शास्त्र, मंत्र और पन्थ अर्थात् साधना-प्रणाली कही गई है। उनमें गुरूपदिष्ट साधना-कार्य द्वारा ही केवल शुभ फल उत्पन्न होता है, अन्य प्रकार से नहीं।

इस ग्रन्थ में आगे कहे जाने वाले साधना-कल्प में हम जिन सब पंथों को प्रकाश में लाएँगे वे गुरूपदिष्ट और शास्त्रसम्मत हैं; अतएव अवलम्बन स्वरूप उसे ग्रहण करके अपने-अपने गुरु द्वारा उपदिष्ट मार्ग में ऐक्य करके साधनाकार्य में प्रवृत्त होने पर निश्चय ही सिद्धि प्राप्त होगी। पराशक्तिदेवी ने भगवतीगीता में स्वयम् कहा है- "जो व्यक्ति दुराचारी होने पर भी अनन्य चित्त से मेरा भजन करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर संसार-बंधन से मुक्त हो जाता है।" यथा–

> अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
> सोऽपि पापविनिर्मुक्तो मुच्यते भवबन्धनात् ॥

ओम् शान्तिः ओम्

T

तान्त्रिकगुरु

द्वितीय अंश - साधनाकल्प

गुरुकरण और दीक्षापद्धति

अपने-अपने वर्णाश्रमोचित धर्मपालन (ब्रह्मचर्यादि व्रत-आचार) और साधुसंग द्वारा चित्त-निर्मल हो जाने पर सद्गुरु अन्वेषणपूर्वक साधक दीक्षा ग्रहण करेगा। क्षुधा न रहने पर जिस प्रकार आहार ग्रहण में अरुचि रहती है, उसी प्रकार प्रयोजन समझे बिना किसी के अनुरोध से मन्त्र ग्रंहण करने पर भी साधना-विषय में अरुचि बनी रहती है। आजकल दीक्षाग्रहण हिन्दूसमाज में दशकर्म का एक अंग भर रह गया है। अग्रज की दीक्षा लिए बिना कनिष्ठ मंत्र ग्रहण नहीं कर सकता, यह बहुत ही भ्रमात्मक धारणा है। जन्मजन्मान्तर की सुकृति के फल से धर्म में प्रवृत्ति होती है। ज्येष्ठ के यदि इस जीवन में सुकृति का उन्मेष न हो, इसलिए क्या भाग्यवान कनिष्ठ आध्यात्मिक उन्नति के लिए अग्रज की प्रतीक्षा करता रहेगा? सामाजिक अथवा कौलिक आचार से यह नियम प्रचलित रहने पर भी आध्यात्मिक विषय में वह प्रयोज्य नहीं रह सकता। भाग्यवान् व्यक्तियों में जब जो व्यक्ति अपना-अपना कर्त्तव्य समझेगा तभी वह आध्यात्मिक उन्नति के लिए चेष्टा कर सकेगा– किसी का मुख देखते रहना उचित नहीं। अतएव मानवजीवन की सार्थकता अथवा भगवान् के लिए व्याकुलता के उत्पन्न होते ही श्रीगुरु के श्रीमुख से मन्त्रादि अवगत होकर उनका अनुष्ठान करके अनायास ही घोर संसार बन्धन से मुक्ति-लाभ करेंगे। फिर अन्य सात्त्विक आचारों के साथ धर्मवेत्ता व्यक्तियों के साथ दीक्षा की कर्त्तव्यता के सम्बन्ध में विचार करें। दीक्षा रहित प्राणी की

मुक्ति नहीं हो सकती, यह शिवोक्त तन्त्र का अनुशासन है। योगरहित मंत्र और मंत्ररहित योगसिद्धि नहीं होती। इन दोनों के अभ्यास से ही ब्रह्मसाक्षात्कार होता है। जिस प्रकार अंधकाराच्छन्न गृह में आलोक की सहायता से घट प्रकाशित होता है। उसी प्रकार मायापरिवृत्त आत्मा भी मन्त्र के द्वारा प्रकाशित होती है। अतएव कलिकाल में प्रत्येक व्यक्ति आगमोक्त विधान से दीक्षा ग्रहण करें।

दिव्यज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापक्षयं ततः ।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता सर्वतन्त्रस्य सम्मता ।।

-विश्वसारतन्त्र, षष्ठ पः

जो दिव्यज्ञान को प्रदान करता है और पाप नष्ट करता है, उसको तान्त्रिक विद्वान् दीक्षा के नाम से कीर्तन करते हैं।

अदीक्षित व्यक्ति के भक्तिपूर्वक सहस्त्र उपचार द्वारा अर्चना करने पर भी देवगण उसकी पूजा ग्रहण नहीं करते हैं। जिस कारण से अदीक्षित के सभी कार्य वृथा होते हैं, इसीलिए अदीक्षित व्यक्ति को पशु कहा गया है। जो व्यक्ति शास्त्र में मन्त्र देखकर गुरु की उपेक्षा कर उसका जप करता है, उसका फल तो दूर की बात प्रत्युत उसका सब कुछ नष्ट हो जाता है। अतएव पापनाशिनी महाविद्या गुरु से यत्नपूर्वक ग्रहण करके उनकी साधना करें।

कुलगुरु से मन्त्र ग्रहण करना कर्त्तव्य है।[१] किन्तु गुरु के वंश

---

१. कुलगुरु का अर्थ अपने-अपने वंश का गुरु नहीं है; कुलाचार सम्पन्न सत्कौल ही कुलगुरु है। अकूल भवसागर में सभी पड़कर भ्रमण कर रहे हैं, इनमें जिनको कुल मिला है वही कुलगुरु है। श्रद्धेय विजयकृष्ण गोस्वामी कहते हैं– जिसकी कुलकण्डलिनीशक्ति जाग्रत है, वही कुलगुरु है। इस प्रकार गुरु को पाकर जो परित्याग करता है उसके समान हतभाग्य और कौन है।

में उपयुक्त कोई न होने पर शास्त्रनिर्दिष्ट लक्षण देखकर गुरु ग्रहण करना चाहिए। तन्त्रशास्त्र अतीव दुर्गम विषय है, इसलिए समोपयुक्त गुरु की आवश्यकता है और केवल गुरु के उपयुक्त होने से ही नहीं होगा; शिष्य की भी विशेष उपयुक्तता आवश्यक है। मन्त्र की गति और कम्पन के साथ गुरु की आध्यात्मिक शक्ति शिष्य में संचारित होती है। जो गुरु है, उनकी इस शक्ति की संचारक्षमता रहने की आवश्यकता है। बीज सतेज और भूमि के सुन्दररूप में जोते न जाने पर वृक्षोत्पत्ति की आशा नहीं रहती है। दर्शन-विज्ञान-चर्चा अथवा ग्रन्थपाठ द्वारा यह शक्तिसंचार नहीं हो सकता। शिष्य के प्रति संवेदना के कारण गुरु की आध्यात्मिक शक्ति कम्पनविशिष्ट होकर शिष्य में सञ्चारित होती है। इसीलिए तन्त्र ने कहा है –

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वा चानृणी भवेत् ।।

–ज्ञानसंकलिनीतन्त्र

जो गुरु शिष्य को एकाक्षर मन्त्र प्रदान करते हैं, पृथ्वी में इस प्रकार का कोई द्रव्य नहीं है, जिससे उसे दान करके उनके ऋण से मुक्त हुआ जाय।

जो व्यक्ति गुरु को मनुष्यज्ञान करे, मन्त्र को अक्षरावली कहे और प्रस्तरमयी देवमूर्ति को शिला कहकर उपेक्षित करे, वही व्यक्ति नरकगामी होता है। गुरु को पिता, माता, स्वामी, देवता एवं आश्रय जानकर पूजा करें; कारण, शिव के रुष्ट होने पर भी गुरु रक्षा करने में समर्थ हैं; किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर और कोई रक्षक नहीं है। अतएव वाक्य, मन, शरीर और कर्म द्वारा गुरु की सेवा करें। गुरु के अहिताचरण करने से विष्ठा में कृमि होकर जन्म ग्रहण करता है। पिता ने यह शरीर दिया है सच, पर जब ज्ञान के बिना यह शरीर

धारण निरर्थक है; तब ज्ञानप्रदाता गुरु से दुःखसमाकुल इस संसार में बढ़कर और कोई गुरु नहीं है। मंत्रत्यागी की मृत्यु, गुरुत्यागी की दरिद्रता एवं गुरु और मन्त्र उभयत्यागी को रौरव नरक में गति होती है। गुरुदेव निकट में रहने पर जो व्यक्ति अन्य देवता की पूजा करता है वही व्यक्ति घोर नरक में जाता है और उसकी की हुई पूजा निष्फल होती है, मन्त्रदाता गुरुअसत् पथवर्ती हो तो भी उसे साक्षात् शिवरूप समझना चाहिए, उससे भिन्न गति नहीं है। वैष्णव कहते हैं–

यद्यपि आमार गुरु शुंड़िबाड़ी जाय ।
तथापि आमार गुरु नित्यानन्द राय ।।

जिस गुरु द्वारा परमपद दिखाई देता है; उस गुरु-तुल्य न तो विद्या है, न तीर्थ और न देवता। जिस गुरुद्वारा परमपद दिखाई देता है, उस गुरु सदृश्य मित्र कोई भी नहीं है और पुत्र, पिता, बान्धव, स्वामी प्रभृति कोई भी उसके तुल्य नहीं हो सकता है। गुरु का ऐसा पूज्यभाव कैसे हुआ? वास्तविक रूप में गुरुद्वारा जो परमपद दिखाई देता है और ब्रह्मसाक्षात्कार होता है, वे अज्ञानतिमिरावृत्त नेत्र को ज्ञानाञ्जन शलाका द्वारा उन्मीलित कर दिव्यज्ञान प्रदान करते हैं, उनसे बढ़कर संसार में कौन गरीयान्, महीयान् और आत्मीय है। हम उसको भक्ति-प्रीति प्रदान नहीं करेंगे तो किसको करेंगे?[१]

किन्तु दुःख का विषय यह है कि वर्तमान युग में गुरुगिरि एक व्यवसायरूप में परिणत हो गया है। वे मनुष्य की आत्मा को लेकर, पवित्र धर्म को लेकर, बच्चों का खेल करते हैं। धर्मचक्र के

---

१. आजकल बहुत से लोग बुद्धि के मालिन्य, शिक्षा के दोष एवं संसर्गगुण से गुरु की प्रयोजनीयता को स्वीकार नहीं करते हैं। उनका विश्वास है कि गुरुकरण हिन्दुओं का एक कुसंस्कार मात्र है। किन्तु उन्हें यह समझना चाहिए कि यह कुसंस्कार मानकर हिन्दूसमाज में जितने लोग श्रेष्ठत्व

बाहर रहकर केवल क्रीड़ा करते हैं और ये सब गुरुओं की क्रीड़ा की गुड़िया सदृश ये हिन्दुओं की आध्यात्मिक शक्ति नष्ट हो रही है। गुरु आध्यात्मिक शक्तिसम्पन्न नहीं होने से शिष्य की आध्यात्मिक शक्ति के लाभ की कोई सम्भावना नहीं है। केवल गुरुवंश में जन्म ग्रहण करने से ही अथवा शब्दराशि मन्थन करके बड़ी-बड़ी बातों का आविष्कार कर सकने से ही वे गुरु नहीं हैं। गुरु आध्यात्मिक जगत् का व्यक्ति है और जो आध्यात्मिक जगत् का मनुष्य होकर भी शिष्य में अपनी उन्नतशक्ति का संचार करना नहीं सीखे हैं वे गुरु नहीं हो सकते हैं। उसी प्रकार गुरु से शिष्य का कुछ भी कार्य नहीं हो सकता, केवल अंध के द्वारा नीयमान अंध की तरह अंधकार में ही चतुर्दिक् भटकना होगा। समय रहते सतर्क रहना जैसे सभी कार्यों में प्रयोजनीय है, इसमें भी वही बात है। अतएव शिष्य का कर्त्तव्य है कि आध्यात्मिक शक्ति संचारण क्षम गुरु से मन्त्र लें। मुक्ति का जो एकमात्र उपाय है– जो आत्मोन्नति का एकमात्र कारण है, उसे लेकर खेल करना शोभा नहीं देता।

अब बात यह है कि सद्‌गुरु कहाँ मिलेंगे? सद्‌गुरु को किस प्रकार पहचाना जाय? हम जानते हैं, प्रयोजन होने पर इस प्रकार का गुरु अनेक समय अपने से ही आकर उपस्थित होते हैं। सद्‌गुरु की प्राप्ति करने के लिए अपने को सत् होना आवश्यक है और सूर्य

लाभ किये हैं और किसी सुसंस्कृत सम्प्रदाय में ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति दिखाई देते हैं क्या? तब गुरुग्रहण प्रथा को बलपूर्वक कुसंस्कार कह कर धृष्टता और मूढ़ता को क्यों प्रकाशित करते हैं? व्यावहारिक यह है कि किसी भी विद्या में शिक्षक के बिना साफल्य प्राप्त नहीं हो सकता, तब किस साहस से गुरु के बिना पराब्रह्मविद्या की प्राप्ति हो सकती है? मुक्ति क्या तुम्हारे लिए इतनी सरल है। फल भी उसी रूप में ही होगा।

T

को देखने के लिए जिस प्रकार मशाल जलाने का प्रयोजन नहीं होता, उसी प्रकार गुरु को पहचानने के लिए विशेष किसी उपदेश की आवश्यकता नहीं है। जिसमें आध्यात्मिक शक्ति है उसे देखकर ही जाना जा सकता है। यह शक्ति मनुष्य-मात्र में ही है। तब उस शक्ति के विकाश के लिए चित्त-शुद्धि का प्रयोजन है। उसके बिना गुरुनिर्वाचन के सम्बन्ध में शास्त्र की भी व्यवस्था है। यथा–

> **शान्तो दान्तः कुलीनश्च विनीतः शुद्धवेशवान् ।**
> **शुद्धाचारः सुप्रतिष्ठः शुचिर्दक्षः सुबुद्धिमान् ।**
> **आश्रमी ध्यानननिष्ठश्च तन्त्रमन्त्रविशारदः ।**
> **निग्रहानुग्रहे शक्तो गुरुरित्यभिधीयते ।।**

– *तन्त्रसार*

जो शान्त (श्रवण-मनन-निदिध्यासनरूप विषयातिरिक्त सांसारिक सम्पूर्ण विषयों से मन के निग्रहवान्), दान्त (श्रवणादि विषयातिरिक्त विषयों से दस इन्द्रियों के निग्रहवान्), कुलीन (आचार-विनय प्रभृति नवविध गुण-सम्पन्न), विनीत, शुद्धवेशसम्पन्न, विशुद्धाचार, सुप्रतिष्ठ (सत्कार्यादि द्वारा यशस्वी) पवित्र-स्वभाव, क्रिया-निपुण, सुबुद्धि-सम्पन्न, आश्रमी, ईश्वरध्यान-परायण, तन्त्र-मन्त्रविषय में साधनपंडित और जो शिष्य के प्रति शासन और अनुग्रह करने में समर्थ, उनके समान ब्राह्मण ही गुरुपद के योग्य हैं। ये सब लक्षण जिस व्यक्ति में दिखाई देंगे, उसी को गुरु के रूप में वरण करें।

गुरुत्याग के सम्बन्ध में हमारे देश में जो संस्कार प्रचलित हैं, वह मन्त्रदाता गुरु के सम्बन्ध में है, पिता अथवा पितामह के गुरु–पैतृक गुरु के सम्बन्ध में नहीं। मन्त्रग्रहण करने पर यदि जाना जाय कि वे असन्मार्गी और अविद्वान् हैं तो भी उनका परित्याग नहीं करना चाहिए। किन्तु मन्त्रग्रहण के पूर्व जानने पर कभी भी उस गुरु से मन्त्र

ग्रहण नहीं करना चाहिए। मन्त्रग्रहण आध्यात्मिक उन्नति का कारण है। समाज में प्रशंसा पाने के लिए नहीं।[१] अतएव सद्गुरु निर्वाचित करके दीक्षा-ग्रहण करना सभी का कर्त्तव्य है।

जिन्होंने पहले ही पैतृक गुरु से दीक्षा ग्रहण की है उनके लिए जगद्गुरु सदाशिव ने उपयुक्त गुरु बनाने की विधि शास्त्र में लिपिबद्ध की है। यथा –

मधुलुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत् ।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यः गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ।।

–तन्त्रसार

मधुलुब्ध भ्रमर जिस प्रकार एक फूल से अन्यान्य फूल पर जाता है उसी प्रकार ज्ञानलुब्ध शिष्य अन्य गुरु का आश्रय ग्रहण करेगा। अतएव दीक्षित व्यक्ति अन्य गुरु बनाकर उपदेश लेगा और साधनाप्रणाली की शिक्षा लेगा।

ज़ो व्यक्ति आत्मशक्ति संचारण कर सकते हैं, वे ही गुरु हैं और जिसकी आत्मा में शक्ति संचालित होती है उसे शिष्य कहा जाता

---

१. समाज के भय से अथवा वंशनाश की आशंका जानकर, सुनकर अनेक शिक्षित व्यक्ति वृषतुल्य मूर्ख को गुरु बनाते हैं। क्या इससे पाप नहीं होगा? इसी से ही दिनोंदिन पैतृक गुरु गुरुपुरोहितकुल की अवनति हुई है। उपर्युक्त का अनुसरण करने पर बाध्य होकर उनको उपयुक्तता की प्राप्ति की चेष्टा करनी होगी। नहीं तो दक्षिण हस्त का व्यापार बन्द होगा। वंश-परम्परा शिष्यरूप मौरूसी सम्पत्ति भोग में व्याघात होने से ही और निश्चेष्ट नहीं रह सकते; उपयुक्त जो है उसकी चेष्टा होनी चाहिए। इससे उनकी उन्नति अवश्यम्भावी, नहीं तो गुरुगिरी को छोड़ना होगा। गुरुकुल की अधोन्नति के लिए शिष्यगण ही अधिकतर दायी हैं। पाप को प्रश्रय देने से कौन उससे विरत होता है।

T

है। इसलिए शक्ति-आकर्षिका और संग्राहिका की क्षमता का रहना आवश्यक है। इसी कारण शास्त्र में उपयुक्त शिष्य को ही दीक्षा देने की विधि है। उपयुक्त शिष्य का लक्षण यथा –

शान्तो विनीतः शुद्धात्मा श्रद्धावान् धारणक्षमः ।
समर्थश्च कुलीनश्च प्राज्ञः सच्चरितो यतिः ।
एवमादिगुणैर्युक्तः शिष्यो भवति नान्यथा ।।

– *तन्त्रसार*

अर्थात् शमादिगुण युक्त विनयी, विशुद्ध स्वभाव, श्रद्धावान्, धैर्यशील, सर्वकर्म समर्थ, सद्वंशजात, अभिज्ञ, सच्चरित्र और यत्याचारयुक्त व्यक्ति प्रकृत शिष्य शब्द-वाच्य, इनके विपरीत व्यक्ति को शिष्य नहीं बनाना चाहिए।

गुरुता शिष्यता वापि तयोर्वत्सरवासतः।

अर्थात् एक वत्सर काल गुरु और शिष्य एकत्र रहकर दोनों के स्वभावादि का निर्णय करके अपना-अपना अभिमत होने पर गुरु अथवा शिष्य बनायेंगे।

प्रबल ज्ञानपिपासा, पवित्रता, गुरुभक्ति अथवा अध्यवसाय न रहने पर शिष्यजीवन की उपलब्धि नहीं की जा सकती। धर्म-लाभ करने के लिए धर्म के ही ऊपर चित्तसंस्थापन करना होगा; किन्तु केवल पुस्तक-पाठ और धर्म सम्बन्धी वक्तव्य सुनने से ही उस कार्य की सिद्धि नहीं होती। उसके लिए प्राण की व्याकुलता चाहिए। गुरु शक्ति का संग्रह होना चाहिए। शिष्य-जीवन में गुरु की वश्यता स्वीकार करके इष्टनिष्ठा की सहायता से धर्मचर्चा करना ही सिद्धि के पथ पर जाने का उपाय है। एक सामाजिक दायित्व से भाग कर दीक्षा ग्रहण करने से फल की प्राप्ति किस प्रकार होगी? भूमि को उत्तमरूप से न जोतने से बीज वपन जिस प्रकार निरर्थक है, उसी प्रकार

T

अशुद्धचित्त वाले व्यक्ति को दीक्षा देने से भी किसी फल प्राप्ति की आशा नहीं की जा सकती है। इसलिए जिनमें धर्म-जीवन के लिए प्रकृत व्याकुलता उत्पन्न नहीं होती, उनकी चित्तशुद्धि के लिए उन्हें ब्रह्मचर्य-पालन और साधुसंग करना चाहिए। उसके बाद सद्गुरु निर्वाचन पूर्वक दीक्षा ग्रहण करें।

जिनमें जिस देवता की भक्ति का आधिक्य हो उसको उसी देवता का मन्त्र दिया जाना चाहिए। नहीं तो चक्रविचार करके मन्त्र निर्वाचन करना चाहिए। सिद्धगुरु शिष्य के जन्मजन्मान्तर के साध्य मन्त्र का निर्धारण भी कर सकते हैं। विद्या और मन्त्र मृतव्यक्ति के अनुगामी होते हैं और पूर्वजन्म के कार्यों का प्रतिपादन करते हैं। किस प्रकार पूर्वजन्म की विद्या का समुद्धार करना होता है, नीचे उसको लिखा गया है। यथा–

वटपत्र पर शक्तिमन्त्र, अश्वत्थ पर विष्णुमंत्र और वकुल पत्र पर शिवमंत्र लिखें। इस प्रत्येक मंत्र को उल्लिखित सात-सात पत्रों पर लिखा जाना चाहिए। रक्तचंदन और कुंकुमद्वारा शक्तिमंत्र, श्वेत-चंदन द्वारा विष्णुमन्त्र और भस्म द्वारा शिवमन्त्र लिखा जाना चाहिये। उसके बाद उस-उस देवता की प्राणप्रतिष्ठा करके यथाशक्ति उपचार द्वारा पूजा करें। अनन्तर शिष्य इस अर्घ्यपात्र को ग्रहण करके–

ॐ भो देव पृथिवीपाल सर्वशक्तिसमन्वित ।
ममार्घ्यञ्च गृहाण त्वं पूर्वविद्याः प्रकाशय ।।

इस मंत्र का पाठ करके सूर्य को अर्घ्य दान करें। अर्घ्य यथा– जल, दुग्ध, कुशाग्र, घृत, मधु, दधि, रक्तकरवी और रक्तचंदन। इसको अष्टाङ्ग अर्घ्य कहते हैं। इस प्रकार से अर्घ्य दान करके कृताञ्जलि होकर नमस्कार करें। अनन्तर शिष्य –

T

सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च वै।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नवसाक्षिणः।।
सर्वे देवाः शरीरस्था मम मन्त्रस्य साक्षिणः।
पूर्वजन्मार्जिताः विद्याः मम हस्ते प्रदापय।।

इस मंत्र के पाठ-पूर्वक मंत्र लिखित एक पत्र को उठाकर– 'गुरुदेव, मुझको पूर्वजन्मार्जित विद्या प्रदान कीजिए' – इसे बोलकर गुरु के हाथ में प्रदान करें। यह पत्रलिखित मन्त्र ही शिष्य की पूर्व-जन्मीय विद्या है। इस मन्त्र को यथारीति शिष्य को प्रदान करें।

मन्त्र ग्रहणाभिलाषी शिष्य पूर्व दिन हविष्यादि करके दूसरे दिन नित्यक्रियादि के समाधानान्ते ब्राह्मण होने पर ज्ञानाज्ञानकृत पातकक्षय की कामना से एक सौ आठ बार गायत्री का जप करें। तदनन्तर आचमन करते हुए नारायण प्रभृति देवताओं को गन्ध-पुष्प प्रदान करके संकल्प करें। **संकल्प** यथा – **अद्येत्यादि-अमुक-मासि अमुक-राशिस्थे भास्करे अमुक-पक्षे अमुक-तिथौ अमुक-गोत्रः श्रीअमुक-देवशर्मा, धर्मार्थकाममोक्ष-प्राप्तिकामः अमुक-देवताया इयदक्षरि-मन्त्रग्रहणमहं करिष्ये।**

बाद में संकल्प-सूक्तादि का पाठ करके गुरुवरण करें। यथा– हाथ जोड़कर गुरुजी से कहें कि **साधु भवानास्ताम्।** गुरु– **साध्वहमासे।** शिष्य – **अर्चयिष्यामो भवन्तम्।** गुरु– **ओमर्चय।** गंधपुष्प और दुर्वाक्षत द्वारा गुरुजी के दक्षिण जानु पकड़कर शिष्य पाठ करेंगे– **अद्येत्यादि** (देवशर्मा पर्यन्त पूर्ववत्) **मत्संकल्पित अमुक देवताया इयदक्षरि-मन्त्रग्रहणकर्मणि गुरुकर्मकरणाय अमुक-गोत्रम् श्री अमुकदेवशर्माणम् एभिः पाद्यादिभिरभ्यर्च्य गुरुत्वेन भवन्तमहम् वृणे।** गुरु– **ओम् वृतोस्मि।** शिष्य– **यथाविहितं गुरुकर्म कुरु।** गुरु– **ओम् यथा ज्ञानं करवाणि।**

इसके बाद गुरु के द्वारा स्थापित घट, शालिग्राम, वाणलिंग अथवा चन्दनादि द्वारा ताम्रपात्र में यन्त्र अंकित कर निज-निज पद्धति क्रम से यथाशक्ति देवता की पूजा करें और तांत्रिक विधान से होम करके जो मन्त्र दिया जायेगा उसी मन्त्र से स्वाहान्त करके अष्टोत्तरशत बार पूजित देवता का होम करें। उसके बाद शिष्य को उत्तराभिमुख में उपवेशन कराकर स्थापित घट के जल से एक शत आठबार मन्त्र जप करके जल को शिष्य के मस्तक पर कलश मुद्रा द्वारा प्रदान करके अभिषेक करें। इसके बाद **'ओम् सहस्त्रारे हुँ फट्'** मन्त्र से शिष्य की शिखाबन्धन करके मस्तक को ऊपर कर मन्त्र को एकशत आठ बार जपें। इसके बाद शिष्य के हाथ में एक अञ्जलि जल दान करके गुरु बोलेंगे– **अमुकं मन्त्रं ते ददामि, आवयोस्तुल्यफलदो भवतु।** शिष्य कहेगा– **ददस्व।** गुरु पूर्वाभिमुख होकर प्रदेयमन्त्र को प्रणवपूटित करके सात बार जप करेंगे, इसके बाद केवल मन्त्र को एक सौ आठ बार जप करेंगे। इसके बाद गुरु शिष्य की देह में ऋष्यादि न्यास करने पर शिष्य मस्तक आच्छादित कर पश्चिमदिशा में मुख करके बैठ कर दोनों हाथ से गुरू के दोनों पदों को पकड़ेगा। तब गुरु शिष्य के दक्षिण कर्ण ऋषिच्छन्दादियुक्त बीजमन्त्र स्पष्ट करके तीन बार और एक बार वाम कर्ण में उच्चारित कर देंगे। स्त्री और शूद्र के लिए इस नियम में विपरीताचरण करेंगे। गृहीतमन्त्र शिष्य तब भूलुण्ठित होकर गुरु के चरण में प्रणाम करके उच्चारित करेगा–

नमस्ते नाथ भगवन् शिवाय गुरुरूपिणे।
विद्यावतारसंसिद्धौ स्वीकृतानेकविग्रह।।
नारायणस्वरूपाय परमात्मैकमूर्त्तये।
सर्वज्ञानतमोभेदभावेन चिद्घनाय ते।।

T

स्वतंत्राय दयाक्लृप्तविग्रहाय शिवात्मने ।
परतन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्यरूपिणे ।।
विवेकानां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिणां ।
प्रकाशानां प्रकाशाय ज्ञानिनां ज्ञानरूपिणे ।।
त्वत् प्रसादादहं देव कृतकृत्योऽस्मि सर्वतः ।
मायामृत्युमहापाशात् विमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्मि च ।।

तब गुरु शिष्य के हाथ को पकड़ कर उत्तोलन करके मंगल कामनापूर्वक पाठ करेंगे–

उत्तिष्ठ वत्स मुक्तोऽसि सम्यगाचारवान् भव ।
कीर्तिश्रीकान्तिपुत्रायुर्बलारोग्यं सदास्तु ते ।।

उसके बाद शिष्य गुरुदक्षिणादान और अपने को कृतकृतार्थ समझ कर प्राप्तमन्त्र का एक सौ आठ बार जप करेगा और गुरुसंचारिणीशक्तिलाभार्थ गुरु के निकट तीन दिन वास करेगा। गुरु भी आत्मशक्ति रक्षार्थ एक सौ आठ बार मन्त्र जपेंगे।

दीक्षादान की और पद्धतियाँ भी शास्त्र में दिखाई देती हैं। स्थान, काल, पात्र का भी विचार है। किन्तु उनका उद्धरण विवेचना बाहुल्य के भय से नहीं दिया गया। भाग्यवश यदि कोई सिद्धगुरु अथवा सिद्धमन्त्र प्राप्त करता है तो उसे कुछ भी विचार करने का प्रयोजन नहीं है। उसी क्षण ही शिष्य मन्त्र ग्रहण करें।

बहुतों को सौभाग्यवश स्वप्न में ही मन्त्र प्राप्त हो जाता है। स्वप्न में मन्त्र प्राप्त होने पर भी इस मन्त्र को सद्गुरु से शिष्य को फिर से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि आत्मा के शक्तिसंचालक और एक आत्मा का नितान्त प्रयोजन है। यदि सद्गुरु की प्राप्ति न हो तब अपने से भी उसको ग्रहण किया जा सकता है। यथा–

T

स्वप्नलब्धे च कलसे गुरोः प्राणान् निवेशयेत् ।
वटपत्रे कुङ्कुमेण लिखित्वा ग्रहणं शुभम् ।।
ततः सिद्धिमवाप्नोति चान्यथा विफलं भवेत् ।।

- *योगिनीतन्त्र*

जलपूर्ण कलश में गुरु की प्राणप्रतिष्ठा करके वटपत्र पर कुंकुमद्वारा मन्त्र लिखकर उक्त कलश में इस मन्त्र का निक्षेप करें। बाद में वटपत्र सहित मन्त्र उत्तोलन करके स्वयं उस मन्त्र को ग्रहण करे। नहीं तो फल नहीं मिलेगा।

गुरु के एकान्त अभाव होने पर ही इस रूप से शिष्य अपने आप ही मन्त्र ग्रहण करेगा, किन्तु गुरु की प्राप्ति की सम्भावना रहने पर कभी भी शिष्य इस रूप में नहीं करेगा। स्वप्नलब्ध मन्त्र से सविशेष विचारादि करने का प्रयोजन नहीं है।

जो उचित रूप में, दीक्षा ग्रहण में असमर्थ हैं वे चन्द्र अथवा सूर्य ग्रहण काल में तीर्थस्थान में, सिद्धक्षेत्र में, महापीठ में अथवा शिवालय में गुरु द्वारा मन्त्र सुनकर उपदेश ग्रहण करने पर भी प्रत्यावाय नहीं होता है।

शाक्ताभिषेक

शक्तिमन्त्र के उपासकों की दीक्षा के साथ शाक्ताभिषेक होना कर्तव्य है। वामकेश्वर तन्त्र और निरुत्तर तन्त्रादि में कहा गया है कि **'जो व्यक्ति अभिषेक के बिना दशविद्याओं में से किसी विद्या के मन्त्र की दीक्षा दे तो वह व्यक्ति जब तक चन्द्र-सूर्य रहेंगे तब तक नरकवास करेगा।'** इसलिए शाक्तमात्र का ही शाक्ताभिषेक होना कर्त्तव्य है। शाक्ताभिषेक का क्रम, यथा–

स्वस्तिवाचनपूर्वक संकल्प करेगा- **'अद्येतादि अमुक-देवताप्रीतिकामः अमुकस्य शाक्ताभिषेकमहं करिष्ये।**

T

प्रथम शुद्ध जल द्वारा – "ॐ सहस्रशीर्षा" मन्त्र से स्नान कराकर बाद में "ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यामृतमसि धामनामसि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनं देवयजनमसि" इस मन्त्र से घृत लेपन करेंगे। बाद में मसूरचूर्ण लेकर "ॐ अतो देवा अवन्तु नो यस्ते विष्णुर्विचक्रमे पृथिव्याः सप्तधामभिः" इस मन्त्र से शिष्य के मस्तक पर देंगे और "ॐ द्रुपदादिव" इस वैदिक मन्त्र से उष्णोदक और चन्दन का लेप करेंगे। उसके बाद चन्दन, अगरु, तिल और आमलकी गन्ध द्रव्य पेषण द्वारा संमिश्रण कर उसे अंगों में विलेपन करते हुए-

ॐ उद्वर्त्तयामि देव त्वां यथेष्टः चन्दनादिभिः ।
उद्वर्त्तनप्रसादेन प्राप्नुयात् भक्तिमुत्तमाम् ।।

इस मन्त्र का पाठ करेंगे।

उद्वर्त्तनान्तर अग्निमीळे आदि चार वैदिक मंत्रों द्वारा स्नान करायेंगे बाद में रत्न संस्पृष्ट जल लेकर ऋग्वेदोक्त पवमान सूक्त पाठ कर स्नान करावें। मन्त्र यथा–

ॐ सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्माविष्णुशिवादयः ।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणः प्रभुः ।।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ।
आखण्डलोऽग्निर्भगवन् यमो वै नैर्ऋतस्तथा ।।
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ।
ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालाः पान्तु ते सदा ।।
कीर्तिर्लक्ष्मीधृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्षमा मतिः ।
बुद्धिर्लज्जा वपुः कान्तिः शान्तिः पुष्टिश्च मातरः ।।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मपत्न्यः समागताः ।
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजा ।।
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ।।

देव - दानव - गन्धर्व-यक्ष - राक्षस - पन्नगाः ।
ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ।
देवपत्न्यो ध्रुवा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ।
अस्त्राणि सर्वशास्त्राणि राजानो वाहनानि च ।
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ।।
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मकामार्थसिद्धये ।।

पूर्णाभिषेक

शाक्तादि पञ्चमन्त्रों के उपासकों का पूर्णाभिषेक होना कर्त्तव्य है। पूर्णाभिषेक बिना कुलकर्म का अधिकार नहीं होता है। अभिषेक के बिना केवल मद्यपान करने से ही कौल नहीं होता है। जिनका पूर्णाभिषेक हुआ है, वे कौलकुलार्चक हैं। पूर्णाभिषिक्त न होकर जो व्यक्ति कुल-कर्म का अनुष्ठान करता है, उसका समस्त कर्म विफल होता है। यथा-

अभिषेकं विना देवि कुलकर्म करोति यः ।
तस्य पूजादिकं कर्म अभिचाराय कल्पते ।।

—वामकेश्वरतन्त्र

अभिषिक्ति (पूर्णाभिषिक्त) न होकर जो व्यक्ति कुलकर्म का अनुष्ठान करता है, उसकी जप और पूजादि अभिचार स्वरूप होती है।

अतएव तान्त्रिक साधक मात्र ही उपयुक्त गुरु से पूर्णाभिषिक्त होंगे। पूंर्णाभिषेक के उपयुक्त गुरु, यथा-

परमहंसो गुरुणां पूर्णाभिषेकं समाचरेत् ।

—कौलार्चनचन्द्रिका

जो साधक साधना से परमहंसत्व प्राप्त होकर प्रकृत सत्कौल पदवाच्य हुए हैं। वे ही पूर्णाभिषेक करने के लिए उपयुक्त गुरु हैं

और पूर्णाभिषिक्त गुरु दीक्षा और शाक्ताभिषेक के अधिकारी हैं। अतएव सिद्धिकामी तान्त्रिक साधक साक्षात् शिवतुल्य कौल से पूर्णाभिषिक्त होंगे। पूर्णाभिषेक का क्रम नीचे विवृत है। यथा-

अभिषेक के पूर्वदिन सर्वविघ्न शान्ति के लिए यथाविधि पञ्चतत्त्व द्वारा विघ्नराज की पूजा करके अधिवास करेंगे और ब्रह्मज्ञ कुलसाधकों को भोजन कराएँगे।

दूसरे दिन शिष्य प्रातःकृत्य समापनपूर्वक स्नान और नित्यक्रियादि समाप्त करके जन्मावधिकृत पापराशि क्षय के लिए तिलकाञ्चन उत्सर्ग करेंगे। उसके बाद कौलादि की तृप्ति के लिए एक भोज्य उत्सर्ग करना आवश्यक है। बाद में सूर्यार्घ्य प्रदान करके ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नवग्रह और मातृगण की पूजा कर वसुधारा देंगे। तब कर्म के अभ्युदय की कामना से वृद्धि-श्राद्ध करेंगे।

उसके बाद गुरु के निकट जाकर प्रणाम और अनुमति लेकर सभी उपद्रवों की शान्ति के निमित्त और आयु, लक्ष्मी, बल, आरोग्य प्राप्ति के लिए यथाविहित संकल्प करके वस्त्र, अलंकार भूषण और शुद्धि के साथ कारण द्वारा गुरु की अर्चना करके वरण करेंगे।

इसके अनन्तर गुरु धूप, दीप, प्रभृति नानाविध द्रव्यद्वारा सुसज्जित मनोहर गृह में चार अँगुली ऊँचा, आधा हाथ दीर्घ-प्रस्थ परिमित मिट्टी की वेदी की रचना करेंगे। उसके बाद इस गृह में पीत, रक्त, कृष्ण, श्वेत और श्यामल वर्ण अक्षत-चूर्ण द्वारा सुमनोहर सर्वतोभद्रमण्डल रचना करेंगे। बाद में अपने-अपने कल्पोक्त विधि अनुसार मानस-पूजा अवधि कार्य-कलाप समापन करके यथारीति पञ्चतत्त्व का शोधन करेंगे।

पञ्चतत्त्व का शोधन करके 'फट्' इस मन्त्र से प्रक्षालन और अक्षत द्वारा लिप्त सुवर्ण, रजत, ताम्र अथवा मृत्तिका निर्मित घट

"ॐ" इस मन्त्र के पाठ के साथ सर्वतोभद्रमण्डल के ऊपर स्थापित करेंगे। इसके बाद "स्त्रीं" इस बीजमन्त्र का पाठ करके सिन्दूर द्वारा इस घट को अंकित करेंगे। बाद में अनुस्वार से सम्पुट करके "क्ष" तक अकारान्त पञ्चाशत वर्णों के साथ मूलमन्त्र का तीन बार जप करके मदिरा, तीर्थजल अथवा विशुद्ध जल द्वारा घट को पूर्ण करेंगे। उसके बाद नवरत्न (अभाव में सुवर्ण) इन्हें घट में गिराना होगा। बाद में गुरु 'ऐं' बीजमन्त्र पाठ करते हुए घट के मुख में कटहल, यज्ञडुमूर, अश्वत्थ, वकुल और आम का पल्लव स्थापित करें। बाद में 'श्रीं ह्रीं" इस मन्त्र का उच्चारण करके फल और आतपतण्डुल समन्वित सुवर्णमय, रजतमय, ताम्रमय और मृन्मय सकोरा पल्लव के ऊपर रखेंगे। उसके बाद वस्त्रयुग्म द्वारा इस घट की ग्रीवा का बन्धन करेंगे। शक्तिमन्त्र में रक्तवस्त्र एवं शिव और विष्णुमन्त्र में श्वेतवस्त्र का व्यवहार करेंगे। बाद में **"स्थां स्थीं हीं श्रीं स्थिरीभव"**- इस मन्त्र का पाठ करके घट की स्थापना करेंगे।

उसके बाद अन्य एक घट में पञ्चतत्त्व-स्थापनापूर्वक नौ पात्रों में रखेंगे। रजत द्वारा शक्तिपात्र, स्वर्ण द्वारा गुरुपात्र, महाशंख (नरकपाल) द्वारा श्रीपात्र और ताम्र द्वारा अन्य सब पात्रों का निर्माण करेंगे। महादेवी की पूजा में पाषाण, काष्ठ और लौह निर्मित पात्र व्यवहार नहीं करना चाहिए। ऊपर लिखित पात्रों को निर्मित करने में असमर्थ होने से निषिद्ध पात्र को छोड़ कर अन्य पदार्थों द्वारा पात्रों का निर्माण कर लेंगे। बाद में पात्र संस्थापन करके गुरुगणों, भगवती और आनन्दभैरवादि के तर्पण के बाद अमृतपूर्ण घट की अर्चना करेंगे। बाद में धूप-दीप प्रदर्शन करके सभी भूतों को बलि प्रदान करेंगे। उसके बाद पीठदेवतादि की पूजा पूर्वक षडङ्गन्यास करेंगे। बाद में प्राणायाम करके महेश्वरी के ध्यान और आवाहनपूर्वक यथासाध्य उपचार में इष्टदेवता की पूजा करेंगे। पूजाकाल

T

की अवस्थानुसार कभी भी कृपणता नहीं करनी चाहिए।[१] सद्गुरु होम के समय तक कर्म समापन के अन्त में पुष्प, चन्दन और वस्त्र द्वारा कुमारी, कौल और कुलरमणी की अर्चना करके उनसे शिष्य के अभिषेक के लिए अनुज्ञा लेंगे। बाद में गुरु शिष्य के द्वारा देवी की पूजा करायेंगे। उसके बाद पूर्व स्थापित घट के ऊपर "ह्रीं स्त्रीं श्रीं" इस मन्त्र का जप करके-

उत्तिष्ठ ब्रह्म - कलस देवतात्मक - सिद्धिद ।
त्वत्तोयपल्लवैः सिक्तः शिष्यो ब्रह्मतरोऽस्तु मे ।।

इस मन्त्र का पाठ करके घट को चलायेंगे। इसके बाद शिष्य के उत्तराभिमुख उपविष्ट होने पर पूर्वोक्त घट के मुख में संस्थापित पञ्चपल्लव द्वारा कलस से जल लेकर निम्नलिखित मन्त्र से शिष्य-मस्तक और अंग में सिंचन करेंगे। मन्त्र यथा-

ॐ सदाशिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः आद्यादेवता,, ॐ बीजं शुभपूर्णाभिषेके विनियोगः

गुरुस्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ।
दुर्गालक्ष्मी भवान्यस्त्वामभिषिञ्चन्तु मातरः ।।

---

१. अनेक गृहस्थों की महामाया की पूजा में आठहाथ वस्त्र की व्यवस्था रहती है किन्तु वरणकाल में बाबू की गृहिणी बनारसी साड़ी से पूर्ण शरीर को ढक कर बाहर होती है। किसी गृहस्थ के घर की विधवाओं के लिए आतप तण्डुल लाने पर अत्यधिक टूटा होने से लड़कियों ने पसन्द नहीं किया, तब बाबू ने पूर्वजों द्वारा स्थापित देव की सेवा के नित्य नैवेद्य के लिए उक्त चावल को भेज दिया। हाय! जो मनुष्य के लिए अव्यवहार्य है, उससे ही देवता के लिए व्यवस्था हुई। इसीलिए देवता की कृपा भी हम प्रचुर परिमाण में भोग करते है। मूर्ख यह नही समझते है कि इस्पात में घटिया देने पर अपना अस्त्र ही ना कमजोर रहेगा।

षोडशी तारिणी नित्या स्वाहा महिषमर्दिनी ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।।
जयदुर्गा विशालाक्षी ब्रह्माणी च सरस्वती ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु वगला वरदा शिवा ।।
नारसिंही च वाराही वैष्णवी वनमालिनी ।
इन्द्राणी वारुणी रौद्री त्वामभिषिञ्चन्तु शक्तयः ।।
भैरवी भद्रकाली च तुष्टिः पुष्टिरुमा क्षमा ।
श्रद्धाकान्तिर्दयाशान्तिरभिषिञ्चन्तु ते सदा ।
महाकाली महालक्ष्मीर्महानीलसरस्वती ।
उग्रचण्डा प्रचण्डा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।।
मत्स्यः कुर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा ।
रामो भार्गवरामस्त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ।।
असितांगोरुरुश्चान्तः क्रोधोन्मत्तो भयङ्करः ।
कपाली भीषणश्च त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ।।
काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।
विप्रचित्ता महोग्रा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।।
इन्द्रोऽग्नि शमनो रक्षो वरुणः पवनस्तथा ।
धनदश्च महेशानः सिञ्चन्तु त्वां दिगीश्वराः ।।
रविः सोमो मङ्गलश्च बुद्धो जीवः सितः शनिः ।
राहुः केतुः सनक्षत्रा अभिसिञ्चन्तु ते ग्रहाः ।।
नक्षत्रकरणं योगो वाराः पक्षौ दिनानि च ।
ऋतुर्मासोऽयनस्त्वमभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।।
लवणेक्षु-सुरा-सर्पि-दधि-दुग्ध-जलान्तकाः ।।
समुद्रास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।।
गंगा सूर्यसुता रेवा चन्द्रभागा सरस्वती ।
सरयूर्गण्डकी कुन्ती श्वेतगंगा च कौशिकी ।।

T

एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।
अनन्ताद्या महानागाः सुपर्णाद्याः पतत्रिणः ।।
तरवः कल्पवृक्षाद्याः सिञ्चन्तु त्वां महीधराः ।
पाताल-भूतल-व्योमचारिणः क्षेमकारिणः ।।
पूर्णाभिषेकसन्तुष्टास्त्वामभिषिञ्चन्तु पाथसाः ।
दुर्भाग्यं दुर्यशो रोगी दौर्मनस्यं तथा शुचः ।।
विनश्यन्त्वभिषेकेन परब्रह्म स्वतेजसा ।
अलक्ष्मीः कालकणा च डाकिन्यो योगिनिगणाः ।।
विनश्यन्त्वभिषेकेन कालीबीजेन ताडिताः ।।
ताः प्रेताः पिशाचाश्च ग्रहा येऽरिष्टकारकाः ।
विद्रुतास्ते विनश्यन्तु रमाबीजेन ताडिताः ।।
अभिचारकृता दोषा वैरिमन्त्रोद्भवाश्च ये ।
मनोवाक्कायजा दोषा विनश्यन्त्वभिषेचनात् ।।
नश्यन्तु विपदः सर्वाः सम्पदः सन्तु सुस्थिराः ।
अभिषेकेन पूर्णेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।।

इस मन्त्र से अभिषेक करके साधक यदि पहले पश्वाचारी के यहाँ दीक्षित हुए हैं, तब कौलगुरु फिर उसको उसी दीक्षित मन्त्र को इस समय एक बार सुना देंगे। अनन्तर गुरु, शिष्य को आनन्दनाथान्त नाम प्रदान कर एक बार उसी नाम से पुकारेंगे और उपस्थित कौलगण को सुना देंगे। यथा--एक व्यक्ति का नाम था द्वारकाचरण पूर्णाभिषेक के बाद गुरु ने नाम रखा "दुर्गानन्दनाथ"।

इसके बाद शिष्य यन्त्र में अपने देवता की पूजा करके पञ्चतत्त्वोपचार से गुरु की पूजा करेगा। उपस्थित कौलगण की भी पूजा करने का कर्त्तव्य है। बाद में गुरुदेव को यथाशक्ति रत्नादि द्वारा दक्षिणान्त करके चरण को स्पर्शपूर्वक प्रणाम करेगा। यथा-

श्रीनाथ जगतां नाथ मन्नाथ करुणानिधे।
परामृतप्रदानेन पूरयास्मन्मनोरथान्।।

अनन्तर गुरु कौलों से अनुमति लेकर शुद्धिसम्पन्न परामृतपूर्ण पानपात्र शिष्य के हाथ में समर्पण करेंगे। उसके बाद देवी को स्वहृदय में ध्यान करके स्त्रुक्संलग्न भस्मद्वारा शिष्य के भ्रूमध्य में तिलक प्रदान करेंगे। उसके बाद चक्रानुष्ठान के विधानानुसार पान और भोजन करेंगे।

इस बीच सभी कार्यों को अर्थात् संकल्प, पूजा, होमादि अपने-अपने कल्पोक्त विधानानुसार सम्पादन करेंगे। पूर्णाभिषिक्त व्यक्ति तन्त्रोक्त सभी साधनों का ही अधिकारी हो जाता है। पूर्णाभिषिक्त न होने पर किसी भी प्रकार काम्यकर्म का फलभागी नहीं हुआ जा सकता। विशेषतः कलिकाल में यह अनुशासन सविशेष कार्यकारी है। अतएव शिवोक्त तन्त्र के अनुशासन के अनुसार पूर्णाभिषिक्त न होकर अनधिकारी तन्त्रोक्त किसी कार्य के अनुष्ठान में विफल मनोरथ होने से शास्त्र को दोष नहीं दिया जा सकता; अथवा "शास्त्र मिथ्या" कहकर पाण्डित्य प्रकाश नहीं करना चाहिए। इस प्रकार देखने से कोई अभिज्ञ व्यक्ति तुम्हें विज्ञ नहीं कह सकता; वरन् अज्ञ समझकर अवज्ञा की हँसी हँसेंगे।

ब्राह्मणेतर जो कोई जाति हो यथाविधि पूर्णाभिषिक्त होने पर प्रणव और समस्त वैदिक कार्यों में ब्राह्मणसदृश अधिकार प्राप्त होता है।

नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्म

मै कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ - इस प्रकार के अहङ्काररूप जो बन्धन का कारण है– जन्म और मृत्यु का जो कारण है तथा नित्य-नैमित्तिक याग, व्रत, तपस्या और दान इत्यादि कार्यों के फल का जो अनुसंधान है– उसी का नाम ही कर्म है। कर्मकाण्ड जो सकल प्रकार के

कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्मों का ज्ञान कराता है वही नहीं, केवल इष्टदायक अर्थात्! मङ्गलकर कर्म को ही समझाएगा। जिन सब कार्यों के द्वारा इस लोक का हितसाधन होता है, उन्हीं का नाम कर्मकाण्ड है। सीधी बात है-कृ+मन् अर्थात् काय और मन द्वारा जो कुछ किया जाता है वही कर्म है। इस समय देखना होगा कि वे कर्म क्या-क्या हैं और किस प्रकार उनका निर्वाचन किया जाता है। शास्त्रकारों का कथन है–

वेदादिविहितं कर्म लोकानामिष्टदायकम् ।
तद्विरुद्धं भवेत्तेषां सर्वदानिष्ठदायकम् ।।

वेद, पुराण, तन्त्र इत्यादि शास्त्र में निर्दिष्ट जो सब कर्म हैं, वे ही मनुष्ये के लिए इष्टदायक हैं और उनके विपरीत जो कर्म हैं, वे ही अनिष्टदायक हैं।

वेदादि शास्त्रविहित कर्म त्रिविध हैं- नित्यकर्म, नैमित्तिककर्म और काम्य-कर्म।

यस्याकरणजन्यं स्याद्दुरितं नित्यमेव तत् ।
प्रातःकृत्यादिकं तात श्राद्धादिपितृतर्पणम् ।।

–तत्त्वविचार

जिस कर्म के नहीं करने से प्रत्यवाय उत्पन्न होता है,उसी को नित्यकर्म कहा जाता है। यथा– प्रातःकृत्य,, प्रातःसन्ध्या, पितृश्राद्ध एवं पितृतर्पण इत्यादि। पञ्चयज्ञाश्रित (ब्रह्म-यज्ञ, पितृ-यज्ञ, देव-यज्ञ, भूत-यज्ञ और नृ-यज्ञ) कर्म को नित्यकर्म कहा जाता है। अर्थात् जिन्हें प्रत्यह करना ही होगा, वही नित्य-कर्म है। प्रत्यह प्रातःकाल से सायंकाल पर्यन्त संसारीव्यक्ति को नियमित जो ऐहिक और पारमार्थिक विषय का कर्मानुष्ठान करना होता है, उनका नाम नित्यकर्म है।

नित्यकर्म प्रकृष्टरूप से सम्पन्न करने के लिए सामयिक नियम से आबद्ध किये गये हैं अर्थात् किस समय कौन-सा कार्य करना होगा,

उसकी व्यवस्था दी गयी है। प्रात:काल से सन्ध्यातक चार पहर अथवा बारह घण्टे रखे गये हैं। इस चार प्रहर समय को आठ भागों में विभक्त करने पर प्रति अंश आधा प्रहर अथवा डेढ़ घण्टा होता है। इस डेढ़ घण्टे को अर्द्धयाम कहा जाता है। समस्त दिन के बीच आठ अर्द्धयाम होता है। इसलिए सभी नित्यकर्मों को आठ भागों में विभक्त करके एक-एक भाग को एक-एक अर्द्धयाम में अन्तर्भुक्त करके उसकी पद्धति सन्निविष्ट की गयी है। सूर्योदय के पूर्वाह्न में निरूपित समय में जो सब कर्म किये जाते हैं, उनका नाम प्रात:कृत्य अथवा ब्राह्ममुहूर्तकृत्य है। प्रात:कृत्य समाधान के बीच प्रति अर्द्धयाम में नित्यकर्म सम्पन्न करना होता है।

मासाद्यवीजं यत् किञ्चिद्वीजं नैमित्तिकं मतम् ।
वृद्धिश्राद्धादिजातेष्टियागकर्मादिकन्तथा ।।

-स्मृति

जिन कर्मों के लिए मास-पक्षादि निर्दिष्ट नहीं हैं किन्तु जो निमित्ताधीन हैं वही **नैमित्तिक कर्म** हैं। यथा वृद्धिश्राद्ध, जातेष्टियाग और ग्रहण के लिए दानादि। निमित्त के लिए जो कर्म हैं, वे ही नैमित्तिक कर्म हैं।

यत्किञ्चित् फलमुद्दिश्य यज्ञदानजपादिकम् ।
क्रियते कायिकं यच्च तत् काम्यं परिकीर्तितम् ।।

-स्मृति

कामना पूर्वक अर्थात् किसी प्रकार फल की आशा रख कर जो यज्ञ, दान, जपादि कर्म सम्पन्न होते हैं, उनका नाम **काम्यकंर्म** हैं। यागयज्ञ, महादान, देवतादि-प्रतिष्ठा, जलाशय-प्रतिष्ठा, 'वृक्षादि-प्रतिष्ठा और व्रतादि कर्मानुष्ठन करने को काम्यकर्म कहा जाता है।

नित्यकर्म प्रतिदिन करने के लिए है; नैमित्तिक कर्म निमित्ताधीन है; इसलिए वह समय-विशेष में करने को है; काम्यकर्म-

इच्छाधीन है, और इसलिए वह इच्छानुसार करने के लिए है। नित्य, नैमित्तिक और काम्य ये त्रिविध कर्मों में नित्यकर्म ही सभी के लिए ज्ञातव्य है। इस कारण नित्यकर्म का ज्ञान न होने से केवल पश्वादि के सदृश आहार-विहार मात्र होता है; इसलिए नित्यकर्म के अनुष्ठान का उत्तमरूप से ज्ञान होना आवश्यक है। नित्यकर्म यथाविधि सम्पन्न करने से इस संसार में यथाविधि सुखी होकर अन्त में मोक्ष-लाभ किया जा सकता है। यथा–

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
तद्धि कुर्वन् यथाशक्तिं प्राप्नोति परमां गतिम् ।।

-मनुसंहिता, ४-१४

आलस्य परित्याग करके प्रतिदिन वेदोक्त अपने-अपने आश्रम-विहित सम्पूर्ण कर्मों का सम्पादन करना चाहिए। कारण सामर्थ्यानुसार ये सम्पूर्ण कर्म करने से परमगति की प्राप्ति होती है।

इसलिए देखा जाता है कि सम्यक्रूप से नित्यकर्म-विधि का ज्ञान होना आवश्यक है। नित्यकर्मी व्यक्ति ही साधना-कार्य में योग्यता प्राप्त कर सकता है। उसके बिना दूसरों के लिए साधन-कार्य में अग्रसर होना केवल वन्ध्या-स्त्री से सन्तानोत्पादन की चेष्टा करने के समान विफल होता है।

दीक्षाग्रहण करके आत्मोन्नति के लिए प्रतिदिन जिन सब कार्यों का अनुष्ठान करना होता है, वे ही नित्यकर्म हैं। इस नित्यकर्म को ही वैधकर्म कहा जाता है। स्नान, पूजा, सन्ध्या-गायत्री, स्तव-कवच पाठ, होम-प्रभृति सभी कर्मों को ही वैधकर्म कहा जा सकता है। मन्त्रग्रहण करके प्रत्येक व्यक्ति का इन सब वैधकर्मों का अनुष्ठान करना कर्त्तव्य है। इसमें योगाभ्यास, चित्तजय और आध्यात्मिक शक्ति की उपलब्धि होती है। शाक्त, शैव, वैष्णव, गाणपत्य और सौर सभी साधकों को तान्त्रिक

मत से वैधकर्म का अनुष्ठान करना होता है। ब्राह्मण वैदिक कार्यों का अनुष्ठान करेंगे। बहुतों की धारणा है कि श्रीकृष्णादिदेवता-साधक के कर्म तान्त्रिक नहीं हैं- उनकी यह भूल धारणा है। सभी देवताओं की दीक्षा ही तन्त्रोक्त है। पर केवलराग मार्ग का भजन तन्त्रातीत है। जो विधिपूर्वक अर्थात् मन्त्रादि द्वारा इष्टदेवता का भजन करते हैं, उन्हें सभी को तन्त्रमत से वह सम्पादित करना होता है।

अतएव प्रत्येक दीक्षित व्यक्ति प्रत्यह विधानानुयायी स्नान, पूजा, सन्ध्याह्निक प्रभृति नित्यकर्मों को सम्पादित करेगा। नित्यकर्म का विधान हर हिन्दू को ही ज्ञात है। पर किसी आनुष्ठानिक निष्ठावान हिन्दू से जान लेना अच्छा है। उस विस्तृत विषय को प्रकाशित करना इस ग्रन्थ का विषय नहीं है। अपने-अपने गुरु ही शिष्य को उसकी शिक्षा देते हैं। तब उनकी यथारीति सम्पादित करना चाहिए। नित्यनैमित्तिक क्रियाशील नहीं होने से काम्यकर्म का फल नहीं प्राप्त किया जा सकता। विशेष साधना भी उसके द्वारा नहीं हो सकती। अतएव साधनाभिलाषी साधकमात्र ही नित्यनैमित्तिक क्रियायों का सम्पादन करना नहीं भूलेंगे। नित्य, नैमित्तिक और काम्यादि सभी कर्म प्रकृष्टरूप से सम्पन्न करने पर ही किसी भी प्रकार के विशेष साधना-कार्य में अग्रसर होने की क्षमता उत्पन्न होती है। तब जिसके मन में जिस प्रकार की अभिलाषा रहती है, वह उसी के अनुसार साधना में प्रवृत्त हो सकता है। जिसका जो इष्ट है उसको उस विषय की ही साधना करना कर्त्तव्य है। साधना के अन्त में इष्टसिद्धि होने पर साधक तब सभी प्रकार के साधना कार्यों को ही हस्तगत कर सकता है।

विशेष साधना-पद्धति बताना ही इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय है। दीक्षाग्रहण करके और शाक्ताभिषिक्त होकर प्रथम नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं का यथाविधि नित्य अनुष्ठान अर्थात् नित्यपूजा, होम, तर्पण, सन्ध्याह्निक, नानारूप पुरश्चरण प्रभृति अनुष्ठान करना चाहिए।

क्रम से जब साधना कार्य में विशेष रूप से दृढ़ता उत्पन्न होगी तब पूर्णाभिषिक्त होकर विशेष साधना-कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिए। इन सब कार्यों में मनोयोग न देकर जो स्वेच्छा से काम्य-कर्म अथवा विशेष साधना का अनुष्ठान करता है, उनका श्रम व्यर्थ होता है। सभी सदा स्मरण रखें कि नित्य-नैमित्तिक कर्मों के अनुष्ठानकारी के बिना कोई भी तन्त्रोक्त साधना में सफलता प्राप्त कर नहीं सकता है।

अन्तर्याग अथवा मानसिक पूजा

दीक्षा ग्रहण करके प्रतिदिन इष्टदेव की पूजा करनी चाहिए। इससे इष्टनिष्ठा और भक्ति की वृद्धि होकर भगवान् में तन्मयता जन्मती है। किन्तु यह पूजा-पद्धति, मन्त्र और देवताभेद से भिन्न-भिन्न हैं। इसलिए सभी प्रकार देवता की बाह्यपूजा-पद्धति लिपिबद्ध करना इस सामान्य ग्रन्थ में साध्यायत्त नहीं है। अपने-अपने कल्पोक्त विधान से सभी बाह्यपूजा का सम्पादन करेंगे। हमारे देश में पटलगुरु शिष्य को बाह्यपूजा की पद्धति प्रदान करते हैं। उससे अतिरिक्त पद्धति-ग्रन्थादि में भी पूजा-प्रणाली लिखित है। अतएव हमने बाह्य-पूजा के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है।

सभी प्रकार की बाह्यपूजा में ही अन्त:पूजा की व्यवस्था है अर्थात् बाह्यपूजा करने पर अन्त:पूजा भी करनी होगी। मानस पूजा ही सभी प्रकार की पूजाओं में श्रेष्ठ है; एकमात्र मानस-पूजा से ही सर्वार्थसिद्धि हो सकती है। पर सब मानस पूजा के अधिकारी नहीं हैं; इसीलिए पहले बाह्यपूजा का अनुष्ठान होना चाहिए; बाह्यपूजा के साथ ही मानस-पूजा करनी होती है। इस प्रकार कुछ दिन बाह्यपूजा के अनुष्ठान में जब अन्त:पूजा का सुन्दररूप में अभ्यास हो जायेगा, तब

T

और बाह्यपूजा की बिल्कुल आवश्यकता नहीं रहेगी; केवल मानसपूजा करने से ही इष्टसिद्धि हो जायेगी। यथा–

> अन्तःपूजा महेशानि बाह्यकोटिफलं लभेत्।
> सर्वपूजाफलं देवि प्राप्नोति साधकः प्रिये।।

–भूतशुद्धिमन्त्रं

अर्थात् एक बार की हुई अन्त:पूजा कोटि बाह्यपूजा का फल प्रदान करती है; इसलिए अन्त:पूजा से ही साधक सभी पूजाओं का फल प्राप्त कर सकता है।

जिस कारण से उपचार के प्राचुर्य बिना बाह्यपूजा निष्फल होती है, इसलिए अन्त:पूजाधिकारी के लिए बाह्यपूजा विडम्बना मात्र है। वही जगद्गुरु योगीश्वर ने कहा है कि –

> मनसापि महादेव्यै नैवेद्यं दीयते यदि।
> यो नरो भक्तिसंयुक्तो दीर्घायुः स सुखी भवेत्।।
> माल्यं पद्मसहस्रस्य मनसा यः प्रयच्छति।
> कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च।।
> स्थितो देवीपुरे श्रीमान् सार्वभौमो भवेत् क्षितौ।
> मनसापि महादेव्यै यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम्।
> स दक्षिणे यमगृहे नरकाणि न पश्यति।।
> मनसापि महादेव्यै यो भवक्या कुरुते नतिम्।
> सोऽपि लोकान् विनिर्जित्य देवीलोके महीयते।।

–गन्धर्वतन्त्र

जो मनुष्य भक्ति-युक्त होकर महादेवी की मनः कल्पित नैवेद्य द्वारा पूजा करेंगे वे दीर्घायु और सुखी होते हैं। जो व्यक्ति मन:कल्पित सहस्रपद्म की माला देवी को प्रदान करता है, वह शतसहस्रकोटि-कल्पकाल तक देवीपुर में वास करके पृथ्वी के सार्वभौमत्व को प्राप्त

होता है। जो देवी की मानस-प्रदक्षिणा करता है, वह यमगृह में नरक का दर्शन नहीं करता है। जो व्यक्ति भक्ति के साथ देवी को मानस नमस्कार करता है, वह सभी लोकों को जीत कर देवीलोक में जाता है।

पाठक! मानस-पूजा की श्रेष्ठता और उपकारिता शायद समझ गए होंगे। तान्त्रिक-साधक प्रतिदिन यथाविधि एकमात्र अन्तर्याग अथवा मानस-पूजा का अनुष्ठान करने से सर्वसिद्धि की उपलब्धि कर सकेगा। मानसपूजा का क्रम, यथा –

शुभ आसन पर पूर्वास्य अथवा उत्तरास्य होकर उपवेशन-पूर्वक अपने हृदय में सुधा-समुद्र का ध्यान करें और इस बीच सुवर्ण बालुकामय, विकसित-कुसुमान्वित, मन्दार एवं पारिजातादि पुष्प-वृक्ष-परिशोभित है, सर्वदा ही जिस वृक्ष में पुष्प और फल उत्पन्न हों, इस प्रकार वृक्षयुक्त रत्नदीप या जिसके चतुर्दिक् नाना प्रकार कुसुमग्रन्थ से आमोदित, जिस स्थान पर भ्रमर-समूह विकसित कुसुमामोद से प्रहृष्ट, जो स्थान सुमधुर कोकिल गान से प्रतिध्वनित, विकसित सभी स्वर्गीय सुवर्णपङ्कज जिसकी शोभावर्द्धन कर रहे हैं और जिस स्थान पर मनोहर वस्त्र, मौक्तिकमाला और कुसुम-मालालंकृत तोरण-परिशोभित हैं, एतादृश रत्नदीप का ध्यान करें।

उसके बाद रत्नद्वीपाभ्यन्तर में चतुर्वेदरूप चतुःशाखा-विशिष्ट सत्त्वादिगुणत्रयसमन्वित, पीत, कृष्ण, श्वेत, रक्त, हरित और विचित्र वर्णों के पुष्प विराजित; कोकिल-भ्रमरादि-पक्षीगण-विमण्डित कल्पपादप का ध्यान करें। इस प्रकार कल्पद्रुम का ध्यान करके उसके अधोभाग में रत्नवेदिका का ध्यान करें।

उसके बाद उसके ऊपर भाग में बालारुण-सदृश रत्नवर्ण रत्न-निर्मित सोपानावलीयुक्त ध्वजयुक्त चतुर्द्वारान्वित नाना रत्नालंकृत रत्ननिर्मित प्राकारवेष्टित अपने-अपने स्थान पर स्थित लोकपालगण

द्वारा अधिष्ठित, क्रीड़ाशील सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, महोरग, किन्नर, अप्सरागण-परिव्याप्त, नृत्य और गीतवाद्यनिरत सुर-सुन्दरीगणयुक्त, किन्नरीगणयुक्त, पताकालंकृत, महामाणिक्य, वैदुर्य और रत्नमयचामर-भूषित, लम्बमान स्थूल-मुक्ताफलालंकृत चन्दन, अगरु और कस्तूरी द्वारा विलिप्त सुमहत् रक्तमण्डप का ध्यान कर उसके मध्य में महामाणिक्य-वेदिका का ध्यान करें और इस वेदिका के अभ्यन्तर प्रातः सूर्यकिरणारुण-प्रभ चतुष्कोण शोभित ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक सिंहासन का ध्यान करें। उसके बाद उक्त सिंहासन पर प्रसूनतुलिकान्यास करें।

उसके बाद संकल्पोत्क्रम से पीठ-पूजा करके प्रेत-पद्मासन पर इष्टेवता का ध्यान करें। उसके बाद इष्टदेवता को रत्न पादुका प्रदान करके उनको स्नानमन्दिर में आनयन करें और कर्पूर, अगुरु, कस्तूरी, मृगमद, गोरोचन और कुंकुमादि नाना गंधद्रव्य-सुवासित जलद्वारा इष्टदेवी के सर्वशरीरोद्वर्तन करके उसमें सुगन्ध तेल का लेपन करें। उसके बाद सहस्त्र कुम्भ जल से देवी को स्नान कराकर वस्त्रद्वारा शरीर मार्जन-पूर्वक वस्त्रयुगल परिधान करावें। बाद में कंघी द्वारा केश संस्कार करके ललाट पर तिलक, केशमध्य में सिन्दूर, हाथ में हाथीदाँत का शंख, केयूर, कंकन और वलय, पादपद्म में नाना-रत्न विनिर्मित अंगूरीयक, नूपुर, नासिका के अग्रभाग में गजमुक्ता, कान में रत्ननिर्मित दुल, कण्ठ में रत्नहार और सुगन्ध पुष्पमाला प्रदान करके सर्वाङ्ग में चन्दन और सिह्लक (गन्धद्रव्यविशेष) का लेपन करें। उरःस्थल में नाना कारुकार्यान्वित सुवर्णखचित कञ्चुकी परिधान कराकर और नितम्ब पर रत्नमेखला पहनावें।[१]

---

१. पञ्च उपासकों में प्रत्येक ही अपने इष्टदेवता के ध्यानानुयायी आसन-वाहनादि की कल्पना कर लेंगे। मैं इस ग्रन्थ में देवीमूर्ति को लक्ष्य करके ही सभी विषयों को लिपिबद्ध करूँगा।

T

बाद में समाहित चित्त से देवी का चिन्तन करते हुए भूत-शुद्धि एवं नानाप्रकार से न्यास करके षोडश-उपचार से हृदय-स्थिता देवी की अर्चना करें। उपवेशनार्थ रत्नसिंहासन प्रदान करके स्वागत प्रश्न करें। पादपद्म में पाद्य अर्पण करें। मस्तक में अर्घ्यार्पण और परामृतरूप आचमनीय मुखसरोरुह में प्रदान करें। मधुपर्क एवं त्रिधा आचमनीय मुख में प्रदान करें। सुवर्णपात्र में परिष्कृत परमान्न, कपिला गौ के घृत-युक्त सव्यंजनान्न, सागरतुल्य अमेय मद्य, पर्वतप्रमाण मांस, राशिकृत मत्स्य, नाना प्रकार के सुवासित जल और कर्पूरादि मसल्लासंयुक्त ताम्बुल प्रभृति चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय चतुर्विध मानस उपचार द्वारा देवी की अर्चना करे। अनन्तर आवरण देवता की पूजा करके जप करना चाहिए।

प्रोक्त मानस-पूजा गुरूपदिष्ट विधान, उसके अतिरिक्त शास्त्र में भी मानसयोग का विधान है। यथा–

हृत्पद्मासनं दद्यात् सहस्रारच्युतमृतैः ।
पाद्यं चरणयोर्दद्यात् मनस्त्वर्घ्यं निवेदयेत् ।।
तेनामृतेनाचमनीयं स्थानीयं तेन च स्मृतम् ।
आकाशतत्त्वं वस्त्रं स्यात् गन्धः स्यात् गन्धतत्त्वकम् ।।
चित्तं प्रकल्पयेत् पुष्पं धूपं प्राणान् प्रकल्पयेत् ।
तेजस्तत्त्वञ्च दीपार्थं नैवेद्यं स्यात् सुधाम्बुधिः ।।
अनाहतध्वनिर्घण्टा वायुतत्त्वञ्च चामरम् ।।
सहस्रारं भवेत् छत्रं शब्दतत्त्वञ्च गीतकम् ।
नृत्यमिन्द्रियकर्माणि चाञ्चल्यं मनसस्तथा ।
सुमेखलां पद्ममालां पुष्पं नानाविधं तथा ।।
अमायाद्यैर्भावपुष्पैरर्चयेद् भावगोचराम् ।
अमायं अनहंकारं अरागं अमदं तथा ।।

अमोहकमदम्भञ्च अद्वेषाक्षोभकौ तथा ।
अमात्सर्यमलोभञ्च दशपुष्पं विदुर्बुधाः ।।
अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ।
दयापुष्पं क्षमापुष्पं ज्ञानपुष्पञ्च पञ्चमम् ।।
इति पञ्चदशैर्भावपुष्पैः सम्पूजयेत् शिवाम् ।
सुधाम्बुधिं मांसशैलं मत्स्यशैलं तथैव च ।।
मुद्राराशिं सुभक्ष्यञ्च घृताक्तं परमान्नकम् ।
कुलामृतञ्च तत्पुष्पं पञ्च तत्क्षालनोदकम् ।।
कामक्रोधौ छागवाहौ वलिं दत्वा प्रपूजयेत् ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गगने च जलान्तरे ।।
यद् यत् प्रमेयं तत् सर्वं नैवेद्यार्थं निवेदयेत् ।
पाताल-भूतल-व्योमचारिणो विघ्नकारिणः ।
तांस्तानपि बलिं दत्वा निर्द्वन्द्वो जपमारभेत् ।।

साधक अपने हत्पद्म को आसनरूप में कल्पित करके उस पर अभीष्ट देवता को बैठाएँ। उसके बाद सहस्रार-विगलित-अमृत को पाद्यरूप में कल्पित कर उसके द्वारा इष्टदेवता के चरण को विधौत करें। मन को अर्घ्यरूप में प्रदान करें। पूर्वोक्त सहस्रारामृत को आचमनीय और स्नानीय, देहस्थ आकाशतत्त्व को वस्त्र, पृथ्वीतत्त्व को गन्ध, चित्त को पुष्प, घ्राण को धूप, तेज को दीप, सुधासागर को नैवेद्य, अनाहत ध्वनि को घण्टाशब्द, शब्दतत्त्व को गीत, इन्द्रियचापल्य को नृत्य, वायुतत्त्व को चामर, सहस्रारपद्म को छत्र, हंस को मन्त्र अर्थात् श्वास-प्रश्वास को पादुका और पद्माकार नाडीचक्र को पद्ममाला के रूप में कल्पित कर अमाया, अनहंकार अराग अमद, अमोह, अदम्भ, अद्वेष, अक्षोभ, अमात्सर्य और अलोभ इस भावमय दशपुष्प और अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, ज्ञान, दया और क्षमा इस

पञ्चपुष्पों को देवी को प्रदान करें। उसके बाद सागरतुल्य सुधा (मद्य) पर्वततुल्य मत्स्य और मांस नाना प्रकार सुभक्ष्य मुद्रा और स्वर्ग, मर्त्य, पाताल, गगन और जल में जो जो स्थान में जो जो प्रमेय विद्यमान हैं, उन सभी को नैवेद्य और काम को छाग, क्रोध को महिषरूप में कल्पित करके विघ्नकारीगणों को पृथक्-पृथक् बलि प्रदान करें। अनन्तर जप आरम्भ करें।

इस द्विविध अन्तर्यागों में से मन को परिष्कृत रखकर एक चित्त होकर जिस किसी एक को करने से ही है। जप की प्रणाली यथा–

मानसजप की माला पचास वर्ण की होती है। इसको गूँथने का सूत्र शिव-शक्ति और ग्रन्थि कुण्डलिनीशक्ति और मेरु नादबिन्दु है। वर्णमयी इस माला के जपने की प्रणाली यह है कि प्रत्येक वर्ण को मन्त्र और बिन्दुयुक्त कर लें। यथा 'कं' बीजमन्त्र 'कं'। अकारादि हकारान्त वर्ण में अनुलोम एवं हकारादि अकारान्तवर्ण में विलोम-दोनों के मिलन से एक सौ होता है। 'अ' से समस्त स्वर वर्ण और 'क' से समस्त व्यंजंन वर्ण एकत्र होने पर पचास होते हैं; पहले 'अ' से 'ह' तक पचास, फिर 'ह' से 'अ' तक पचास– इस प्रकार एक सौ। 'क्ष' वर्ण मेरु अर्थात् माला परिवर्तन की अथवा जपारम्भ की अथवा जप समाप्ति की सीमा अथवा साक्षी। उसमें मंत्र योग न करें। इस प्रकार शत जप और अष्टवर्ग का आदि अं, कं, चं, टं, तं, पं, यं, शं, इस अष्टवर्ण में आठ जप इस समूह से एक सौ आठ बार जप होता है। साधक इच्छा करने से एक हंजार आठ बार भी जप कर सकता है, इस प्रकार मानस पूजा और जप करके बाद में जपसमर्पण के अन्त में प्रणाम करें–

सर्वान्तरात्मनिलये स्वात्मज्योतिःस्वरूपिणि ।
गृहाणान्तर्जपं मातराद्ये कालि नमोऽस्तु ते ।।

उसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव ये पञ्चदेवता

देवी के पर्यङ्करूप हैं; उक्त पर्यङ्क पर नाना प्रकार पुष्प विनिर्मित दुग्धफेननिभ शय्या की रचना कर उसमें देवी को सुख-शयन चिन्तन करते हुए देवी का पादसेवन और चामर व्यञ्जन करें। उसके बाद नृत्य, गीत और वाद्य द्वारा देवी को परितुष्ट कर पूजा की सार्थकता के निमित्त होम करें।

अन्तर्होम सद्यःसिद्धिप्रद है– इसके अनुष्ठान से मनुष्य चिन्मयता प्राप्त करता है। आधारपद्ममें चिदग्नि में होम करें। अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा, इस आत्मत्रितयात्मक, चतुष्कोण आनन्दरूप मेखला एवं विन्दुरूप त्रिवलययुक्त नादविंदुरूप योनियुक्त चित्कुण्डका चिन्तन करें। इस कुण्ड के दक्षिण में पिंगला, वामभाग में इड़ा और मध्यभाग में सुषुम्ना नाड़ी का ध्यान करके धर्म और अधर्मरूप में कल्पित घृत द्वारा यथाविधि होम करें।

प्रथम मूलमन्त्र, उसके बाद–

नाभौ चैतन्यरूपाग्नौ हविषा मनसा स्रुचा।
ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम्।।

यह मन्त्र, बाद में चतुर्थ्यन्त देवता का नाम, अनन्तर स्वाहा, इस मन्त्र से प्रथमाहुति दान करें। इस प्रकार प्रथम मूलमन्त्र, बाद में-

धर्माधर्मौ हविर्दीप्तं आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्नवर्त्मना नित्यं ब्रह्मवृत्तिर्जुहोम्यहम्।।

यह मन्त्र, इसके बाद चतुर्थ्यन्त देवता का नाम, उसके बाद स्वाहा इस मन्त्र से द्वितीयाहुति प्रदान करें। पुनः मूलमंत्र बाद में-

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यां अवलम्ब्यात्मना स्रुचा।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम्।।

यह मंत्र, बाद में चतुर्थ्यन्त देवता का नाम, उसके बाद स्वाहा इस मंत्र से तृतीयाहुति दान करें।

T

अनन्तर मूलमन्त्र के बाद– **'अन्तर्निरन्तर-निरिन्धनमेधमाने मायान्धकार-परिपन्थिनि संविदग्नौ, कस्मिंश्चिद्भूतमरीचि-विकाशभूमौ विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावशानम्'** यह मन्त्र, बाद में चतुर्थ्यन्त देवता का नाम, उसके बाद स्वाहा, इस मन्त्र से चतुर्थाहुति प्रदान करें।

इसके बाद **'इदन्तु पात्रभरितं महत्तापपरामृतं पूर्णाहुतिमये वह्नौ पूर्णहोमं जुहोम्यहं'** यह मन्त्र, पुनः चतुर्थ्यन्तदेवता का नाम, उसके बाद स्वाहा, इस मन्त्र से पूर्णाहुति प्रदान करें।[1]

इस प्रकार अन्तर्याग अर्थात् मानस-पूजा, जप और होम करने पर देही ब्रह्ममय हो जाता है। जब तक प्रकृत ज्ञान लाभ नहीं होता, तब तक बाह्यपूजा करनी होगी। क्योंकि-

वाह्यपूजा प्रकर्त्तव्या गुरुवाक्यानुसारतः ।
वहिःपूजा विधातव्या यावज्ज्ञानं न जायते ।।

–वामकेश्वरतन्त्र

जब तक प्रकृत ज्ञान नहीं होता है, तबतक गुरु की आज्ञा के अनुरूप वाह्य पूजा करने का कर्त्तव्य है। योगीगण और मुनिगण मानस पूजा ही करते हैं; वाह्यपूजा नहीं करते हैं; किन्तु गृही साधक केवल मानसपूजाद्वारा सिद्धि लाभ नहीं कर सकता। इसी कारण उनको वाह्य और मानस पूजा दोनों को ही करना आवश्यक है।

---

१. मन्त्र किस प्रकार भावपूर्ण और हृदयग्राही होते हैं। पाठकों की अवगति के लिए कुछ होममन्त्रों का अनुवाद दिया गया है। प्रथम मन्त्र– मेरा नाभिस्थित चैतन्यरूप हुताशन वर्तमान ज्ञानद्वारा प्रदीप्त हुआ है। मैंने मनोमय स्रुक्द्वारा धर्माधर्मरूप घृत के साथ इन्द्रियवृत्तिसमूह को आहुति दी। द्वितीय मन्त्र– धर्माधर्मरूप घृतद्वारा समुद्दीप्त आत्मरूप अग्नि में सुषुम्नापथ द्वारा मनोमय स्रुक् की सहायता से इन्द्रियवृत्ति समूह को

T

यहाँ पर साधक को और एक बात ध्यान में रखनी होगी कि पूजा-समय अंक (गोद) में बायें हाथ के ऊपर दाहिना हाथरखकर कार्य करें। स्त्री-देवता का ध्यान के समय इसके विपरीत नियम आचरणीय है। मानसिक जपके नियम को किसी अभिज्ञ साधक के समीप देख लेने से अच्छा होगा। शाक्त-वैष्णवादि पञ्च उपासकगण मानसपूजा के समय पञ्चदशविध भावपुष्प द्वारा इष्टदेवता की अर्चना करें। यहीं तक साधारणों का अधिकार है। केवल पूर्णाभिषिक्त शाक्त इसके बाद लिखित उपचार के द्वारा पूजा कर सकेंगे तथा मानसपूजा और जप के बाद होम करना एकान्त कर्त्तव्य है। बिना जप की पूजा जिस प्रकार विफल होती है, उसी प्रकार होम नहीं करने से भी वह पूजा कोई फल प्रदान नहीं करती है। यथा-

नाजप्तः सिद्ध्यति मन्त्रो नाहुतश्च फलप्रदः ।
विभूतिश्चाग्निकार्येण सर्वसिद्धिश्च विन्दति ।।

होम नहीं करने से मन्त्र कोई फल प्रदान नहीं करता है। होम करने से सभी प्रकार की सम्पत्ति लाभ और सर्व कार्य की सिद्धि होती है। साधकगण यथारीति अन्तर्योग का अनुष्ठान करने पर सर्वसिद्धि

आहुति प्रदान की। तृतीयमन्त्र--मैंने प्रकाश और आकाशरूप हस्तद्वयद्वारा उन्मनीरूप स्रक् की सहायता से धर्माधर्म और स्नेह-विकास रूप घृत को आहुति दान किया। चतुर्थ मन्त्र– जिससे अद्भुत दिव्यज्योतिः प्रकाश पाती है, जो मायान्धकार दूर कर हमारे अन्दर निरन्तर प्रज्ज्वलित और प्रदीप्त रहते हैं, वही अव्यक्त सम्वित् रूप अग्नि में मैंने वसुमति से शिव पर्यन्त समस्त जगत् और सभी मायाप्रपञ्च को आहुति दी। पूर्णाहुति मन्त्र हमारा मनोमय पात्र आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक; इस तापत्रपरूप घृत से परिपूरित करके और पूर्णाहुति प्रदानपूर्वक होम समाप्त किया।

T

लाभ कर सकेंगे, इसलिए अन्तर्यागात्मिका पूजा करना सभी का कर्तव्य है और अन्तर्याग सभी पूजाओं में सर्वश्रेष्ठ है। यथा-

"अन्तर्यागात्मिका पूजा सर्वपूजोत्तमोत्तमा।"

माला निर्णय और जप का कौशल

जप करते समय रुद्राक्षादि माला अथवा करमाला व्यवहृत होती है। पुरुष देवता के मन्त्र-जप के लिए करमाला में तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठा का तीन-तीन पर्व और मध्यमा का एक पर्व ग्रहण करें और मध्यमा के दूसरे दो पर्वों को मेरुरूप से कल्पना करें। अनामिका के मध्य पर्व से जप आरम्भ करके कनिष्ठादि क्रम से तर्जनी के मूलपर्व तक जो दशपर्व हैं, इनसे साधक जप करें। जब एक सौ आठ बार जप करेगा तब पूर्वोक्त नियम से सौ आदि संख्या के जप पूर्ण होने पर, अनामिका के मूल पर्व से आरम्भ करके कनिष्ठा के क्रम से तर्जनी के मध्य पर्व तक आठ पर्व में आठ बार जप करें।

शक्तिमन्त्र के जप के लिए करमाला में अनामिका का तीन पर्व, कनिष्ठा का तीन पर्व, मध्यमा का तीन पर्व और तर्जनी का मूलपर्व ग्रहण करें। शक्तिमन्त्र के जप का यही नियम है कि अनामिका मध्यपर्व से जप आरम्भ करके कनिष्ठादि क्रम से मध्यमा का तीन पर्व और तर्जनी का मूलपर्व इस दशपर्व से साधक जप करें। अष्टोत्तर-शतादि संख्यक जप करने के लिए पूर्वोक्त नियम से शतादिसंख्यक जप करके अनामिका के मूलपर्व से आरम्भ कर कनिष्ठादि क्रम से मध्यमा के मूल पर्व तक आठ बार जप करें। तर्जनी के ऊपर के दो पर्वों को मेरु समझें। यथा-

T

तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत् स तु पापकृत् ।

-नारद-वचन

जो व्यक्ति तर्जनी के अग्र और मध्य पर्व से शक्तिमन्त्र का जप करता है, वह पापकारी है। इसको ही समस्त तन्त्रशास्त्रों में शक्तिमाला कह कर अभिहित किया गया है। श्रीविद्यादि के विशेष-विशेष जप में विशेष-विशेष अंगुली-पर्व ग्रहण करके कर-माला की व्यवस्था है। विस्तार के भय से उसकी विवेचना नहीं की गयी है।

करमाला के जप का यही नियम है कि जप के समय कर की अँगुलियाँ सब थोड़ी टेढ़ी और परस्पर संश्लिष्ट कर रखें और दोनों हाथों को आच्छादित करके वक्षस्थल पर स्थापित करें। जप-काल में अँगुलियों को अलग न करें– अँगुलियों को वियोजित करने पर छिद्रपथ से जप निःसृत हो जाता है अर्थात् जप निष्फल हो जाता है। अंगुली के अग्रभाग में पर्व संधि से और मेरुलंघनपूर्वक जो जप किया जाता है,उसे निष्फल समझना चाहिए। करतल को थोड़ा आकुंचित और सब अंगुलियों को टेढ़ा कर उसके समान दाहिने हाथ को हृदय के ऊपर स्थापित करके वस्त्रद्वारा आच्छादन करते हुए जप करना चाहिए।

संख्या को ध्यान में रखकर जप करना कर्त्तव्य है। शास्त्रविधि-विहित संख्या न रख के इच्छानुसार जप करने से वह निष्फल होता है। दाहिने हाथ से जप करना चाहिए और बांये हाथ से जप की संख्या रखनी चाहिए। प्रात्यहिक जप करमाला से ही प्रशस्त होता है।

नित्यं जपं करे कुर्यात् न तु काम्यमबोधनात् ।
काम्यमपि करे कुर्यात् मालाभावेऽपि सुन्दरि ।।

नित्यजप करमाला से सम्पन्न करना ही कर्त्तव्य है। किन्तु काम्यजप करमाला द्वारा न करके अन्य माला से जप करना प्रशस्त है। पर यदि काम्य जप में माला का अभाव हो, तो अगत्या करसे भी निर्वाह

हो सकता है। माला के सम्बन्ध में शास्त्र का विधान यह है कि-

साधारणतः काम्यजप में रुद्राक्ष, स्फटिक, रक्तचन्दन, तुलसी, प्रवाल, शङ्ख, पद्मबीज, मौक्तिक और कुशग्रन्थि के द्वारा निर्मित माला व्यवहृत होती है। शान्तिकर्म प्रभृति कार्यों में और देवता भेद से मालाओं का विशेष नियम है, पर साधरण जप में उल्लिखित नानाविध मालाओं से जिस माला के माध्यम से जप करने की रुचि होती है और जो सुलभ है, उसी माला से जप करें। करमाला से जप की अपेक्षाा शङ्खमाला का जप सौगुण, प्रवालमाला से सहस्त्रगुण, स्फटिक माला से दससहस्त्रगुण, मौक्तिक माला से लक्षगुण, पद्मबीज माला से दशलक्षगुण, सुवर्णमाला से कोटिगुण अधिक, कुशग्रन्थि और रुद्राक्ष से अनन्तगुण अधिक होता है और श्वेत पद्मबीज-निर्मित माला से अमित फल की प्राप्ति होती है।

परस्पर समान, न तो बहुत स्थूल, न तो बहुत कृश, कीटाणु वेधरहित और अजीर्ण अर्थात् नूतन सब मालाओं को विधि पूर्वक जल से प्रक्षालित कर पञ्चगव्यद्वारा साधक अभिसिञ्चन करें। उसके बाद ब्राह्मणकन्या द्वारा कर्पास सूत्र अथवा पट-सूत्र पुनः त्रिगुणित करवा कर सब मालाओं को ग्रन्थन करें। मूलमन्त्र और स्वाहा उच्चारण करके एक-एक माला को गूँथते हुए उसमें सूत्र को लगाएँ। माला इस रूप में गूँथनी चाहिए कि जिससे परस्पर के मुख के साथ परस्पर का मुख और पूँछ के साथ पूँछ संयोजित रहे[1]। सजातीय एक माला द्वारा मेरु अर्थात् मध्य अथवा साक्षी का बन्धन करें। अष्टोत्तरशत अर्थात् एक सौ आठ मणियों द्वारा माला-ग्रन्थन प्रशस्त है। अनन्तर

---

१. रुद्राक्ष का ऊपर वाला भाग मुख ओर निम्नभाग पूंछ अन्याय मालाओं का जो भाग स्थूल होता है, वह भाग मूल है और जो भाग सूक्ष्म है, वह पूंछ है।

एक-एक माला पकड़ करके हृदय में ओम् इस मन्त्र का स्मरण करते हुए उससे ग्रन्थि प्रदान करें। स्वयं ग्रन्थन करने पर इष्ट-मन्त्र किन्तु अन्य व्यक्ति के ग्रन्थन करने से प्रणव स्मरण करें। सार्धद्वय आवर्त्तन करके ब्रह्मग्रन्थि अथवा नागपाश ग्रन्थि प्रदान करें। इस प्रकार मणियों को रखें जिससे माला सर्पाकृति अथवा गोपुच्छ-सदृश हो। ग्रन्थि - हीन माला द्वारा कभी भी जप न करें। किन्तु मेरु में ग्रन्थि नहीं होगी। इस प्रकार माला ग्रथित कर उसके बाद उसका शोधन करें। यथा–

अप्रतिष्ठितमालाभिर्मन्त्रं जपति जो नरः ।
सर्वं तन्निष्फलं विद्यात् क्रुद्धा भवति देवता ।।

जो व्यक्ति अप्रतिष्ठिता माला द्वारा जप करता है, उस पर देवता क्रुद्ध होते हैं और उसका जप निष्फल हो जाता है, इसलिए जिस माला द्वारा जप किया जाता है, उसका संस्कारकार्य सम्पन्न कर लेना चाहिए।

शुभ तिथि,शुभवार, शुभ नक्षत्र और शुभ लग्न में गुरुदेवको प्रणाम करके साधक गुरुद्वारा अथवा स्वयं माला का संस्कार करें।

साधक नित्य-क्रिया समापन के अन्त में सामान्यार्घ्य स्थापित करके 'हौं'– इस मन्त्र से पञ्चगव्य में माला डालें। उसके बाद शीतल जल द्वारा स्नान करावें।

ॐसद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः ।
भवे भवेनातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय वै नमः ।।

इस मन्त्र से पञ्चगव्यद्वारा मार्जन करें। उसके बाद **ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः** –यह मन्त्र पाठ करके, चन्दन,अगरु और कर्पूरद्वारा उक्त माला को लेपन करें। अनन्तर सधूप-वह्निसन्ताप में '**ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो**

T

घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्व शर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः' यह मन्त्र पाठ करके माला को धूप प्रदान करें। उसके बाद **'ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि, तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्'** इस तत्पुरुष मन्त्र से जल सेचन करके माला को ग्रहण करें।

बाद में नौ अश्वत्थपत्रद्वारा पद्म रचना करके उसमें मातृका और मूलमन्त्र उच्चारणपूर्वक माला स्थापित करें। उसके बाद माला में देवी की प्राणप्रतिष्ठा करके परिवारगण के साथ इष्टदेवता की पूजा और मातृका-वर्ण द्वारा अनुलोम-विलोम उभयक्रम से माला को अभिमन्त्रित करें। उसके बाद **'हे सौ'** इस मन्त्र से मेरु अभिमन्त्रित कर उसको देवतास्वरूप समझें। उसके बाद अग्निका संस्कार करके एक सौ आठबार होम करें। हुतशेष द्वारा देवताके उद्देश्य से साधक प्रत्याहुति प्रदान करें। होमकार्य में अशक्त होने पर द्विगुण जप करें। बाद में **'ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि-देहि सर्वमन्त्रार्थ-साधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा'** यह प्रार्थना-मंत्र पाठ करें। इस प्रकार से सुसंस्कृत माला द्वारा जप करने से साधक को सर्वाभीष्ट की सिद्धि होती है। उसके बाद गुरु की पूजा करके उनके हाथ से माला ग्रहण करें।

जप करने से पहले माला में जलाभ्युक्षण करके **'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः'** इस मन्त्र से माला की पूजा करें। इसके बाद दाहिने हाथ से मालाग्रहण करके हृदय के समीप लाकर मध्यमांगुली के मध्यभाग में समाहित चित्त से स्थापित करें। माला के ऊपरी भाग में अंगूठे को स्थापित करें और मध्यभाग के आगेवाले भाग से जपान्तर के क्रम से उसे संचालित करें। यदि अंगूठे से माला को चलाया जाय तो उससे जप निष्फल होता है। बाएँ हाथ से अथवा तर्जनी से अथवा अपवित्र अवस्था में माला को स्पर्श न करें। भुक्ति, मुक्ति और पुष्टि

कामना से मध्यमांगुली से जप करें। एक-एक बार जप करके एक दाना को चलाएँ और जप की संख्या रखें। संख्या रखने के लिए जो जो द्रव्य आवश्यक हैं, वे निम्नलिखित हैं। यथा–

लाक्षा कुशीदः सिन्दूरं गोमयञ्च करीषकम्।
एभिर्निर्माय वटिकां जपसंख्यान्तु कारयेत्।।

लाक्षा, कुशीद, सिन्दूर, गोमय, शुष्क गोमय इन द्रव्यों में से किसी एक के द्वारा गुटिका प्रस्तुत करके उसके द्वारा जपसंख्या रखें।

वस्त्रद्वारा दोनों हाथों को ढककर दाहिने हाथ से सदा जप करें। गुरुदेव को भी माला न दिखाएँ। माला के जिस अंश की मणि स्थूल हो, उस अंश की प्रथम मणि से जप आरम्भ कर सूक्ष्म अंश की अन्तिम मणि पर जप समाप्त करें। इस प्रकार से सूक्ष्मावधि स्थूलान्त जप संहार नाम से पुकारा जाता है। स्वयं बाएँ हाथ से माला का स्पर्श न करें। जप के अन्त में पवित्र स्थान पर माला को रखें। सूत के पुराने होने पर माला को नए सूत से ग्रन्थित कर सौ बार जप करें। दीक्षित ब्राह्मण भी यदि माला छूता है, तो माला को फिर शुद्ध करें। हाथ,कण्ठ अथवा मस्तक पर जपमाला को धारण न करें। यदि उरु, चरण अथवा अधर से लगे अथवा बाएँ से अथवा अगुप्तढङ्ग से परिचालित हो, तब फिर से माला का संस्कार करें।

अकारादि ह पर्यन्त सभी मातृकावर्णों को वर्णमाला कहते हैं। क्ष इसका मेरु है। शिव-शक्त्यात्मिका कुण्डलीसूत्र में यह ग्रथित है। ब्रह्मनाड़ीमध्यवर्तिनी, मृणालसूत्र के समान सूक्ष्म और शुभ्रवर्ण चित्राणी नाड़ी इस माला की ग्रन्थि-स्वरूपा है। इसका आरोहण अवरोहण एक सौ संख्या और अष्टवर्ग में आठ संख्या होती है, इसलिए यह एक सौ आठ की होती है। इस माला में एकबार मन्त्र द्वारा वर्ण अन्तरित करके अर्थात् मन्त्र के बाद सानुस्वार एक-एक वर्णोच्चारण पूर्वक वर्णद्वारा

मन्त्र अन्तरित करके अर्थात् सानुस्वार एक-एक वर्ण के बाद मन्त्रोचारणपूर्वक अनुलोम-विलोम जप करें। मेरुरूप चरम वर्ण (क्ष) कभी भी पार न करे। सबिन्दु वर्ण उच्चारण कर बाद में मन्त्रजप करें। मन्त्रका जप एक सौ आठबार करें। पञ्चाशत वर्णमयी माला से दोबार में सौ बार और अष्टवर्ग में आठबार जप करने से ही एक सौ आठ बार होगा। अ,क,च,ट,त,प,य,श - इस अष्टवर्णको ही अष्टवर्ग कहते हैं।

करमाला, जपमाला अथवा वर्णमाला का जिस किसी का विधानानुयायी जप करने से ही साधक को सर्वाभीष्ट सिद्ध हो सकता है।

स्थान-निर्णय और जप का नियम

वर्तमान युग में मर्त्यधाम के सुसभ्य प्राणीगण भी स्थानमाहात्म्य स्वीकार करते हैं। स्थानभेद से कृतकर्म का फलाफल दिखाई देता है। इसी से तन्त्रशास्त्रकारों ने विशेष-विशेष कार्यों में विशेष-विशेष स्थान निर्दिष्ट कर दिये हैं। वाराणसी में जप करने से सम्पूर्ण फल की प्राप्ति होती है, उसका द्विगुण पुरुषोत्तम क्षेत्र में और उसका द्विगुण द्वारावती में, विन्ध्य, प्रयाग और पुष्कर में सौगुना; इसकी अपेक्षा करतोया नदी के जल में चारगुना, नदी-कुण्ड में उससे भी चारगुना, उसके चारगुना जल्लिश के निकट और उसके दुगुना सिद्धेश्वरी-योनि में। सिद्धेश्वरी-योनि का चौगुना ब्रह्मपुत्र नद में, कामरूप के जलस्थल ब्रह्मपुत्र नद के समान ही है; कामरूप का सौगुना नीलाचल पर्वत के मस्तक पर और उसका दुगुना लिंग श्रेष्ठ हेरुक में।

ततोऽपि द्विगुणं प्रोक्तं शैलपुत्रादियोनिषु ।
ततः शतगुणं प्रोक्तं कामाख्यायोनिमण्डले ।।

कामाख्यायां महायोनौ पूजां यः कृतवान् सकृत्।
स चेह लभते कामान् परत्रे शिवरूपधृक्।।

-कुलार्णवतंत्र

हेरुक का दुगुना शैलपुत्रादि में,उसका सौगुना कामाख्या योनिमण्डल में। जो व्यक्ति कामाख्यायोनिमण्डल में एक बार मात्र जप पूजादि करता है, वह इसलोक में सर्वाभीष्ट लाभ करके परजन्म में शिवत्व लाभ करता है।

अतएव कामाख्यापीठापेक्षा मन्त्रसिद्धि लाभ करने के लिए और कोई श्रेष्ठ स्थान नहीं हैं। हमारे देश के अनेक तन्त्रोक्तसाधक कामाख्यापीठ में सिद्धि लाभ किए हैं। किसी को वहाँ साधना की सुविधा न होने पर किसी भी महापीठ, उपपीठ अथवा सिद्धपीठ में साधना का अनुष्ठान करें। पीठ स्थानों में कितने-कितने महात्माओं का तपःप्रभाव एकत्र होता है। इसलिए उस स्थान पर साधना के आरम्भ मात्र में ही बिल्कुल मन संयत हो जाता है और शक्तिकेन्द्र का जागरण हो जाता है। साधक स्वल्पकाल में ही सिद्धिलाभ कर सकता है। किसी को पीठ स्थान पर साधना असम्भव होने पर तन्त्रशास्त्र ने उसकी भी व्यवस्था कर रखी है। यथा-

गोशाल्यां गुरोर्गेहे देवागारे च कानने।
पुण्यक्षेत्रे तथोद्याने नदीतीरे च मन्त्रवित्।
धात्रिबिल्वसमीपे च पर्वताग्रे गुहासु च।
गंगायास्तु तटे वापि कोटिकोटिगुणं भवेत्।।

-तंत्रसार

गोशाला, गुरु का भवन, देवालय, कानन, पुण्यक्षेत्र उद्यान, नदीतीर, आमलकी और बिल्ववृक्ष के समीप, पर्वताग्र, पर्वतगुहा और गंगातट इन सभी स्थानों में जप करने से करोड़गुना फल-प्राप्त

होता है। इससे अतिरिक्त श्मशान, भग्नगृह, चत्वर और त्रिमस्तक रास्ता आदि में जप करने की विधि तन्त्रशास्त्र में दिखाई देती है। इनके अतिरिक्त भी साधकगण शास्त्रोक्त प्रणाली से पञ्चमुण्डी आसन स्थापित कर उसपर बैठकर एवं पञ्चवटी की प्रतिष्ठा कर उसमें बैठकर मन्त्रसाधना करते हैं। बंगदेश में अधिकांश तान्त्रिकों ने इस द्विविध उपाय से मन्त्र जप कर सिद्धिलाभ किया है।

विधानानुयायी दो चाण्डालों का मुण्ड, एक शृगाल का मुण्ड, एक बानर का मुण्ड और एक सर्प का मुण्ड- इस पञ्चमुण्ड के आसन पर बैठकर जप करने से मन्त्रसिद्धि विषय में विशेष सहायता होती है। कोई-कोई फिर एक मुण्डका आसन की ही व्यवस्था करते हैं।

पञ्चवटी निर्माण करने के लिए दीर्घ-प्रस्थ में चार हाथ स्थान (सोलह वर्गहस्त परिमित स्थान) निर्दिष्ट कर एक कोने में बिल्व, दूसरे में शेफालिका, तृतीय कोने में निम्ब, चतुर्थ कोने में अश्वत्थ या वट एवम् मध्यभाग में आमलकी वृक्ष रोपित करना होता है।[१] इस स्थान पर चारों दिशाओं में रक्तजवाफूल के द्वारा वेष्टित कर उसके पार्श्व में माधवीलता किम्वा कृष्णा अपराजिता वेष्ठित करनी चाहिए। मध्यस्थल तीर्थस्थान के पवित्र रजद्वारा शुद्ध कर लेना चाहिए।

पञ्चवटी अथवा पञ्चमुण्डी आसन पर मन्त्रसिद्ध व्यक्ति के द्वारा संस्कृत कर सकने पर अधिक सुविधा होती है। जो भी हो, साधकगण अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार उल्लिखित जो कोई स्थान निर्दिष्ट करके 'कूर्मचक्र में' उपवेशनपूर्वक सिद्धि के लिए मन्त्र-जप करें। महायोगीश्वर महादेव ने शपथपूर्वक कहा है कि इस घोर कलिकाल में

---

१. मतान्तर में-

अश्वत्थो बिल्ववृक्षश्च वटो धात्री अशोककः ।
वटीपञ्चकमित्युक्तं स्थापयेत् पञ्चदिक्षु च ।। -स्कन्दपुराण

केवल जपद्वारा ही जीव सिद्धकाम होगा, इसमें सन्देह नहीं है। यथा-

जपात्सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः।

-शिववाक्यम्

जप शब्द का अर्थ मन्त्राक्षर की आवृत्ति है। जप् धातु से जप शब्द निष्पन्न हुआ है। जप् धातु का अर्थ मानस उच्चारण है, इसलिए इष्टदेवता का बीज अथवा मन्त्र मन ही मन उच्चारण करने का नाम जप है।

मनसा यत् स्मरेत् स्तोत्रं वचसा वा मनुं स्मरेत् ।
उभयं निष्फलं याति भिन्नभाण्डोदकं यथा ।।

मन ही मन स्तवपाठ या वाक्यद्वारा-अर्थात् दूसरा सुन पावे इस प्रकार मन्त्रजप करने से वह स्तव और मन्त्रजप भग्नभाण्डस्थित जल-सदृश निष्फल होता है। इसलिए साधक विधिपूर्वक जप करें। जप भी योग विशेष है। इसलिए शास्त्रादि में जप 'जपयज्ञ' या 'मन्त्रयोग' के नाम से उल्लिखित है। जप त्रिविध है। यथा– मानस उपांशु और वाचिक।

उच्चरेदर्थमुद्दिश्य मानसः स जपः स्मृतः ।
जिह्वौष्ठौ चालयेत् किञ्चित् देवतागतमानसः ।।
किञ्चित् श्रवणयोग्यः स्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ।
निजकर्णागोचरोऽयं स जपो मानसः स्मृतः ।।
उपांशुर्निजकर्णस्य गोचरः परिकीर्तितः ।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा स जपो वाचिकः स्मृतः ।।

--विशुद्धेश्वरतन्त्र

मन्त्रार्थ स्मरणपूर्वक मन ही मन मन्त्र-उच्चारण करने का नाम **मानसिक जप** है। देवता के प्रति मनोनिवेश करके जिह्वा और ओष्ठ किंचित् संचालन पूर्वक स्वयं ही मन्त्र श्रवण कर सकें, इस रूप में मन्त्र उच्चारण का नाम **उपांशु जप** है। अपने कान से अश्राव्यरूप में

T

जो मन्त्र-जप है, वह मानस, अपने कान से जो गोचर जप है, वह उपांशु और वाक्यद्वारा मन्त्र उच्चारण को **वाचिक जप** कहते हैं।

उच्चैर्जपाद्विशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः ।
जिह्वाजपः शतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ।।

वाचिक जप की अपेक्षा उपांशुजप में दसगुना, उपांशुजप से मानसजप में सहस्रगुन अधिक फल होता है।

साधक स्थिर-चित्त होकर इष्टदेवता का चिन्तन करते हुए दोनों ओठों को सम्पुटितकर मनद्वारा मन्त्रवर्ण का चिन्तन करें। जप के समय जिह्वा अथवा दोनों ओठों का संचालन न करें। ग्रीवा और मस्तक स्थिररूप में रखें और दाँतें जिससे न दिखाई दें, उसी प्रकार करें। साधक मंत्र के स्वर और व्यंजन वर्ण का अनुभूतिपूर्वक जप करने से सिद्धिलाभ कर सकता है। पहले ध्यान और बाद में मन्त्र का जप करें। ध्यानमन्त्रसमायुक्त साधक शीघ्र सिद्धिलाभ कर सकते हैं। जो देवता जिस मन्त्र से प्रतिपाद्य हैं, उस देवता का ध्यानपूर्वक जप करें। जप का नियम है-

मनः संहृत्य विषयान् मन्त्रार्थगतमानसः ।
न द्रुतं न विलम्बञ्च जपेन्मौक्तिकहारवत् ।।

जपकाल में विषय से मन को आहृत अर्थात् आहृतरूप में उठाकर मन्त्र के गर्भ की भावना-सहित अतिद्रुत नहीं, अति विलम्ब नहीं अर्थात् समान ताल में जिस प्रकार मुक्ताहार एक के बाद एक गुँथा जाता है, उसी प्रकार साधक जप करें।

अत्यन्त मन्दगति से जप करने पर व्याधि की उत्पत्ति होती है और अत्यन्त द्रुतगति से जप करने पर धनक्षय होता है। अतएव मौक्तिक हार की तरह एक-एक अक्षर योग करके जप करना चाहिए। यो व्यक्ति जिस देवता का उपासक, वह तन्निष्ठ, तद्गतप्राण, तच्चित्त

एवं तत्परायण होकर ब्रह्मानुसन्धानपूर्वक मन्त्रजप करें।

जापक साधनारम्भ से पहले छिन्नादिदोषशान्ति करके मन्त्रजप करें। मन्त्र यथाविधि जप करने पर भी फललाभ में विलम्ब होने पर किसी मन्त्रसिद्ध अभिज्ञ व्यक्ति द्वारा आचार्य शंकरोक्त भ्रामणादि सप्त उपाय का अवलम्बन पूर्वक मन्त्र की शुद्धि सम्पादन करा लें। शास्त्र में लिखा है कि जप से पूर्व सेतु न रहने से वह जप निष्फल हो जाता है और बाद में न रहने से यह मन्त्र विशीर्ण हो जाता है। इसलिए सेतु भिन्न जप निष्फल होता है। इस कारण जापकगण मन्त्र से पहले और बाद में ॐ इस सेतुमन्त्र से जप करें। जिन लोगों का ॐ के उच्चारण में अधिकार नहीं वे 'ऐं' इस मन्त्र को सेतुरूप में व्यवहार कर सकते हैं।[१]

नियमानुसार न्यास और प्राणायामादि करके जप आरम्भ करें। जप समाप्त करके भी प्राणायाम करना होगा। मल-मूत्र वेग को धारण कर जप और पूजादि कुछ भी नहीं करनी चाहिए। मलिन वस्त्र-परिधान, मलिन केश और मलिन वेश धारण कर और दौर्गन्ध्ययुक्त रखकर अर्थात् मुख प्रक्षालनादि किये बिना जप नहीं करना चाहिए।

आलस्यं जृम्भणं निद्रां क्षुतं निष्ठीवनं भयम् ।
नीचाङ्गस्पर्शनं कोपं जपकाले विवर्जयेत् ।।

जपकाल में आलस्य, जम्हाई, निद्रा और टेढ़े ढंग से लेटनां, क्षुत् -पियास बोध, भय, क्रोध और नाभी के नीचे का कोई भी अंग स्पर्श नहीं करना चाहिए।

---

१. मन्त्र के छिन्नादि दोष की शान्ति का उपाय है- सेतु-निर्णय और मन्त्रशुद्धि का सप्त उपाय मेरे द्वारा रचित 'योगीगुरु' पुस्तक के मन्त्रकल्प में सविस्तार लिखित है, इसी कारण यहाँ फिर से उल्लेख नहीं किया गया। प्रयोजन होने पर उक्त पुस्तक देख लेना चाहिए।

T

इसप्रकार होने से फिर आचमन, अङ्गन्यासादि, प्राणयाम और सूर्य, अग्नि तथा ब्राह्मण-दर्शन करके साधक पूर्वावशिष्ट जप आरम्भ करें। यथा–

अथाचम्य च प्राप्तौ प्राणायामं षडङ्गकम् ।
कृत्वा सम्यक् जपेच्छेषं यद्वा सूर्यादिदर्शनम् ।।

मौनी और पवित्र होकर मन:संयम और मन्त्रार्थ चिन्तन-सहित अव्यग्रचित्त होकर जप करें। उष्णीष अथवा वर्म परिधान करके या नग्न, मुक्तके, संगीगणावृत होकर, अपवित्र हाथ से, अपवित्ररूप में, बात करते हुए कदापि जप न करें। बिना आसन के, गमन काल में, शयन काल में, भोजनकाल में, चिन्ताव्याकुलित चित्त से और क्रुद्ध, भ्रान्त अथवा क्षुधान्वित होकर साधक जप न करें। दोनों हाथों को ढँके बिना अथवा ढँके सिर से जप करना उचित नहीं है। पथ और अमङ्गलस्थान, अन्धकारावृत्त गृह, इन सब स्थानों में जप नहीं करना चाहिए। चर्मपादुका पहन कर अथवा शय्या पर बैठ कर जप करने से फल नहीं होता है। दोनों पाँवों को फैलाकर अथवा उत्कटासन में अथवा यज्ञकाष्ठ पाषाण और मिट्टी पर बैठकर जप नहीं करना चाहिए। जप के समय बिल्ली, कुत्ता, मुर्गा, बक, शूद्र, बानर, गदहा, इन सभी को देखने पर आचमन कर और स्पर्श करने से स्नान कर अवशिष्ट जप को समाप्त करना चाहिए। किन्तु गमन, अवस्थान, शयन, शुचि अथवा अशुचि अवस्था में मन्त्र स्मरण सहित जापकगण मानसजप का अभ्यास करें। सर्वदा, सभी स्थानों में अथवा सभी अवस्थाओं में मानस-पूजा की जा सकती है। उसमें कोई दोष नहीं है। यथा–

अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन्नपि ।
मन्त्रैकशरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत् ।।

जप-रहस्य और समर्पण-विधि

साधनाभिलाषी जापकगण को यदि मन्त्रजप करके फललाभ करने की अभिलाषा है, तब रीतिमत मन्त्रचैतन्य करके जप करें। मन्त्र में छिन्नादि नाना प्रकार दोष और मनुष्य का देह-मन सदा कलुषित रहता हैं, इस कारण शास्त्र में नानाविध शोधन-रहस्य उल्लिखित है। उसका यथापूर्वक सम्पादन न कर सकने से जप की फल प्राप्ति नहीं हो सकती। साधकगण इसलिए जप-रहस्य अवगत होकर जप करने की विधि देते हैं। जप-रहस्य सम्पादन पूर्वक यथारीति जप करके विधिपूर्वक जनसमर्पण करने पर जप पर उत्पन्न फल अवश्य प्राप्त होगा। जपरहस्य-सम्पादन के व्यतिरेक से जपफल नितान्त असम्भव है।

क्या शाक्त, क्या वैष्णव, क्या शैव– सभी को जप-रहस्य सम्पादन करना कर्तव्य है। कल्लुका, सेतु, महासेतु, करशोधन, मुख-शोधन इत्यादि अट्ठाइस प्रकार का जप-रहस्य क्रमान्वय से एक के बाद एक यथानियम सम्पादनपूर्वक जप के अन्त में विधिपूर्वक जप-समर्पण करना होगा। किन्तु दुःख का विषय है कि जप-रहस्य और जप समर्पण विधि प्रायः कोई नहीं जानता। हम जापक-गण के उपकारार्थ उसे लिपिबद्ध करते हैं। पाठकगणों में जो मन्त्रजप करते हैं, वे जपरहस्यों के सम्पादन में यदि समर्थ हैं और जप के अन्त में शेषोक्त प्रकार से जप समर्पण करते हैं तो उससे शीघ्र फललाभ और अनायास ही मन्त्र की सिद्धि होगी, इसमें संदेह नहीं है। जपरहस्य के नियम, यथा-

१. **शौच**- प्रथम आचमन। बाद में जल शुद्धि और आसनशुद्धि। बाद में गुरु, गणेश और इष्टदेवता को प्रणाम।

२. **कपाट भञ्जन**- हूँ मन्त्र का दशबार जप।

३. **कामिनी तत्त्व-** हृदय में क्रों मन्त्र का दशबार जप करके कामिनी का ध्यान करें। यथा-

सिंहस्कन्धसमारूढां रक्तवर्णां चतुर्भुजाम् ।
नानालङ्कारभूषाढ्यां रक्तवस्त्रविभूषिताम् ।
शंखचक्रधनुर्बाणविराजितकराम्बुजाम्।।

इस मन्त्र से उसका ध्यान-पूजा सम्पादित करे बाद में कं बीज दशबार जप करें।

४. **प्रफुल्ल-** लीं बीजमन्त्र का दशबार जप।

५. **प्राणायामादि-** प्राणायाम, भूतशुद्धि, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, अंगन्यास, तत्त्व-न्यास और व्यापक न्यास[१]।

६. **डाकिन्यादि मन्त्रन्यास-** तत्त्वमुद्राद्वारा मूलाधार में डां डाकिन्यै नमः, स्वाधिष्ठान में रां राकिन्यै नमः, मणिपूर में लां लाकिन्यै नमः, अनाहत में कां काकिन्यै नमः, विशुद्ध में शां शाकिन्यै नमः, आज्ञाचक्र में हां हाकिन्यै नमः एवम् सहस्रार में यां याकिन्यै नमः।

७. **मन्त्रशिखा-** निःश्वास रोक कर भावनाद्वारा कुण्डलिनी को एक बार सहस्रार में ले जावें और शीघ्र मूलाधार में लायें। इस प्रकार बार-बार करते-करते सुषुम्नापथ में विद्युत् के सदृश दीर्घाकार तेज दिखाई देगा।

८. **मन्त्रचैतन्य-** स्वीय बीजमन्त्र ईं बीज से सम्पुट (ईं 'मन्त्र' ईं) करके हदृय में सातबार जप करें।

---

१. इन सब क्रियाओं की प्रणाली अपने-अपने गुरूपदिष्ट पटल पर विवृत है। अनावश्यक विस्तार के भय से हमने इस स्थान पर पद्धतियों को उद्धृत नहीं किया है, तथा प्राणायाम और भूतशुद्धि की प्रणाली मेरे द्वारा रचित 'योगीगुरु' ग्रन्थ में द्रष्टव्य है।

९. **मन्त्रार्थ-भावना-** देवता का शरीर और मन्त्र अभिन्न है, यही चिन्तन करें।

१०. **निद्राभंग-** हृदय में ईं 'बीजमन्त्र' ईं यह मन्त्र दशबार जप करें।

११. **कल्लूका-** 'क्रीं हूँ स्त्रीं ह्रीं फट्' इस मन्त्र का सातबार जप करें।

१२. **महासेतु-** 'क्रीं' मन्त्र का कण्ठ में सातबार जप करें।

१३. **सेतु-** 'ऐं हूँ ऐं' मन्त्र का हृदय में सात बार जप करें।

१४. **मुखशोधन-** 'क्रीं क्रीं क्रीं ओं ओं ओं क्रीं क्रीं क्रीं' इस मन्त्र का मुख में सातबार जप करें।

१५. **जिह्वाशुद्धि-** 'मत्स्यमुद्रा से आच्छादित कर हँसौः' इस मन्त्र का सातबार जप करें।

१६. **करशोधन-** 'क्री ईं क्रीं करमले अस्त्राय फट्' इस मन्त्र का सातबार जप करें।

१७. **योनिमुद्रा-** मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त अधोमुख त्रिकोण और ब्रह्मरन्ध्र से मूलधार पर्यन्त ऊर्ध्वमुख त्रिकोण अर्थात् इस रूप में षट्कोण रूप में भावना कर बाद में मंत्र का दशबार जप करें।

१८. **निर्वाण-** ॐ अं 'बीजमंत्र' ऐं एवम् ऐं 'बीजमन्त्र' अं ॐ इस रूप में अनुलोम विलोम नाभि देश में एक बार जप करें।

१९. **प्राणतत्त्व-** अनुस्वारयुक्त प्रत्येक मातृकावर्ण द्वारा बीजमन्त्र सम्पुट करके जप करें। अथवा असमर्थपक्ष में अं कं चं टं तं पं यं शं सम्पुट करके मंत्र जप करें।

२०. **प्राणयोग-** ह्रीं 'बीजमन्त्र' ह्रीं इस मंत्र का हृदय में सातबार जप करें।

२१. **दीपनी-** ॐ बीजमन्त्र ॐ इस मंत्र को हदृय में सातबार जप करें।

२२. **अशौचभंग-**हृदय में ॐ इस मंत्र को सातबार जप करें।

२३. **अमृतयोग-** ॐ उँ ह्रीं इस मंत्र का हृदय में सातबार जप

T

करें।

२४. **सप्तच्छदा-** क्रीं क्लीं ह्रीं हूँ ॐ औँ मंत्र का हृदय में दशबार जप करें।

२५. **मन्त्रचिन्ता-** मंत्रस्थान पर मंत्र चिन्तन करें। अर्थात् रात्रि में प्रथम दसदंड के अन्दर निष्कलस्थान (हृदय में) में मंत्र का चिन्तन करें। परवर्ती दस दण्डाभ्यन्तर में कलाहीन स्थान में (बिन्दुस्थान में) अर्थात् मनश्चक्र के ऊपर मंत्र का चिन्तन करना होगा। उसके बाद दसदण्डाभ्यन्तर में कलातीत स्थान में साधक मंत्र का ध्यान करें। दिवस के प्रथम दशदण्ड में हृदय में और तृतीय दशदण्ड के अन्दर मनश्चक्र में मंत्र का चिन्तन करें। दिवस अथवा रात्रिकाल में जिस समय जप करने में साधक प्रवृत्त होगा, उसी समय ही सप्तच्छदा के बाद समयानुसार निर्दिष्ट स्थान में मंत्र का चिंतन करें।

२६. **उत्कीलन-** देवता की गायत्री का दशबार जप करें।

२७. **दृष्टिसेतु-** नासाग्र में अथवा भ्रूमध्य में दृष्टि रखकर दशबार प्रणव का जप करें।

२८. **जपारम्भ-** सहस्रार में गुरुध्यान, जिह्वामूल में मन्त्रवर्ण का ध्यान और हृदय में इष्टदेवता का ध्यान करके बाद में गुरुमूर्ति को तेजोमय चिन्तन करें। बाद में इन तीनों तेजों की एकता स्थापित कर, इस तेज प्रभाव में अपने को तेजोमय और अभिन्न रूप में समझें। इसके बाद कामकला का ध्यान कर अपने शरीर है नहीं अर्थात् कामकला के रूप में त्रिबिन्दु को ही अपना शरीर समझकर जप आरम्भ कर दें।[1]

---

१. कामकलातत्त्व 'योगीगुरु' ग्रन्थ में लिखा गया है।

शाक्त, शैव, वैष्णव सभी को इसी प्रकार से जपरहस्य का सम्पादन करना होगा। यह जप रहस्य श्रीमद्दक्षिणाकालिका देवी का है। अन्यान्य देवताओं का जप रहस्य प्राय: इसी प्रकार का ही है; केवल कल्लूका, सेतु, महासेतु, मुखशोधन और करशोधन, देवताभेद से पृथक्-पृथक् होगा। अपने-अपने इष्ट देवता के ये कई एक विषय पद्धति ग्रन्थादि में देख लें। प्राणायाम और ११/१२/ १३/२२ संख्या के विषय जप के आदि और अन्त में करना होता है, उसके अतिरिक्त और सभी को जप के आदि में करना होगा।

उपरोक्त अट्ठाइस प्रकार के जपरहस्य को एक के बाद एक को सम्पादित कर हृदय में ईष्टमूर्ति के पाद-पद्म को लक्ष्य करके जपका आरम्भ करें। जप के नियम और कौशलादि इससे पहले कहे गये हैं। प्रोक्त प्रकार से यथासाध्य जप करके फिर कल्लूका, महासेतु, अशौचभंग और प्राणायाम कर यथाविधि जप करें।

जपरहस्य सम्पादन न करने पर जिस प्रकार जपफल प्राप्त नहीं हो पाता हैं, उसी प्रकार विधिपूर्वक जप समर्पण न करने पर जपजनित तेज कुछ भी नहीं रहता है। जप के अन्त में जिस प्रकार सभी जप का समर्पण करते हैं, उससे जपजनित तेज साधक में कुछ भी नहीं रहता है। यदि जपजनित तेज नहीं रहता, तब जप-पुरश्चरणादि करने का प्रयोजन क्या है? अभिज्ञ तान्त्रिक साधकगण जिस प्रणाली से जप समर्पण करते हैं, हम उसी का विवरण देते हैं।

जपसमाप्त होने पर प्रथम **'ॐ रक्तवर्णां चतुर्भुजां सिंहारूढ़ां शङ्ख-चक्र-धनुर्बाणकरां कामिनीं'** इस मंत्र से कामिनी का ध्यान करके उनको बीजरूपा समझें। बाद में गुरुदत्त बीजमन्त्र में जो कोई एक वर्ण रहेगा, वह इस कं बीज के गर्भ के अन्दर है चिन्तन कर उस बीज के प्रत्येक वर्ण का अनुस्वार (ं) देकर अनुलोम विलोम

T

क्रम से साधक दसबार जप करें। अर्थात् इस प्रकार जिसका जो बीज होगा, उसके प्रत्येक वर्ण में अनुस्वार युक्त करके इस प्रकार अनुलोम-विलोम क्रम से जप करें। अर्थात् यदि क्रीं बीज हो तो कं दशबार, रं दशबार और ईं दशबार तथा ईं दशबार रं दशबार और कं दशबार जप करें। उसी प्रकार जिसका जो बीज होगा उसी के प्रत्येक वर्ण में अनुस्वार युक्त करके इसी प्रकार अनुलोम-विलोम क्रम से जप करें। बाद में यह कामिनीरूपा कं बीज के गर्भ में ही ज्योतिस्तत्त्व (ह्रीं) मन्त्र का जप करके इस कामिनी और ज्योतिस्तत्त्व एकीभूत हुआ है चिन्तन करें। यह ज्योतिस्तत्त्व जीवात्मा से पृथक् नहीं है। बाद में यह एकीभूत ज्योतिस्वरूपा कामिनी को सहस्रार में स्थापनापूर्वक बाह्य-जप समर्पण करें। अर्थात् उक्तरूप क्रिया द्वारा तेजोरूप जपफल कामिनी के गर्भ में जीवात्मा के निकट स्थापित करके बाद में देवता के हाथों में-

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु में देव त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिते ।।

इस मन्त्र का पाठ करके जप का समर्पण करें। देवी मंत्र को जप-विसर्जन में गोप्ता स्थल पर गोप्त्री और देव-स्थान पर देवि-पाठ करें। इस प्रकार करके जप-समर्पण करने से साधक के जपजनित तेज की कुछमात्रा की भी हानि नहीं होती है। इस कारण शाक्त, बैष्णव सभी का जप-समर्पण करना कर्त्तव्य है। जो मन्त्रजप कर सिद्धिलाभ करना चाहते हैं, वे जपरहस्य सम्पादन और जप के अन्त में जपसमर्पण करें, नहीं तो मन्त्रजप के फललाभ की आशा नहीं है और भी नाना प्रकार की प्रणालियों से जप करके मन्त्रसिद्धि की जा सकती है, हमने और भी कई प्रणालियाँ आगे लिपिबद्ध की हैं।

T

मन्त्रार्थ और मन्त्रचैतन्य

मन्त्रजप से सिद्धि-लाभ करने के लिए मन्त्रचैतन्य करके और मन्त्रार्थ से परिज्ञात होकर यथाविधि जप करना चाहिए। मन्त्रसिद्धि लाभ करने के लिए मन्त्र जिस अक्षर में जिस भाव में, जिस छन्दोबद्ध में ग्रथित हैं, उनका उसी प्रकार जप करना होता है। उसके होने से मन्त्र से सिद्धिलाभ किया जा सकता है। तन्त्र में कहा गया है कि-

मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः ।
न सिध्यन्ति वरारोहे कल्पकोटिशतैरपि ।।

-कुलार्णवतन्त्र

-मन्त्रजपकाल में मन, परमशिव, शक्ति एवं वायु पृथक्-पृथक् स्थान में रहने पर अर्थात् उनका एकत्र संयोग न होने पर सौ कल्प में भी मन्त्रसिद्धि नहीं हो सकती है।

यह सब तथ्य सम्यक् रूप से न जानकर कुछ लोग कहते हैं कि 'मन्त्रजप करने से फल नहीं होता है'– किन्तु अपनी त्रुटि से फल नहीं होता है, इस बात को कोई समझना नहीं चाहता है। इसको देखकर जगद्गुरु योगेश्वर कहते हैं-

अन्धकारगृहे यद्वन्न किञ्चित् प्रतिभासते ।
दीपनीरहितो मन्त्रस्तथैव परिकीर्तितः ।।

–सरस्वतीतन्त्र

आलोकविहीन अन्धकार गृह में जिस प्रकार कुछ भी नहीं देखा जा सकता है, उसी प्रकार दीपनी-हीन मन्त्रजप में कोई फल नहीं होता है। अन्य तन्त्रों में कहा गया है-

मणिपुरे सदा चिन्त्यं मन्त्राणां प्राणरूपके।

अर्थात् मन्त्र के प्राणरूप मणिपुर-चक्र में सर्वदा चिन्तन करें। वास्तविक मन्त्र का प्राण मणिपुर में है, उसको जान कर क्रिया नहीं

करने से मन्त्र कभी भी चैतन्य नहीं होगा; इसलिए प्राण-हीन देह सदृश अचैतन्य मन्त्र जप करने से कोई फल नहीं होता है। किन्तु यह है कि मन्त्र का प्राण मणिपुर में किस प्रकार है, उसको कोई गुरुदेव समझा सकते हैं क्या? मैं जानता हूँ कि गृहस्थों में इस प्रकार का एक भी व्यक्ति नहीं है; योगियों और संन्यासियों में भी अल्प हैं, जो कि उस संकेत और क्रियानुष्ठान से परिचित है, तब दिखावटी माला-झोला लेकर केवल बाह्याडम्बर और अनुष्ठान करने से किस प्रकार फल पायेंगे? किन्तु कितने गुरुदीक्षा के साथ शिष्य को मन्त्रचैतन्य के उपायादि की शिक्षा देते हैं ? फिर रुद्रयामल में कहा गया है कि जो व्यक्ति मन्त्रार्थ नहीं जानता, उसे सिद्धि किस प्रकार मिलेगी? जिस प्रकार पशुभावहीन व्यक्ति पशुभाव का फल भोग नहीं सकता, उसी प्रकार पशुभावहीन मन्त्रार्थानभिज्ञ व्यक्ति जपफल प्राप्त नहीं करता है। मन्त्रार्थ का अर्थ शब्दार्थ नहीं है, मन्त्र के भावार्थ की उपलब्धि करनी चाहिए। इसलिए वह साधनासापेक्ष है। मन्त्र और देवता का अभेदज्ञान ही मन्त्रार्थ है। यथा–

मन्त्रार्थ-देवतारूप-चिन्तनं परमेश्वरी ।
वाच्यवाचकभावेन अभेदो मन्त्रदेवयोः ।।

–रुद्रयामल

इष्टदेवता की मूर्ति की चिन्ता करने पर अर्थात् देवता का शरीर और मन्त्र अभिन्न है, इस प्रकार विचार करने से मन्त्रार्थ की भावना होती है। देवता का रूपचिन्तन ही मन्त्रार्थ है। मन्त्र और देवता वच्यवाचकरूप में अभिन्न है। देवता मन्त्रवाच्य और मन्त्र देवता का वाचक है, इसलिए वाच्य विज्ञात होने से वाचक प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार मन्त्र के अर्थ परिज्ञात होकर जप न करने से मन्त्र की सिद्धि नहीं होती अतएव सभी को अपने इष्ट देवता का और अपने-अपने

T

मन्त्र का अर्थज्ञान होना आवश्यक है। शास्त्र में मन्त्रार्थ ज्ञान का एक उत्कृष्ट उपाय है। उस उपाय से सभी को सभी प्रकार के मन्त्रार्थ का परिज्ञान हो सकता है। उसके द्वारा मन्त्र का अर्थ अपने से ही साधक के हृदय में प्रतिफलित होता है। नीचे वह क्रम लिखित है।

गुरुदत्त इष्टमन्त्र को प्रथम चिन्तन करें; मूलाधारचक्र में कुण्डलिनीशक्तिरूप में रहती है। इनकी कान्ति अत्यन्त निर्मल स्फटिक-सदृश शुभ्रवर्ण और उसी से मन्त्र की अक्षरश्रेणी उस भेद में स्थित है। अर्द्ध-मुहूर्त इस रूप-चिन्तन करके बाद में चिन्तन करेगा कि जीव मन के साथ स्वाधिष्ठानचक्र में गया है। इस चक्र में बन्धूककुसुमारुण में इष्टदेवता और मन्त्राक्षरश्रेणी एक होकर स्थित हैं। मुहूर्तार्द्ध इस प्रकार चिन्तन करने के पश्चात् मणिचक्रपुर में भी स्वच्छ-स्फटिक सदृश शुभ्रवर्ण एवं अभिन्न भावना करें। इसके बाद विचार करें– देवता और मन्त्र सहस्त्र-दल-कमल में स्थित हैं; उसका वर्ण स्फटिकापेक्षा सुशुभ्र है। इसके बाद हृत्पद्म में जीव का गमन होता है; वहाँ भी ध्यान-योग से चिंता करें कि उसका वर्ण मरकत-मणिसम-प्रभ श्यामवर्ण है। उसके बाद विशुद्धचक्र में इस प्रकार हरिद्वर्ण ध्यान करके साधक आज्ञाचक्र में जायेगा। वहाँ पर मन्त्रमय इष्टदेवता साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी और वर्ण-चतुष्टानुरञ्जिता है। इस प्रकार ध्यान करते-करते एक अनिर्वाच्यरूप अथवा भाव आविर्भूत होगा। वह अनिर्वाच्यरूप अथवा भाव जपमन्त्र का यथार्थ अर्थ है।

इस प्रकार मन्त्रार्थ का निर्णय कर बाद में मन्त्रचैतन्य करावें। चैतन्यसहित मन्त्र सर्वसिद्धिप्रद है। जो व्यक्ति चैतन्यरहित मन्त्र जप करता है, उसके फल की आशा निष्फल होती है। बाद में प्रत्यवाय-भागी होना पड़ता है। यह हमारी मनगढ़न्त बात नहीं है। शास्त्र में ही कहा गया है-

T

चैतन्यरहिताः मन्त्राः प्रोक्तवर्णास्तु केवलाः ।
फलं नैव प्रयच्छन्ति लक्षकोटिशतैरपि ।।

-भूतशुद्धितन्त्र

अचैतन्य मन्त्र केवल वर्णमात्र है; इसलिये शत-लक्ष-कोटि जप भी फल प्रदान में समर्थ नहीं होता है।

अतएव जापक को जप्यमन्त्र का चैतन्य करा देना चाहिये। मन्त्र समूह वर्ण नहीं है; नादरूपिणी शब्दब्रह्मदेवी ही मन्त्रवाद की मूलात्मिका शक्ति हैं।[1] यह शब्द जिस कार्य के लिये जिस समूह में एकत्र ग्रथित होकर योगबलशाली ऋषियों के हृदय से उत्थित हुआ था, वही मन्त्ररूप में ग्रथित होकर रहा है, अतएव मन्त्रशब्द एक अलौकिक शक्ति और वीर्यशाली है; इसमें सन्देह क्या है? मन्त्रशब्द का अर्थ यह है कि-

मननात् तारयेत् यस्तु स मन्त्रः परिकीर्तितः।।

अर्थात् जिसको मनमें स्मरण मात्रसे ही जीव भवबन्धन से मुक्त होता है, वही मन्त्र नाम से पुकारा गया है। जिस प्रकार क्षुद्र सर्षप परिमित अश्वत्थबीज के अन्दर बृहत्वृक्ष कारण के रूप में रहता है, प्रकृति की सहायता से उसी कारण से वृक्ष की उत्पत्ति होती है, उस प्रकार देव-देवी के बीजमन्त्रमें उनकी सूक्ष्मशक्ति निहित रहती है; सुनने में वर्णमात्र, किन्तु क्रियाद्वारा उसकी शक्ति को जगा देने पर जिस देवता का जो बीज है, उसी देवता की शक्ति कार्य करेगी, सन्देह नहीं। योगयुक्त हृदय के आन्तरिक स्फूरण में मन्त्र का प्रभाव प्रतिष्ठित और विकीरण होता है। अतएव मन्त्र को चैतन्य करना-इस

---

१. मेरे द्वारा प्रणीत "योगीगुरु" ग्रन्थ में मन्त्रतत्त्व विशद् करके लिखा गया है। उस पुस्तक के मन्त्र-कल्प को देखें।

T

बात का अर्थ यह है कि मन्त्र को चिच्छक्ति से समारूढ़ करना। अर्थात् वर्णाभाव अथवा अक्षरभाव दूरीकृत करके मन्त्र को चेतनभाव में परिणमित करना। मन्त्र चित्शक्ति-समारूढ़ होने से शास्त्र में उसको सचेतन और सजीव मन्त्र कहा जाता है। अचैतन्य मन्त्र का नाम लुप्तबीजमन्त्र है। लुप्तबीजमन्त्र जप से कोई फल नहीं होंता है। यथा-

लुप्तबीजाश्च ये मन्त्रा न दास्यन्ति फलं प्रिये।

मन्त्र-चैतन्य करना अतिशय कठिन साधनासापेक्ष है। मन्त्र चैतन्य करने का संक्षिप्त और सांकेतिक कार्य अनेक हैं, विशेषत: वे क्रियामय है। गुरुजीके निकट संकेत और क्रिया से अवगत होकर मन्त्र चैतन्य करने से शीघ्र फल प्राप्त हो सकता है। शास्त्रमें मन्त्रचैतन्य करने की बहुविध प्रणालियाँ हैं, हम उससे कुछ नीचे लिपिबद्ध करते हैं।

मन ही मन एकाग्ररूप में चिन्तन करें कि वर्ण-समूह सूक्ष्म अनाहत शब्द में रहता है ओर चित्शक्ति की प्रेरणा से सुषुम्नापथ से कण्ठदेश से अतिवाहित होता है। उसके बाद विचार करें कि मन्त्र के जो सब वर्ण हैं, ये सब वर्ण चैतन्य के साथ एक होकर शिरस्थ सहस्रारपद्म में अवस्थान कर रहे हैं। सहस्रदलपद्म में चैतन्य का प्रकाश और उससे मन्त्राक्षर के चैतन्यरूप की अवस्थिति है। इस प्रकार चिन्तन के बाद मणिपुर पद्म को उसी प्रकार चैतन्याधिष्ठित मन्त्र के प्राणरूप में चिन्तन करें।

सहस्राररूप शिवपुर में चतुर्वेदात्मक शाखाचतुष्टययुक्त पीत-रक्त-श्वेत-कृष्ण और हरिद्वर्ण अम्लान-पुष्प-परिशोभित, सुमधुर फलान्वित, भ्रमर और कोकिलनिनादित कल्पवृक्ष का और उसके अधोभाग में रत्नवेदिका और उसके ऊपर पुष्पशय्यान्वित मनोहर पर्यङ्क का ध्यान कर इस पर्यङ्क में कुलकुण्डलिनीसमन्वित महादेव का ध्यान करें और उसके बाद त्रिवर्गदायिनी इष्टदेवता का मन्त्र जप करें।

सूर्य-मण्डल लक्ष्य करके उसके बीच इष्टमन्त्र का अवस्थान-इस प्रकार ध्यान करके और मन-ही-मन उसी मन्त्र का जप करें और समझें कि गुरु साक्षात् शिवरूपिणी-शक्ति उस अभेद में विराजमान हैं, इस प्रकार ध्यान करने पर भी चैतन्य का आवेश हो सकता है।

चित्शक्ति अक्षर उच्चारण का आदि कारण है। चित्शक्ति में ही सभी वर्ण आरूढ़ रहते हैं, अतएव मन्त्र जब षट्चक्रशोधन द्वारा (पूर्वोक्त मन्त्रार्थनिर्णय के समान) अक्षरभाव परित्याग करके चैतन्य पर आरूढ़ होता है अर्थात् चेतनाशक्ति से समन्वित होता है, तब मन्त्र-चैतन्य होकर रहता है।

इस प्रकार चारों क्रियाओं में से जिस किसी एक का अवलम्बनपूर्वक मन्त्र और चित्शक्ति की अभेद भावना करते-करते उपयुक्त काल में मन्त्रचैतन्य का आवेश होता है। जिस चिन्ता की बात कही गयी, यह एकाग्र ध्यान अर्थात् विषयादिसे मन को आहृत करके तैलधारासदृश अविच्छिन्न ध्यान है। उस प्रकार ध्यान करते-करते आनन्दाश्रुपात, रोमाञ्च और निद्रावेश होता है। इसको ही मन्त्रचैतन्य कहा जाता है। मन्त्रचैतन्य होने पर साधक का हृदय नित्यानन्दपूर्ण होता है और देवदर्शन हो जाता है। विष्णुमन्त्र, शक्तिमन्त्र और शिवमन्त्र जपसे मन्त्रार्थज्ञान और मन्त्रचैतन्य का विशेष आवश्यक समझें। यह अपने मन से नहीं कहते हैं। शास्त्र में कहा गया है-

मूलमंत्रं प्राणबुद्ध्या सुषुम्नामूलदेशके।
मन्त्रार्थं तस्य चैतन्यं जीवं ध्यात्वा पुनः पुनः।।

-गौतमीयतन्त्र

मूलमन्त्र को मूलदेश में जीवरूप में समझकर मन्त्रार्थ और मन्त्रचैतन्य परिज्ञान पूर्वक साधक जप करें।

T

योनिमुद्रायोग से जप

मन्त्रार्थ और मन्त्रचैतन्य से परिचित होकर योनिमुद्रायोग से जप करने से अति सत्वर मन्त्र-सिद्धि हो जाती है। मन्त्रार्थ, मन्त्रचैतन्य और योनिमुद्रा से अवगत न होकर जपादि करने से पूर्णफल की प्रप्ति नहीं होती है। यह बात तन्त्रशास्त्र में बार-बार उक्त है। यथा-

मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः।
शतकोटिजपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते।।

-सरस्वतीतन्त्र

मन्त्रार्थ, मन्त्रचैतन्य, योनिमुद्रा न जानकर जप करने पर सौ करोड़ जप करने पर भी मन्त्रसिद्धि नहीं होती है। अतएव मन्त्रसिद्धि कामी व्यक्ति मन्त्रचैतन्य कर मन्त्रार्थ से परिचित होकर योनिमुद्रा बन्धन कर जप करें। मन्त्रार्थ और मन्त्रचैतन्य की बात पहले ही कही गयी है, इस समय योनिमुद्रा का विषय विवृत किया जाय।

पशुभाव में स्थित जो मन्त्र है, वह केवल वर्णमात्र है, अतएव ये सब मन्त्र सुषुम्ना ध्वनि से उच्चारित कर जप करने से प्रभुत्व की प्राप्ति होती है। कुलार्णवतन्त्र में कथित है कि जपकाल में मन, परमशिवशक्ति और वायु पृथक्-पृथक् स्थान पर रहने से अर्थात् इनके एकत्र संयोग नहीं होने पर सौ करोड़ कल्प में भी मन्त्रसिद्धि नहीं हो सकती है। मन, परमशिव, शक्ति और वायु को ऐकात्म्य सम्पन्न करने के लिये योनिमुद्रा का प्रयोजन है।

मूलाधारपद्म के कन्दमध्यमें त्रिकोण, उसके बीच सुलक्षण कामबीज, उसके बीच कामबीजोद्भूत मनोहर स्वयंभूलिंग, उसके ऊपर वाले भाग में हंसाश्रिता चित्कला, उसके बीच स्वयम्भूलिङ्ग-वेष्ठिता तेजोरूपा चिन्मयी कुण्डलिनीशक्ति का ध्यान करें। अनन्तर आधारादि षट्चक्र भेद करके तेजोरूपा कुण्डलिनी देवी का "हंस"

T

मन्त्र के द्वारा परिचालित ब्रह्मरन्ध्रमें लाते हुए तन्त्र में स्थित सदाशिव के सहित क्षणमात्र उपगता चिन्तन करके उक्त शिव और कुण्डलिनी संयोगोत्पन्न लाक्षारससदृश पाटलवर्ण अमृतधारा से अपने को प्लावित और आनन्दमय समझें। उसके बाद पूर्वोक्त पथ से कुण्डलिनीको पुनः मूलाधार में लावें। अनन्तर ब्रह्मनाड़ीमध्यगता मृणालसूत्रसन्निभ चित्राणी नाड़ी ग्रथित अक्षरमाला का चिन्तन करके मन्त्रद्वारा सविन्दु वर्ण और सविन्दु वर्णद्वारा मन्त्र अन्तरित करके अनुलोम-विलोम क्रमसे जप करें। उक्त प्रकार से पचास मातृका वर्णमें सौ बार जप करें। जप के समय 'क्ष'काररूप मेरु को कभी लङ्घन न करें। इस प्रकार योनिमुद्रा बन्धन कर जप करना चाहिये।[१]

योनिमुद्रा-बन्धन प्राणायाम-मात्रायोग से हीं करना होगा। योनिमुद्रा एक प्रकार का योग है। अभ्यास के द्वारा उसमें सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। सद्गुरु के निकट देख लेने पर और उसके बाद ही उसका अभ्यास करना अच्छा है। नहीं तो उल्लिखित शास्त्रोक्त अंशमात्र पाठ कर अनभिज्ञ व्यक्ति कभी भी वास्तविक रूप में उस अनुष्ठन में सक्षम नहीं होगा। हम जापक और साधकों की सुविधा के लिये योनिमुद्रायोग में जप की प्रणाली को अच्छे ढंग से नीचे विवरण देते हैं। यह गुरूपदिष्ट एवं बहुसाधकों के द्वारा परीक्षित भी है। जप की इस प्रकार की उत्कृष्ट प्रणाली हम और नहीं जानते हैं। विधानानुसार अनुष्ठान कर सकने पर अति अल्प समय में ही इसमें

---

१. मेरे द्वारा प्रणीत "योगीगुरु" पुस्तक में षट्चक्रादि का विवरण और ज्ञानीगुरु पुस्तक में योनिमुद्रा-प्रणाली को विशद कर लिखा गया है। साधकों की प्राथमिक शिक्षा के लिये "योगीगुरु" पुस्तक का पाठ करना कर्त्तव्य है। नहीं तो इस पुस्तकोक्त अनेक विषयों को समझने में कठिनाई होगी।

T

सफलता प्राप्त की जा सकती है। योनिमुद्रा योग में जप की प्रणाली इस प्रकार है-

साधक साधनोपयोगी स्थान में कम्बल, मृगचर्म प्रभृति आसन पर पूर्व अथवा उत्तर दिशा में मुख करके उपविष्ट होकर धूपादि के गंध से गृह पूर्ण और अपने भी आनन्दित होगा। इसके बाद अपने-अपने सुविधानुरूप अभ्यस्त किसी आसन पर स्थिररूप में सीधे उपवेशन कर प्रथमत: ब्रह्मरन्ध्र के शतदलपद्म में गुरुदेव का ध्यान, पूजा, प्रणाम और प्रार्थना करें। बाद में पञ्चप्राण, पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि– इन सप्तदश के आधारस्वरूप जीवात्मा को मूलाधारचक्रस्थित कुण्डलिनीसहित एकीभूत चिंतन करें। मूलाधारपद्म और कुण्डलिनीशक्ति को मानसनेत्र से दर्शन करते हुए "हूँ" इस कूर्च्चबीज उच्चारण पूर्वक मूलाधार में चालित करते-करते चिन्तन करें कि दोनों नासिका छिद्र से धीरे-धीरे वायु आकर्षित कर मूलाधारस्थित शक्तिमण्डलान्तर्गत कुण्डलिनी की चारों ओर की विद्यमान कामाग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है। यह अग्नि समुद्दीपित होने पर कुण्डलिनी जाग जायेगी। तब 'हँस' मन्त्र उच्चारण पूर्वक गुह्यदेश आकुञ्चित कर कुम्भक द्वारा वायुरोध करने से कुण्डलिनी उर्ध्व-गमनोन्मुखी होगी। उसी समय कुण्डलिनी-शक्ति को महातेजोमयी और मन्त्राक्षरों को उसमें ग्रथित समझें। उसी समय कुण्डलिनी एक मुख स्वाधिष्ठान में रखकर दूसरा मुख द्वारा दक्षिणावर्त्त में मूलाधारपद्म के चतुर्द्दल में चार बार धीरे-धीरे जप करेगी एवं साथ-साथ आधारपद्म स्थित समस्त देव-देवी, मातृकावर्ण और वृत्तियाँ ग्रास करेगी अर्थात् वे उस (कुण्डलिनी-शक्ति) के शरीर में लीन हो जायेंगी। तब पृथ्वीबीज "लं" मुख में करके कुण्डलिनी **स्वाधिष्ठान** में उठेगी और मूलाधारपद्म अधोमुख और बन्द होकर म्लान हो जायेगा।

T

साधक को इस स्थान पर एक बात ध्यान में रखनी होगी; पद्म समूह भावना के समय ऊर्ध्वमुख और विकसित होते हैं। कुण्डलिनी चैतन्य लाभ करके जब जिस पद्म में जायेगी, उसी समय वही पद्म विकसित होगा। किन्तु जब जो पद्म त्याग करेगी तब उसी पद्म मूलाधार के सदृश अधोमुख, बन्द और म्लान हो जायेगा। और इन प्रणालियों की भावना द्वारा सुन्दररूप में अभ्यस्त होने पर जब कुण्डलिनी उठेगी, तब साधक स्पष्टरूप में अनुभव करेंगे और देख सकेंगे। क्योंकि वह जहाँ तक उठेगी वहाँ तक मेरुदण्ड के भीतर सिर-सिर करेगी। रोमाञ्च होगा और साधक के मन में जप के आनन्द का अनुभव होगा।

मूलाधारपद्म को परित्याग कर कुण्डलिनी स्वाधिष्ठान पद्म में आकर ही पूर्वदिशा में मुख करके मणिपुर में उठेगी और दूसरे मुख द्वारा स्वाधिष्ठानपद्म के षट्दल में दक्षिणावर्त्त में छः बार (ताल-ताल में) धीरे-धीरे जप करेगी और साथ-साथ स्वाधिष्ठानपद्मस्थित समस्त देव-देवी, मातृकावर्ण वृत्तियों को ग्रास करेगी। "लं" बीज जल में लीन हो जायेगा। तब "वं" इस वरुणबीज को मुख में रखकर कुण्डलिनी **मणिपुर** में उठेगी।

बाद में कुण्डलिनी मणिपुर आकर पूर्वमुख अनाहतपद्म में उत्तोलन करेगी और दूसरे मुखद्वारा मणिपुरपद्म के दशदल में दक्षिणावर्त्त में दशबार धीरे-धीरे जप करें और साथ-साथ मणिपुर पद्म में स्थित समस्त देव-देवी, मातृकावर्ण और वृत्तियों को ग्रास करेगी। "बं" बीज अग्निमण्डल में लीन होगा। तब "रं" यह वह्निबीज मुख में रख कर **अनाहत** में उठेगी।

इसके बाद कुण्डलिनी अनाहतपद्म में आकर पूर्वमुख विशुद्धपद्म में उत्तोलन करके मुखद्वारा अनाहतपद्म के द्वादश दल में

दक्षिणावर्त्त में धीरे-धीरे बारह बार जप करेगी और साथ-साथ अनाहतपद्म स्थित समस्त देवदेवी, मातृकावर्ण और वृत्तियाँ ग्रास करेगी। रं बीज वायुमण्डल में लीन हो जायेगा। तब 'यं' इस वायु बीज को मुख में रखकर कुण्डलिनी **विशुद्धपद्म** में उठेगी।

इसके बाद विशुद्धपद्म में आकर पूर्वमुख आज्ञाचक्र में उत्तोलन करके दूसरे मुख द्वारा विशुद्धपद्म के षोडशदल में दक्षिणावर्त में धीरे-धीरे सोलह बार जप करेगी और साथ-साथ विशुद्धपद्मस्थित समस्त देव-देवी, मातृकावर्ण, सप्तस्वर और वृत्तियाँ ग्रास करेगी; यं बीज आकाश मण्डल में लीन हो जायेगा। तब "हं" यहआकाश बीज मुख में रख कर कुण्डलिनी **आज्ञाचक्र** में उठेगी।

इसके बाद कुण्डलिनी आज्ञाचक्र में आकर पूर्वमुख निरालम्बपुर में उत्तोलन करके दूसरे मुखद्वारा दक्षिणावर्त आज्ञाचक्र के दो दलों में धीरे-धीरे दो बार जप करेगी और साथ-साथ आज्ञापद्मस्थ सभी देवता मातृकावर्ण और गुणों को लीन करेगी। "हं" बीज मनश्चक्र में लय प्राप्त होगा। मन बुद्धितत्त्व में, बुद्धि प्रकृति में और प्रकृति कुण्डलिनीशक्ति के शरीर में लय हो जायेगी।

तब कुण्डलिनी सुषुम्नामुख में नीचे कपाटस्वरूप अर्द्धचन्द्राकार मण्डल भेद करके जितनी ही उठती रहेगी, उतना ही क्रम-क्रम से नाद, बिन्दु, हकारार्द्ध और निरालम्बपुरी ग्रास कर लेगी अर्थात् वह सभी कुण्डलिनी के शरीरमें लीन हो जायेगी। इस अर्द्धचन्द्राकार कपाट का भेदन होने से ही कुण्डलिनी स्वयं ऊपर उठकर ब्रह्मरन्ध्र स्थित **सहस्त्रदलकमल** में परमपुरुष के सहित संयुक्त होगी।

आद्याशक्ति कुलकुण्डलिनी इस प्रकार स्थूलभूत से प्रकृति पर्यन्त चौबीसतत्त्व ग्रास करके शिर में– सहस्रार में उठकर परमपुरुष के सहित संयुक्त और एकीभूत हो जयेगी। तब प्रकृति-पुरुष के साथ

सामरस्यसम्भूत अमृतधारा द्वारा क्षुद्र ब्रह्माण्डरूप शरीर प्लावित हो सकेगा। उसी समय साधक समस्त जगत् विस्मृत और बाह्यज्ञानशून्य होकर किस प्रकार अनिर्वचनीय अभूतपूर्व अपार आनन्द में निमग्न होगा, उसे लिखकर प्रकाश करना साध्य नहीं है। वह आनन्द अनुभव के सिवाय मुख से व्यक्त करके उसे समझाया नहीं जा सकता। वह अव्यक्त अपूर्वभाव को व्यक्त करने के लिये योग्य भाषा नहीं है। वह अनिर्देश्य अननुभूतभाव स्वयंवेद्य है। साधारण को 'कुमारी के स्वामी-सहवास-सुख-उपलब्धि सदृश' उस आनन्द को समझाने की चेष्टा करना विडम्बनामात्र है।

जो स्थूलमूर्ति के उपासक हैं, उनमें जो शाक्त हैं, वे कुलकुण्डलिनी को सहस्रार में उत्थापित करके उसको गुरूपदिष्ट इष्टदेवता अर्थात् जो जिस देवी के उपासक हैं, वे कुण्डलिनी शक्ति को उसी देवी और परमपुरुष को तन्निर्दिष्ट भैरव कल्पना करके दोनों के एकत्रित सामरस्य सम्भोग करेंगे और जो वैष्णव हैं, वे कभी कुण्डलिनी पराप्रकृतिरूपिणी राधा और सहस्रारस्थित परमपुरुष को श्रीकृष्ण के रूप में कल्पित करके दोनों का सामरस्य उपभोग करेंगे।[१]

सहस्रदलपद्म में कुण्डलिनी को महातेजोमयी अमृतानन्दमूर्ति के रूप से चिन्तन करें। उसके बाद सुधासमुद्र में निमज्जित और रसाप्लुत कर परमपुरुष के साथ सामरस्य सम्भोगपूर्वक फिर कुण्डलिनी को यथास्थान पर लाना होगा। इसी समय उनको महामृतरूपा आनन्दमयी के रूप ध्यान करें। कुण्डलिनी को नीचे लाते समय साधक 'सोऽहम्' मन्त्र उच्चारण कर दोनों नासिका द्वारा धीरे-

---

१. यह प्रक्रिया को हमारे स्वकपोलकल्पित रूपसे कोई वैष्णव सोचे तो वे उनके प्रामाणिक ग्रन्थ नारद-पञ्चरात्र का तृतीय अध्याय के ७० से ७२ श्लोक तक देखने से ही अपने भ्रम को समझ सकेंगे।

दक्षिणावर्त्त में धीरे-धीरे बारह बार जप करेगी और साथ-साथ अनाहतपद्म स्थित समस्त देवदेवी, मातृकावर्ण और वृत्तियाँ ग्रास करेगी। रं बीज वायुमण्डल में लीन हो जायेगा। तब 'यं' इस वायु बीज को मुख में रखकर कुण्डलिनी **विशुद्धपद्म** में उठेगी।

इसके बाद विशुद्धपद्म में आकर पूर्वमुख आज्ञाचक्र में उत्तोलन करके दूसरे मुख द्वारा विशुद्धपद्म के षोडशदल में दक्षिणावर्त में धीरे-धीरे सोलह बार जप करेगी और साथ-साथ विशुद्धपद्मस्थित समस्त देव-देवी, मातृकावर्ण, सप्तस्वर और वृत्तियाँ ग्रास करेगी; यं बीज आकाश मण्डल में लीन हो जायेगा। तब "हं" यहआकाश बीज मुख में रख कर कुण्डलिनी **आज्ञाचक्र** में उठेगी।

इसके बाद कुण्डलिनी आज्ञाचक्र में आकर पूर्वमुख निरालम्बपुर में उत्तोलन करके दूसरे मुखद्वारा दक्षिणावर्त आज्ञाचक्र के दो दलों में धीरे-धीरे दो बार जप करेगी और साथ-साथ आज्ञापद्मस्थ सभी देवता मातृकावर्ण और गुणों को लीन करेगी। "हं" बीज मनश्चक्र में लय प्राप्त होगा। मन बुद्धितत्त्व में, बुद्धि प्रकृति में और प्रकृति कुण्डलिनीशक्ति के शरीर में लय हो जायेगी।

तब कुण्डलिनी सुषुम्नामुख में नीचे कपाटस्वरूप अर्द्धचन्द्राकार मण्डल भेद क़रके जितनी ही उठती रहेगी, उतना ही क्रम-क्रम से नाद, बिन्दु, हकारार्द्ध और निरालम्बपुरी ग्रास कर लेगी अर्थात् वह सभी कुण्डलिनी के शरीरमें लीन हो जायेगी। इस अर्द्धचन्द्राकार कपाट का भेदन होने से ही कुण्डलिनी स्वयं ऊपर उठकर ब्रह्मरन्ध्र स्थित **सहस्त्रदलकमल** में परमपुरुष के सहित संयुक्त होगी।

आद्याशक्ति कुलकुण्डलिनी इस प्रकार स्थूलभूत से प्रकृति पर्यन्त चौबीसतत्त्व ग्रास करके शिर में– सहस्रार में उठकर परमपुरुष के सहित संयुक्त और एकीभूत हो जयेगी। तब प्रकृति-पुरुष के साथ

कुण्डलिनी स्वाधिष्ठानपद्म में उपस्थित होंगी।

स्वाधिष्ठानपद्म में आने पर उससे पद्मस्थित सभी देव-देवियों का मातृकावर्ण और वृत्तियाँ सृष्ट होकर यथास्थान अवस्थिति करेंगी। तब कुण्डलिनी नीचे के मुख से वामावर्त्त में स्वाधिष्ठानपद्म के षड्दल में धीरे-धीरे छः बार जप करेंगी। "यं" बीज से जलराशि उत्पन्न होगी। उससे "लं" इस पृथ्वीबीज के उत्पन्न होने से उसे मुख में रखकर कुण्डलिनी मूलाधार में आयेगी।

मूलाधार में आकर उपस्थित होने पर उससे इस पद्म के समस्त देवदेवी, मातृकावर्ण और वृत्तियाँ उत्पन्न होकर यथास्थान अवस्थिति करेंगी। तब कुण्डलिनी नीचे के मुखद्वारा वामावर्त्त में मूलाधार से पद्म के चतुर्दल में धीरे-धीरे चार बार जप करेंगी। "लं" बीज से पृथ्वीमण्डल की सृष्टि होगी। तब कुण्डलिनी दूसरे मुखद्वारा ब्रह्मद्वार रोध करती हुई सुखपूर्वक निद्रिता होकर नीचे के मुखद्वारा निःश्वास-प्रश्वास त्याग करेंगी। जीव फिर भ्रान्ति ओर माया-मोह में संमुग्ध होकर जीवभाव में यथास्थान में अवस्थान करेगा।

यह प्रणाली कुम्भकयोग से भावनाद्वारा सम्पन्न करनी होगी। केवल जपके समय सेतु-संयुक्त इष्टमन्त्र मन ही मन यथानियम उच्चारित करना होता है। कुण्डलिनी सर्वस्वरूपिणी है, इसलिये उसे उद्बोधित करने की चेष्ट सभी को करना चाहिये।

मूलाधारे वसेत् शक्तिः सहस्रारे सदाशिवः।।

अतएव शाक्त, वैष्णव, शैव, सौर, गाणपत्य, बौद्ध, ब्राह्म, पारसी, सिख, मुसलमान, ईसाई प्रभृति सभी सम्प्रदायभुक्त साधकगण उपरोक्त नियम से कुण्डलिनी की सहायता से जप कर सकेंगे। योनि-मुद्रायोग में जप सभी जपों में श्रेष्ठ है, इसका अनुष्ठान मात्र से ही कोई

T

ऐसा विषय नहीं है, जिससे साधक सिद्धि प्राप्त नहीं कर सके। यथा-

योनिमुद्रा परा गोप्या देवानामपि दुर्लभा।
सकृत्तु लाभात् संसिद्धिः समाधिस्थः स एव हि ।।

-गोरक्षसंहिता

यह योनिमुद्रा अतिशय गोपनीय है; देवगण भी इसको प्राप्त नहीं कर पाते। इस मुद्रा के अनुष्ठान में सम्पूर्ण सिद्धि होती है और समाधिस्थ हुआ जा सकता है। क्योंकि-

योनिमुद्रां समासाद्य स्वयं शक्तिमयो भवेत्।
सुशृङ्गाररसेनैव विहरेत् परमात्मनि ।।
आनन्दमयः सम्भूत्वा ऐक्यं ब्रह्मणि सम्भवेत्।
अहं ब्रह्मेति वाद्वैतं समाधिस्तेन जायते ।।

-घेरण्डसंहिता

योनिमुद्रा का अवलबन कर साधक उसी परमात्मा से अपने को शक्तिमय चिन्तन करें अर्थात् अपने को प्रकृतिरूपा गौरी अथवा राधा और परमात्मा को पुरुषरूप शिव अथवा कृष्ण के रूप में चितन करें। उससे प्रकृतिपुरुष अथवा तदात्मक ब्रह्मज्ञान होगा। तब स्त्री-पुरुषवत् अपने साथ परमात्मा का शृङ्गाररसपूर्ण विहार हो रहा है, साधक इस प्रकार चिन्तन करें। इस प्रकार के सम्भोग से उत्पन्न परमानन्दरस में मग्न होकर परब्रह्म के साथ अभेदरूप में मिलन हुआ हूँ, इस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होगा। उससे 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस प्रकार अद्वैतज्ञान उत्पन्न होकर परब्रह्म में चित्त लीन हो जायेगा। अवश्य अभ्यास-क्रमसे इस मुद्रा-बन्धन और जप की प्रणाली की शिक्षा होगी।

T

अजपाजप की प्रणाली

मूलाधारपद्म और स्वयम्भूलिङ्ग अधोमुख रहने से चित्राणी नाड़ीमध्यस्थित ब्रह्मनाड़ी का मुख भी अधोभाग में है। द्विमुख विशिष्ट सार्द्धत्रिवलयाकृति कुलकुण्डलिनीशक्ति एक मुख उस ब्रह्मविवर में रखकर ब्रह्मद्वार रोध करती हुई सो जाती है; अन्य मुख दण्डाहत भुजंगिनी के सदृश है; इस मुखद्वारा श्वास-प्रश्वास का सञ्चालन हो रहा है। वही जीव का नि:श्वास-प्रश्वास है। श्वास-वायु के निर्गमनकाल में हंकार और ग्रहण समय में स:कार उच्चारित होता है। यथा-

हंकारो निर्गमे प्रोक्तः सकारस्तु प्रवेशने।

–श्वरोदयशास्त्र

श्वास परित्याग कर यदि ग्रहण नहीं किया गया, तब उसकी मृत्यु हो सकती है; अतएव 'हं' शिवस्वरूप अथवा मृत्यु है। 'स:' कार में ग्रहण, यही शक्तिस्वरूप है। इन दोनों के विसंवाद में जीवन की रक्षा होती है। अतएव यह श्वास-प्रश्वास ही जीव का जीवत्व है।

सोऽहं-हंसपदेनैव जीवो जपति सर्वदा।

-हंस-उपनिषत्

हंसके विपरीत 'सोऽहं' जीव सदा जप कर रहा है। इस हंस शब्द को ही अजपामन्त्र कहा गया है। जपों में अजपाजप श्रेष्ठ साधना है। साधक इस जप की प्रणाली को अवलम्बन करते हुए स्वत:उत्थित अश्रुतपूर्व अलोकसामान्य 'हंस' ध्वनि श्रवण करके अपार्थिव परमानन्द उपभोग कर सकता है। अजपामन्त्र जप करते-करते साधक का सोऽहं अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ यह ज्ञान उत्पन्न होता है। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में यह अजपाजप है। यथा-

एकविंशतिसहस्त्रषट्शताधिकमीश्वरि ।
जपते प्रत्यहं प्राणी सान्द्रानन्दमयीं पराम् ।।

विना जपेन देवेशि जपो भवति मन्त्रिणः ।
अजपेयं ततः प्रोक्ता भवपाशनिकृन्तनी ।।
-शाक्तानन्दतरङ्गिणी

जितनी बार श्वास-प्रश्वास का सञ्चालन होता है, उतने ही बार 'हंसः' यह परममन्त्र अजपा जप होता है ओर प्रत्येक मनुष्य का एक अहोरात्र के बीच में २१६०० बार निःश्वास बहिर्गत और प्रश्वास अन्तर में प्रविष्ट होता है। यही मनुश्य का स्वाभाविक जप है। प्रत्येक जीव के हृदय में इस हंस मन्त्र का जप हो रहा है। हंसः - 'हं' भीतर से सत्य के अंश को आकर्षित कर बाहर के जगत् में डालकर प्रकृति की परिपुष्टि को संसाधित कर देता है और 'सः' बाहर का रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श– भीतर आकर्षित कर सत्य के साथ सम्बध स्थापित कर रहा है। 'हं' शिव पुरुषः – 'सः' शक्ति या प्रकृति। हंस श्वास-प्रश्वास का अथवा पुरुष-प्रकृतिका मिलन है; इसलिये हंस ही जीवात्मा है। मूलाधार से हंस शब्द उठकर जीवाधार अनाहतपद्म में ध्वनित होता है। वायु-द्वारा सञ्चालित होकर अनाहत से हंस नासिका होकर श्वास-प्रश्वासरूप से बाहर जाता है। अतएव जीव से स्वतः ही हंसध्वनि उठती है। हंस-बीज जीवदेह की आत्मा है, यह हंसध्वनि सामान्य चेष्टा से साधक को सुनाई देती है। मनुष्य का अज्ञान तमसाच्छन्न विषय-विमूढ़ मन उसकी उपलब्धि नहीं कर पा सकता। सद्गुरु की कृपा से इसको जान सकने पर माला-झोला लेकर विडम्बना नहीं करनी पड़ती है। यह अजपाजप मोक्षदायी है। इसलिये उसके साथ गुरुदत्त इष्टमन्त्र अथवा अन्य जो कोई मन्त्र जप करने पर शीघ्र ही साधक को मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है। अजपाजप की प्रणाली इस प्रकार है-

प्रथमतः साधक मनःसंयमपूर्वक कुशासन अथवा कम्बलासन में अपने अभ्यस्त जिस किसी आसन में स्थिर भाव से उपवेशन कर ब्रह्मरंध्र

स्थित शतदलकमल में गुरु का ध्यान और प्रणाम करें। उसके बाद अपने अपने पटलानुयायी अंगन्यास, करन्यास और प्राणायाम कर अथवा पूर्वोक्त प्रणाली क्रमसे योनिमुद्रा अवलम्बन करके कुण्डलिनीशक्ति को उद्बोधित न होने से जप-पूजा समस्त व्यर्थ है। यथा-

मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो।
तावत् किञ्चिन्न सिध्येत मन्त्र यन्त्रार्चनादिकम्।।
जागर्ति यदि सा देवी बहुभिः पुण्यसंचयैः।
ततप्रसादसमायाति मन्त्रयन्त्रार्चनादिकम्।।

-गौतमीय तन्त्र

मूलाधरस्थित कुण्डलिनीशक्ति जब तक जगेगी नहीं तब तक मन्त्रजप ओर मन्त्रादि से पूजार्चना विफल होगी। यदि बहुत पुण्यप्रभाव से वह शक्तिदेवी जगती हैं, तब मन्त्रजपादि का फल भी सिद्ध होगा। इसलिये योनिमुद्रा बन्धन कर अजपाजप का अनुष्ठन करें।[1] क्योंकि उससे कुण्डलिनीदेवी उद्बोधित ऊर्ध्वगमनोन्मुखी होंगी।

मूलाधारपद्म के भीतर जो स्वयम्भूलिङ्ग है, कुण्डलिनी सार्द्ध त्रिवलयाकार में वही स्वयम्भूलिङ्ग को वेष्ठित करके अवस्थान किये हैं। योनिमुद्राद्वारा मूलाधार आकुञ्चित करके चिन्तन करना होगा। कुण्डलिनीशक्ति जागरिता और महातेजोमयी होकर ऊर्ध्वगमनोन्मुखी होकर अपेक्षा करती हैं। इस समय अपने मन्त्राक्षरों को कुण्डलिनी के शरीर में ग्रथित अर्थात् कुण्डलिनीरूप सूत्र में मन्त्रों को मणि सदृश ग्रथित चिन्तन करना होगा। अतः साधक मन ही मन इष्टमन्त्र उच्चारणसहित निःश्वास के साथ-साथ अर्थात् पूरककाल में चिन्तन द्वारा इस कुण्डलिनीशक्ति को उत्थापित करते हुए सहस्रारकमल

---

१. मेरे द्वारा रचित "योगीगुरु" ग्रन्थ में कुण्डलिनीचैतन्य का बहुविध सहज और सुखसाध्य कौशल लिखित है।

T

कर्णिका के मध्यवर्ती परमानन्दमय परमात्मा के सहित ऐकात्म्य करेगा और रेचनकाल में इस शक्ति को यथास्थान में लायेगा। रेचनकाल में और मन्त्र उच्चारण का प्रयोजन नहीं है।

इस प्रकार निःश्वास के साथ-साथ यथाशक्ति मन्त्र-जप करके निःश्वास रोध करते हुए भावनाद्वारा कुण्डलिनी को एक बार सहस्त्रार में ले जावें और उसी क्षण ही मूलाधार में आवें। इस प्रकार बारम्बार करते करते सुषुम्नापथ से विद्युत्-सदृश दीर्घाकार तेज दिखायी देगा।

प्रत्यह इस प्रकार जप करने से साधक मन्त्र-सिद्धि प्राप्त कर सकता है– इसमें सन्देह नहीं है। न्यासादि न करके भी साधक दिवारात्र शयन में, गमन में, भोजन में और संसार का कार्य करते करते अजपा के साथ इष्टमन्त्र का जप कर सकेगा। जीवात्मा का देहत्याग के पूर्व मुहूर्त्त पर्यन्त यह अजपा परममन्त्र का जप होता रहता है। अतएव मृत्युके समय ज्ञानपूर्वक **सः** के साथ इष्टमन्त्र का योग कर अन्तिम **हं** के साथ देहत्याग कर सकने पर शिवरूप में ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

श्मशान और चिता-साधना

दीक्षा-ग्रहण करके साधक नित्य-नैमित्तिक कर्म का अनुष्ठान करते-करते क्रमशः जब द्रढ़िष्ठ और कर्मिष्ठ हो जायेगा, तब काम्य-कर्म का अनुष्ठान करें। साधना के उच्च-उच्च स्तर पर अधिरोहण करेने के लिये तान्त्रिकगुरु के निकट अधिकारानुरूप संस्कार से संस्कृत होना होता है। नहीं तो साधनानुरूप फल पाना कठिन है। कलिकाल में तन्त्रोक्त काम्यकर्मों में वीर-साधना श्रेष्ठ और सद्यः फलप्रद है। उसमें योगिनी, भैरवी, वैताल, चिता और शव-साधना सर्वोत्कृष्ट हैं। हम इस कल्प में अविद्या और उपविद्या की साधना-

T

प्रणाली का विवरण नहीं देंगे। महाविद्या की साधना ही हमारा एकमात्र लक्ष्य है। अतएव श्मशान और चिता-साधना की प्रणाली को ही हमं इस समय लिपिबद्ध करेंगे। पूर्णाभिषेक और क्रमदीक्षा ग्रहण करके वीरसाधना का अनुष्ठान करें।

जो महाबलशाली, महाबुद्धिमान्, महासाहसी, सरलचित्त, दयाशील, सभी प्राणियों के हितकार्य में अनुरक्त है, वे ही इस कार्य के उपयुक्त पात्र हैं। इस साधनाकाल में साधक किसी प्रकार से भी नहीं होगा। ह़ास्य-परिहास्य त्याग करें और किसी दिशा में अवलोकन न करके एकाग्रचित्त से साधना का अनुष्ठान करें।

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।
कृष्णपक्षे विशेषेण साधयेद्वीरसाधनम् ।।

-वीरतन्त्र

कृष्णपक्ष अथवा शुक्लपक्ष की अष्टमी, अथवा चतुर्दशी तिथि में वीर-साधना की जा सकती है, पर कृष्णपक्ष ही प्रशस्त है।

साधक सार्द्धप्रहर रात्रि बीतने पर श्मशान जाकर निर्दिष्ट चिता में मन्त्रध्यानपरायण होकर अपने हित साधनार्थ साधना का अनुष्ठान करेगा। सामिषान्न, गुड़, छाग, सुरा, खीर, पिष्टक नाना प्रकार के फल, नैवेद्य अपने अपने देवता की पूजा के विहित द्रव्य, इन सबको पहले से ही एकत्र कर साधक उन सब पदार्थों को श्मशान स्थान पर लाकर निर्भयचित्त से समानगुणशाली अस्त्रधारी बन्धुवर्ग के साथ साधनारम्भ करेगा। बलिद्रव्य सात पात्रों में रखकर उनके चार पात्रों को चार दिशाओं में और मध्य में तीन पात्रों को स्थापित कर मन्त्रपाठ सहित निवेदन करेगा। गुरुभ्रता अथवा सुव्रत ब्राह्मण को आत्मरक्षार्थ दूर पर उपवेशित कर रखेगा।

असंस्कृता चिता ग्राह्या न तु संस्कारसंस्कृता ।

T

चाण्डालादिषु संप्राप्ता केवलं शीघ्रसिद्धिदा ।।

-तन्त्रसार

साधनाकार्य में असंस्कृता चिता ही ग्रहणीया है; संस्कृता अर्थात् जलसेकादि द्वारा परिष्कृता चिता से साधना न करें। चाण्डालादि की चिता से शीघ्र फल-प्राप्ति होती है।

वीर-साधनाधिकारी व्यक्ति शास्त्रोक्त विधान से चिता निर्देश पूर्वक अर्घ्य स्थापित कर स्वस्तिवाचन और उसके बाद-**"ॐ अद्येत्यादि अमुक-गोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकमन्त्रसिद्धिकामः श्मशानसाधनमहं करिष्ये"**...इस मन्त्र से संकल्प करें। उसके बाद साधक वस्त्रालंकार प्रभृति विविध विभूषणों से विभूषित होकर पूर्वाभिमुख से उपवेशनपूर्वक फट्कारान्त मूल-मन्त्र से चितास्थान प्रोक्षण करें। उसके बाद गुरु के पादपद्म का ध्यान कर गणेश, बटुक, योगिनी, मातृकागण की पूजा करें। इसके बाद 'फट्' इस मन्त्र से आत्मरक्षा करके–

ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः ।
पिशाचाः सिद्धयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।।
योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचराः स्त्रियः ।
सिद्धिदाता भवन्त्वत्र तथा च मम रक्षकाः ।।

इस मन्त्र से प्रणाम कर साधक तीन अञ्जलि-पुष्प प्रदान करें। बाद में पूर्वदिशा में **'ॐ हूँ श्मशानाधिप इमं सामिषान्नबलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु सिद्धिं मम प्रयच्छ स्वाहा'** इस मन्त्र से श्मशानाधिपति की पूजा और बलि प्रदान करें। दक्षिण दिशा में **'ॐ ह्रीं भैरव भयानक इमं सामिषान्न...स्वाहा।'** (इमं सामिषान्न से स्वाहा पर्यन्त पूर्ववत्) इस मन्त्र से भैरव की पूजा और बलि, पश्चिम दिशा में **'ॐ हूँ कालभैरव श्मशानाधिप इमं**

T

सामिषान्न...स्वाहा।' इस मन्त्र से कालभैरव की पूजा और बलि और उत्तर दिशा में, **'ॐ हूँ महाकाल श्मशानाधिप इमं सामिषान्न... स्वाहा।'** इस मन्त्र से महाकाल की पूजा और बलि प्रदान करें। बाद में तीन बलि चिता में-

ॐ कालरात्रि महारात्रि कालिके घोरनिःस्वने ।
गृहाणेमं बलिं मातर्देहि सिद्धिमनुत्तमाम् ।।

इस/मन्त्र से एक बलि कालिकादेवी को-**'ॐ हूँ भूतनाथ श्मशानाधिप इमं सामिषान्न...स्वाहा'** इस मन्त्र में दूसरा भूतनाथ को और **'ॐ हूँ सर्वगणनाथ श्मशानाधिप इमं सामिषान्न... स्वाहा।'** इस मन्त्र से तीसरा गणनाथ को प्रदान करें। इस प्रकार बलि प्रदान कर पञ्चगव्य और जलद्वारा श्मशानस्थ अस्थ्यादि को प्रक्षालित कर उसके बाद पीतवस्त्र विन्यास पूर्वक वटपत्र पर अथवा भूर्जपत्र में पीठमन्त्र लिखकर पीतवस्त्र के ऊपर साधक स्थापित करें। उस पर व्याघ्रचर्मादि के आसन को आवृत कर वीरासन में उपवेशन पूर्वक **"हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं कालिके घोरदंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान् दारय हन हन शवशरीरे महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हूँ फट्"** इस वीरार्दन मन्त्र से पूर्वादि दस दिशाओं को लोष्ट्र निक्षेप करें। इस प्रकार दश दिशाओं की रक्षा करके उसमें उपवेशन करके साधना करने से कोई विघ्न-बाधा नहीं हो सकती।

साधना के समय यदि किसी प्रकार भय से कातर हो तो उसी क्षण सुहृद्वर्ग उसके भय का निवारण करें। सुहृद्गण सर्वदा इस प्रकार सतर्क रहें, जिससे साधक किसी प्रकार भय-विह्वल न हो। यदि साधक असह्य भय से विह्वल हो जाय तो उस स्थिति में वस्त्र से साधक के नेत्रों और कानों को बाँध देना कर्त्तव्य है। कारण यह है कि वह कुछ देख अथवा सुन न पावे।

T

उसके बाद कपूरमिश्रित श्वेत मदार और श्वेत खिरैटी की रूई से बत्ती प्रस्तुत करके प्रदीप ज्वलित कर उस स्थान पर रखेगा। बाद में **'ॐ देव्यस्त्रेभ्यो नमः'** इस मन्त्र से अस्त्रपूजा करके साधक अपने अधोभाग में इस प्रज्ज्वलित प्रदीप को प्रोथित कर रखेगा। किन्तु-

हते तस्मिन् महादीपे विघ्नैश्च परिभूतय।

-तन्त्रसार

इस प्रदीप निर्वापित होने से साधना में नानाविध विघ्न उपस्थित हो सकते हैं।

उसके बाद अपने-अपने कल्पोक्त विधान से न्यास-समूह और भूतशुद्ध्यादि करके इष्टदेवता की पूजा समापन पूर्वक **'ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकमन्त्रसिद्धिकामः अमुक-मन्त्रस्यामुकसंख्यजपमहं करिष्ये'** इस मन्त्र से संकल्प करें। अनन्तर अपने हृदय में देवता का ध्यान करके मन्त्रजप आरम्भ करें। जप का विधान इस प्रकार है-

एकाक्षरी यदि भवेद् दिक्सहस्रं ततो जपेत्।
द्वाक्षरेऽष्टसहस्रं स्यात्र्यक्षरे चायुतार्धकम्।।
अतःपरन्तु मन्त्रज्ञो गजान्तकसहस्रकं।
निशायां वा समारभ्य उदयान्तं समाचरेत्।।

-तन्त्रसार

साधक का मन्त्र एकाक्षरी होने से दस हजार, द्वि-अक्षरी होने से आठ हजार, तीन-अक्षरी होने से पाँच हजार और चतुरक्षरी होने से अथवा उससे अधिक अक्षरी मन्त्र होने से अठारह हजार संख्या का जप करना होगा। रात में आरम्भ करके सूर्योदय तक जप करना कर्त्तव्य है।

यदि आधी रात तक जप करने पर भी कुछ देख न सके तब

'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा' इस जयदुर्गा मन्त्र से सर्षप और-

ॐ तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवस्तृप्तिकारकः।
पितृणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानां मम रक्षकः।।
भूत-प्रेत-पिशाचानां विघ्नेषु शांतिकारकः।

इस मन्त्र का पाठ कर तिल को ईशानादि चतुष्कोण में निक्षेप करना होगा। उसके बाद पूर्वोपवेशन-स्थान से सात कदम गमन कर उसी स्थान पर उपवेशन पूर्वक फिर इष्टदेवता की पूजा कर जप करें। यदि जप करते-करते कोई आकर "वर ग्रहण कर" इस बात को कहे तब देवता को प्रतिज्ञाबद्ध कर अभिलषित वर ग्रहण करें। जप के आदि में, जप के मध्य में और जप के अन्त में साधक बलि प्रदान करेगा। जप के आदि-मध्य अथवा अन्त समय में देवी जब बलि प्रार्थना करें तभी साधक महिष अथवा बकरा का बलि प्रदान करें। यवपिष्ट द्वारा महिष अथवा बकरा प्रस्तुत कर बलिप्रदान कर्त्तव्य है। जब देवी नर अथवा हस्ती बलि की प्रार्थना करें तब "दिनान्तर में बलि प्रदान करूँगा" इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर स्वगृह को गमन करें। दूसरे दिन धान्यपिष्ट अथवा यवपिष्ट द्वारा नर अथवा हस्ती प्रस्तुत कर पूर्वोक्त मन्त्र से खड्ग द्वारा छेदन करें। योगिनीहृदयमें लिखा है कि जप के अन्त में बलि प्रदान कर वर ग्रहण पूर्वक सुहृद्वर्ग के साथ हृष्टचित्त स्वगृह को गमन कर अपने शक्ति-अनुसार गुरुपुत्र अथवा गुरुपत्नी को दक्षिणा प्रदान करें।

समाप्य साधनं देवि दक्षिणां विभवावधिं।
गुरवे गुरुपुत्राय तत्पत्न्यै वा निवेदयेत्।।

T

शव-साधना

तन्त्र के नाम से जो भौंहें सिकोड़ते हैं, वे एक बार तन्त्रशास्त्र की पर्यालोचना करने पर अपने भ्रम को समझ पा सकेंगे और विस्मित एवं स्तंभित होकर ससम्मान नमस्कार करेंगे। साधना के इस रूप की प्रकृष्ट पन्था और साधक की रुचि के भेद से स्वभावानुयायी साधनपन्था और कोई शास्त्र प्रकाश नहीं कर पाये हैं। कलि के अल्पायु जीवगण जिससे अति अल्प समय में सिद्धिलाभ कर सकें, तन्त्र न उस विषय में विशेष कृतित्व दिखलाया है। अधिकारी हो सकने पर साधक एक ही रात में ब्रह्मविद्या सिद्ध कर सकता है। वीरसाधना उसका दृष्टान्त है। मेहार के सर्वविद्या सर्वानन्द ठाकुर ने एकरात में ही शवसाधना करके ब्रह्मसाक्षात्कार किया था। हम नीचे उसी शव-साधना की प्रणाली पर विवरण प्रस्तुत करते हैं।

वीर साधनाकारी साधक शून्यगृह में, नदीतट, निर्जन प्रदेश, विल्वमूल अथवा श्मशानसमीपस्थ वनप्रदेश में शव-साधना करें। शास्त्रोक्त विहित दिन में शव-साधना करना कर्त्तव्य है। यथा–

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि।
भौमवारे तमिस्रायां साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम्।।

-भावचूड़ामणि

कृष्ण अथवा शुक्लपक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी तिथि में मङ्गलवार की रात में उक्त साधना करने पर साधक उत्तम सिद्धि लाभ कर सकता है।

शव-साधना में कृष्णपक्ष ही विशेष प्रशस्त है। साधक पूर्व से हीं विहित शव संग्रह करके रखेगा। विहित शव यथा–

यष्टिविद्धं शूलविद्धं खड्गविद्धं जलेमृतं।
बज्रविद्धं सर्पदष्टं चाण्डालञ्चाभिभूतकम्।।

तरुणं सुन्दरं शूरं रणे नष्टं समुज्ज्वलम्।
पलायनविशून्यन्तु सम्मुखरणवर्तिनम्।।

-भावचूड़ामणि

जो व्यक्ति यष्टि, शूल और खड्गाघात से प्राण परित्याग किये हैं, जल में गिरकर मरे हैं, वज्राघात अथवा सर्पदंशन से जिसकी मृत्यु हुई है- इस प्रकार चण्डाल जातीय मृतदेह को इस कार्य में शव बनाना चाहिये। वीर साधना-कार्य में मनुष्य का मृतदेह ही प्रशस्त है। अन्यान्य क्षुद्र शव साधारण कर्म सिद्ध्यर्थ नियोजित हो सकता है। ब्राह्मण के शव इस कार्य में परित्याग करें। जिस व्यक्ति ने पलायन न कर सम्मुख युद्ध में प्राण विसर्जन किया है, उसका शरीर भी शव-साधना कार्य में प्रशस्त है। इस प्रकार का शव तरुणवयस्क और सुन्दर होना आवश्यक है। शव इस प्रकार सुलक्षणाक्रान्त न होने से उसका परित्याग करना चाहिये। यथा-

स्त्रीवश्यं पतितास्पृश्यं नयवर्जं हि तूवरं।
अव्यक्तलिङ्गं कुष्ठीं वा बृद्धभिन्नं शवं हरेत्।।
न दुर्भिक्षमृतञ्चापि न पर्युषितमेव वा।
स्त्रीजनञ्चेदृशं रूपं सर्वथा परिवर्जयेत्।।

-भैरवतन्त्र

जो व्यक्ति स्त्री के वशीभूत, पतित, अस्पृश्य, दुर्नीतियुक्त, शमश्रुविहीन, क्लीव, कुष्ठरोगाक्रान्त अथवा वृद्ध के शव वर्जित हैं। दुर्भिक्ष से मृत व्यक्ति का शरीर अग्राह्य है। सद्योमृत शव विहित है। बासी अथवा गलित शवद्वारा साधना करने से उससे कार्यसिद्ध नहीं हो सकती है। इसलिये उक्त प्रकार का शव और स्त्रियों का मृत शरीर इस कार्य में ग्रहण न करें। कभी भी आत्मघाती का शरीर शव साधना में स्वीकार न करें। पूर्वोक्त सुलक्षणाक्रान्त शव-संग्रह करके साधना का अनुष्ठान करें।

साधक मासभक्त बलि के लिये तिल, कुश, सर्षप और धूपदीपादि पूजा का उपकरण और सामग्री संग्रहपूर्वक शव-साधनोपयोगी पूर्वोक्त जिस किसी स्थान पर जा:येगा। बाद में सामान्यार्घ्य स्थापनपूर्वक साधक पूर्वाभिमुख होकर "**फट्**" इस मन्त्र के पूर्व में अपने-अपने बीजमन्त्र उच्चारण कर याग-स्थान अभ्युक्षण करेगा। बाद में पूर्वदिशा में गुरु, दक्षिणदिशा में गणेश, पश्मिमें बटुक और उत्तर में योगिनी की अर्चना कर भूमि में "**हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं कालिके घोरदंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान् दारय हन हन शवशरीरे महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हूँ फट्**" इस वीरार्दन मन्त्र को लिख कर--

ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भ्यानकाः ।
पिशाचाः सिद्धयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।।
योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचराः स्त्रियः ।
सिद्धिदाता भवन्त्वत्र तथा च मम रक्षकाः ।।

साधक इस मन्त्र से तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करें। बाद में श्मशान-साधना के लिखित क्रम से पूर्वदिशा में श्मशानाधिपति, दक्षिणदिशा में भैरव, पश्चिमदिशा में कालभैरव, उत्तरदिशा में महाकालभैरव की पूजा कर बलि प्रदान करें। इसके बाद '**ॐ सहस्रारे हूँ फट्**' इस सुदर्शन मन्त्र से शिखाबन्धन कर स्वहृदय में हस्त संस्थापन पूर्वक '**ॐ ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तनुरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह वन वन बन्ध बन्ध घातय घातय हूँ फट्।**' यह अघोरमन्त्र उच्चारण करके '**आत्मानं रक्ष रक्ष**' कहकर साधक आत्मरक्षा करें। उसके बाद अपने-अपने कल्पोक्त प्राणायाम, भूत-शुद्धि और विविध न्यास कर '**ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा**' इस जयदुर्गामन्त्र से चतुर्दिक सर्षप विक्षेप और--

ॐ तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवस्तृप्तिकारकः।
पितृणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानां मम रक्षकः।।
भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः।।

इस मन्त्र से तिल विक्षेप पूर्वक संगृहीत शव के निकट गमन करें। बाद में शवसमीप उपवेशन कर **'ॐ फट्'** इस मन्त्र से शव के ऊपर अभ्युक्षण करते हुए **'ॐ हूँ मृतकाय नमः फट्'** इस मन्त्र से तीनबार पुष्पाञ्जलि प्रदानपूर्वक शव स्पर्शपूर्वक प्रणाम करें। बाद में–

ॐ वीरेश परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर।
आनन्दभैरवाकार देवी-पर्यङ्कशङ्कर।।
वीरोऽहं त्वं प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्चने।।

इस मन्त्र से प्रणाम करें। उसके बाद **'ॐ हूँ मृतकाय नमः'** इस मन्त्र से प्रक्षालन करके सुगन्धित जलद्वारा शव को स्नान कराकर वस्त्रद्वारा शवशरीर को मार्जन, धूप द्वारा शोधन और शवशरीर चन्दन द्वारा अनुलिप्त करें। इसी समय शवशरीर यदि रक्तवर्ण धारण करता है, तब साधक को भक्षण करता है। यथा–

रक्ताक्तो यदि देवेशि भक्षयेत् कुलसाधकम्।

-भावचूड़ामणि

बाद में शव के कटिदेश को पकड़ कर पूजा के स्थान पर लाना होगा। फिर कुश द्वारा शय्या-रचना कर उसके ऊपर पूर्व सिर करके शव की स्थापना करें। इसके बाद शव के मुख में जातिफल, खादिरादियुक्त ताम्बुल प्रदान कर अधोमुख कर रखें। शवपृष्ट चन्दनादि द्वारा अनुलेपन कर बाहुमूल से कटिदेश पर्यन्त चतुरस्र मण्डल लिखेगा। चतुरस्र के मध्य में अष्टदल पद्म और चतुर्द्वार अङ्कित कर पद्म के मध्य में **'ॐ ह्रीं फट्'** इस मन्त्र के साथ अपने कल्पोक्त पीठमन्त्र लिखना होगा। बाद में उसके ऊपर कम्बलादि

आसन स्थापित करें। बाद में शव के समीप जाकर शव का कटिदेश धारण करें। इससे शव यदि किसी प्रकार उपद्रव करता है, तब उसके गात्र में निष्ठीवंन प्रदान करें। यथा-

गत्वा शवस्य सान्निध्यं धारयेत् कटिदेशतः ।
यद्युपद्रावयेत्तदा दद्यान्निठीवनं शवे ।।

-भावचूड़ामणि

इस प्रकार करने पर शव शान्तभाव धारण करेगा। तब फिर प्रक्षालनपूर्वक जप के स्थान पर लाना होगा। बाद में साधक जपस्थान की दशदिशाओं में बारह अङ्गुल अश्वत्थादि यज्ञकाष्ठ प्रोथित कर पूर्वादि क्रम से दशदिक्पालों को पूजा और बलि प्रदान करें। पूजा का क्रम इस प्रकार है। यथा--

पूर्वादि क्रम से '**ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये ऐरावतवाहनाय वज्रहस्ताय शक्तिपारिषदाय सपरिवाराय नमः**' इस मन्त्र से पाद्यादि उपचार द्वारा अर्चना करके '**ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा एष माषबलिः इन्द्राय स्वाहा**' इस मन्त्र से सामिषान्नद्वारा साधक बलि प्रदान करें।

'**ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये मेषवाहनाय सपरिवाराय शक्तिहस्ताय सायुधाय नमः**' इस मन्त्र से पाद्यादि उपचार से अर्चना कर '**ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये**' इत्यादि पूर्ववत् मन्त्र पाठकर '**अग्नये स्वाहा**' कहकर बलि प्रदान करें।

'**ॐ मां यमाय प्रेताधिपतये दण्डहस्ताय महिषवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः**' इस मन्त्र से पाद्यादि उपचार द्वारा अर्चना कर '**ॐ मां यमाय प्रेताधिपतये**' इत्यादि पूर्ववत् मन्त्र पाठ कर '**यमाय स्वाहा**' कहकर साधक बलि प्रदान करें।

'ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये असिहस्ताय अश्ववाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः' इस मन्त्र से पाद्यादि उपचार से अर्चना कर **'ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये'** इत्यादि पूर्ववत् मन्त्र पाठ करके **'निर्ऋतये स्वाहा'** कहकर बलि प्रदान करें।

'ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये पाशहस्ताय मकरवाहनाय सपरिवाराय नमः' इस मन्त्र से पाद्यादि उपचार से अर्चना कर **'ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये'** इत्यादि पूर्ववत् मन्त्र पाठ कर **'वरुणाय स्वाहा'** कहकर बलि प्रदान करें।

'ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये हरिणवाहनाय अंकुशहस्ताय सपरिवाराय सायुधाय नमः' इस मन्त्र से पाद्यादि उपचार से अर्चना कर **'ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये'** इत्यादि पूर्ववत् मन्त्र पाठ कर **'वायवे स्वाहा'** कहकर बलि प्रदान करें।

'ॐ सां कुवेराय यक्षाधिपतये गदाहस्ताय नरवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः' इस मन्त्र से पाद्यादि उपचार द्वारा अर्चना करके **'ॐ सां कुवेराय यक्षाधिपतये'** इत्यादि पूर्ववत् मन्त्र पाठ करके **'कुवेराय स्वाहा'** कहकर बलि प्रदान करें।

'ॐ हां ईशानाय भूताधिपतये शूलहस्ताय वृषवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः' इस मन्त्र से पाद्यादि उपचार से अर्चना करके**'ॐ हां ईशानाय भूताधिपतये'** इत्यादि पूर्ववत् मन्त्र पाठकर **'ॐ हां ईशानाय स्वाहा'** कह कर बलि प्रदान करें।

'ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये हंसवाहनाय पद्महस्ताय सपरिवाराय सायुधाय नमः' इस मन्त्र से पाद्यादि उपचार से अर्चना कर **'ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये'** इत्यादि पूर्ववत् मन्त्र पाठ करके **'ब्रह्मणे स्वाहा'** कहकर बलि प्रदान करें।

'ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये चक्रहस्ताय रथवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः' इस मन्त्र से पाद्यादि उपचार से अर्चना कर **'ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये'** इत्यादि पूर्ववत् मन्त्र पाठ कर **'अनन्ताय स्वाहा'** कहकर बलि प्रदान करें।

इस प्रकार इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुवेर, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त इन दशदिक्पालों की पूजा और बलिप्रदान कर **'एष माषबलिः ॐ सर्वभूतेभ्यो'** इस मन्त्र से सर्वभूतबलि प्रदान करें। उसके बाद अधिष्ठात्रीदेवता चतुःषष्टि योगिनी और डाकिनीगण को बलि प्रदान करनी होगी। सामिष अन्न द्वारा सभी देवताओं को बलि देनी होगी।

बाद में साधक अपने निकट पूजाद्रव्यादि और किंचित् दूरपर उपयुक्त उत्तर-साधक को संस्थापित करके आरम्भ में मूलमन्त्र, बाद में **'ह्रीं फट् शवासनाय नमः'** इस मन्त्र से शव की अर्चना करें। बाद में **'ह्रीं फट्'** इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक अश्वारोहणसदृश शव की पीठ पर बैठकर अपने पदतल के नीचे कतिपय कुश निक्षेप करेगा और शव के केश प्रसारण पूर्वक झुटिका बन्ध करके गुरु, गणपति और देवी को प्रणाम करें। बाद में प्राणायाम और कराङ्गन्यासादि करके पूर्वोक्त वीरार्दन मन्त्र से दसदिशाओं में लोष्ट निक्षेप करें।

बाद में **'अद्येत्यादि अमुक-गोत्रः श्रीअमुक-देवशर्मा अमुक-देवतायाः सन्दर्शनकामः अमुकमन्त्रस्यामुकसंख्यकजपमहं करिष्ये'** इस मन्त्र से संकल्प करके **'ह्रीं आधारशक्ति-कमलासनाय नमः'** इस मन्त्र से आसन की पूजा करें। बाद में अपनी बायीं ओर अर्घ्य स्थापित कर शव की झुटिका में पीठ पूजा करें। फिर अपनी क्षमता के अनुसार षोडशोपचार, दशोपचार अथवा पञ्चोपचार से अपने इष्टदेवता की पूजा कर शवमुख में सुगन्ध जल द्वारा देवी का तर्पण करें।

इसके बाद साधक शव से उठकर शव के सम्मुख खड़ा

होकर **'ॐ वशो मे भव देवेश वीरसिद्धिं देहि देहि महाभाग कृताश्रयपरायण'** इस मन्त्र का पाठ करे , उसके बाद पट्टसूत्रद्वारा शवके दोनों चरणों को बाँधकर मूलमन्त्र से शवशरीर को दृढ़ता से बाँधें । बाद में-

ॐ मद्वशो भव देवेश वीरसिद्धिकृतास्पद ।
ॐ भीम भवभयाभाव भवमोचनभावुक ।।
त्राहि मां देवदेवेश शवानामधिपाधिप ।।

इस मन्त्र का पाठ करते हुए शव के पादमूल में त्रिकोणयन्त्र लिखें। बाद में शव के ऊपर बैठ कर शव के दोनों हाथों को दोनों ओर प्रसारित करकें उसपर कुश रखें। साधक उस आस्तृत कुश के ऊपर अपने दोनों पावों को स्थापित कर फिर तीन बार प्राणायाम कर शिर:स्थित शुक्ल द्वादशदल (मतान्तर से शतदल) पद्म में गुरुदेव का और अपने हृदय में इष्टदेवी का चिन्तन करते-करते दोनों होठों को सम्पुटित कर शवसाधनोपयोगी विहित मालाद्वारा निर्भय चित्त से मौनी होकर संकल्पानुसार जप करें। पूर्वोक्त श्मशान-साधना के क्रमानुसार मन्त्राक्षर की संख्या के आधार पर जपसंख्या का संकल्प कर जप करना चाहिए। यथा-मन्त्र एकाक्षरी होने पर दश सहस्त्र संख्या सङ्कल्प करके जप करना पड़ेगा इत्यादि श्मशान-साधना में लिखित है।

इस प्रकार जप करने पर भी यदि अद्धरात्रि पर्यन्त कुछ दृष्टिगोचर न हो, तब पूर्ववत् सर्षप और तिल विकीर्ण कर अधिष्ठित स्थान से सप्तपद गमन कर फिर जप आरम्भ करें । यदि जपकाल में किसी प्रकार का भय उपस्थित हो अथवा आकाश से यदि कोई बलि प्रार्थना करे, तब उससे कहें कि–

यत् प्रार्थय बलित्वेन दातव्यं कुञ्जरादिकम् ।
दिनान्तरे च दास्यामि स्वनाम कथयस्व मे ।।

दिनान्तर में तुमको कुञ्जरादि का बलि प्रदान करूँगा; तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है? उसे मुझे बताओ। इस उत्तर को प्रदान कर फिर निर्भय चित्त से साधक जप करते रहें। बाद में यदि मधुर वाक्य से अपना नाम बतलाता है। तब फिर साधक कहेगा। **''त्वम् अमुक इति सत्यं कुरु''** अर्थात् **''तुम मुझको वर प्रदान करोगे, इस प्रकार प्रतिज्ञा करो।** इस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध कराके साधक अपना अभीष्ट वर प्राप्ति के लिए प्रार्थना करें और यदि प्रतिज्ञापाश से बद्ध हो अथवा वर प्रदान न करें, तब एकाग्रचित्त से साधक फिर जप आरम्भ करें, किन्तु यदि प्रतिज्ञा करके वर प्रदान करने के लिए सम्मत हो, तब और जप न करें। बाद में अभिलषित वर ग्रहण करके 'हमारा कार्य सिद्ध हुआ' इस प्रकार समझ कर शव की झुटिका मोचन पूर्वक शव प्रक्षालन और शव को स्थानान्तर में रखकर शव के पाद-बन्धन को मुक्त करें और पूजा-द्रव्य जल में निक्षेप कर शव को जल में डाल देंगे अथवा भूगर्भ में प्रोथित करके साधक स्नान करें।

बाद में साधक आनन्दित चित्त से अपने घर जाएँ और दूसरे दिन पूर्व प्रतिश्रुत बलि प्रदान करें। यदि इष्ट देवता कुञ्जर, अश्व, नर अथवा शूकर बलि की प्रार्थना करें, तब देवता की प्रार्थना के अनुसार पिष्टकनिर्मित वह अभिलषित बलि **'अग्निमरात्रौ येषां यजमानोऽहं ते गृह्णन्त्विमं बलिं'** इस मन्त्र से प्रदान करके साधक उपवासी रहेगा।

दूसरे दिन साधक प्रातःकृत्यादि नित्यानुष्ठेय क्रिया समाप्त कर पञ्चगव्य पान करें और पचीस ब्राह्मण को भोजन करायें । अशक्त होने पर बीस, अष्टादश अथवा दस तक की संख्या होने पर भी दोष नहीं होगा।

यदि न स्याद्विप्रभोज्यं तदा निर्धनतां व्रजेत्।
तेन चेन्निर्धनत्वं स्थात्तदा देवी प्रकुप्यति।।

–भावचूड़ामणि

यदि ब्राह्मण भोजन न हो तब साधक निर्धन होता है; विशेषत: देवी भी कुपिता होती हैं। ब्राह्मणभोजन के अन्त में स्वयम् स्नान और भोजन करके उत्तम स्थान पर वास करें।

इस प्रकार मन्त्रसिद्धि प्राप्त कर त्रिरात्रि अथवा नवरात्रि पर्यन्त गोपन कर रखें; किसी प्रकार भी मन्त्रसिद्धिका विषय प्रकाशित न करें। मन्त्रसिद्धि लाभ करके यदि साधक स्त्रीशय्या पर गमन करता है, तो व्याधि पीड़ित होगा; यदि गान सुनता है तब वधिर और नृत्य देखने पर अन्धा होता है, और यदि दिन में किसी से भी बात करता है, तब साधक मूक होता है। पन्द्रह दिन तक इस प्रकार सर्वकर्म परित्याग कर रखें। कारण साधक के शरीर में पन्द्रह दिन तक देवता रहते हैं। यथा-

पञ्चदशदिनं यावद्देहे देवस्य संस्थितिः।
न स्वीकार्ये गन्धपुष्पे वहिर्याति यदा तदा।।
तदा वस्त्रं परित्यज्य गृहणीयाद्वसनान्तरं।
गो-ब्राह्मण-विनिन्दाञ्च न कुर्याच्च कदाचन।
दुर्जनं पतितं क्लीवं न स्पृशेच्च कदाचन।।
देव-गो-ब्राह्मणादींश्च प्रत्यहं संस्पृशेच्छुचिः।
प्रातर्नित्याक्रियान्ते च बिल्वपत्रोदकं पिवेत्।।

–तन्त्रसार

जिस पन्द्रह दिन साधक के शरीर में देवता रहते हैं, उसी कतिपय दिन तक साधक गन्ध अथवा पुष्प ग्रहण न करें और जिस समय बाहर जाएगा तब परिधेय वस्त्र छोड़कर अन्य वस्त्र धारण करना

होगा। कभी भी गो अथवा ब्राह्मण की निन्दा न करें; दुर्जन, पतित और क्लीव मनुष्य को स्पर्श न करें; प्रतिदिन शुद्धदेह होकर देवता, गो, ब्राह्मण प्रभृति का स्पर्श करें। प्रतिदिन प्रातःकाल में नित्यक्रिया समाप्त कर बिल्वपत्रोदक पान करें। इन नियमों का पालन न करने से साधक की विशेष क्षति होती हैं।

बाद में मन्त्रसिद्धि के सोलहवें दिन गंगा-स्नान कर स्वाहान्त मूलमन्त्र उच्चारित करके " **अमुकदेवतां तर्पयामि नमः** " इस मन्त्र से तीन सौ बार से अधिक देवी का तर्पण करेगा। बाद में जल द्वारा देव तर्पण करेगा। स्नान और देवी का तर्पण किये बिना कभी भी देवतर्पण न करें। उसके बाद गुरुदक्षिणा प्रदान कर अच्छिद्रावधारण करना होगा।

इत्यनेन विधानेन सिद्धि प्राप्नोति साधकः ।
इह भुक्तवा वरान् भोगानन्ते याति परं पदम् ।।

-तन्त्रसार

इस प्रकार के विधान से शवसाधना में साधक सिद्धिलाभ करने पर इहलोक में पूर्णाभीष्ट होकर विविध भोग प्राप्त करके अन्त में ब्रह्मपद लाभ कर सकता है।

शिवाभोग और कुलाचार कथन

तन्त्रोक्त-वीरसाधना की प्रणाली से किस प्रकार श्मशान-साधना और शव-साधना करके अति अल्पकाल में मन्त्रसिद्धि होती है, उसे लिखा गया। इस प्रकार अल्पकाल में अन्य किसी शास्त्रोक्त साधना से सिद्धिलाभ कभी भी सम्भव नहीं है। इसलिए तन्त्रोक्त साधना के विषय में विचार करने पर विस्मय से हृदय भक्ति-विनत हो

जाता है। जो तन्त्र के मर्म से अवगत न होकर भौंहे टेढ़ी करते हैं, वे तन्त्रशास्त्रानभिज्ञ हैं; इसमें सन्देह नहीं है। हम अब कुलाचार विधि को लिपिबद्ध करेंगे। पाठक! समाहित चित्त से उसको मर्म से अवगत होकर भावावधारण करेंगे।

कुलाचार सम्पन्न होने के लिए साधक को भक्ति के साथ कुलाचारों को पालन करना होता है, नहीं तो प्रत्यवायभागी होना पड़ता है। सन्ध्या, वन्दन, पितृ-तर्पण और पितृश्राद्ध जिस प्रकार नित्य हैं, उसी प्रकार कुलसेवकों का कुलाचार भी नित्य है; अतएव प्रयत्न पूर्वक कुलाचार का पालन करें। विशेषत: जो व्यक्ति शिवत्वप्रापिका शिवाभोग प्रदान नहीं करता है, वह व्यक्ति कभी भी कुलदेवताकी अर्चना का अधिकार प्राप्त कर नहीं सकता है। इसलिए शिवाभोग निवेदन कर साधक जगदम्बा की तुष्टि का विधान करेगा।

पशुरूपां शिवां देवीं यो नार्चयति निर्जने ।
शिवारावेन तस्याशु सर्वं नश्यति निश्चितम् ।।
जपपूजा-विधानानि यत् किंचित् सुकृतानि च ।
गृहीत्वा शापमादाय शिवा रोदिति निर्जने ।।

–*कुलचूड़ामणि*

जो साधक पशुरूपिणी शिवादेवी की निर्जन में अर्चना नहीं करता है, शिवाराव द्वारा उसका समस्त पुण्यकर्म विनष्ट हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। शिवाभोग न देने पर शिवा साधक के जप, पूजा और अन्यान्य सुकृत्यादि ग्रहण-पूर्वक शाप प्रदान करके निर्जन में रोदन करती है।

'काली-काली' यह बोलकर आह्वान करना आरम्भ करने से ही शिवारूपधारिणी मङ्गलमयी उमा साधक के स्थान पर आगमन करती हैं; उनको अन्नदान करने पर शीघ्र भगवती प्रसन्न होती हैं।

T

साधक सायंकाल बिल्वमूल में प्रान्तर अथवा श्मशान में जाकर देवी को आह्वान कर **"ॐ गृहण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणी शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृहण बलिन्तव।"** इस मन्त्र से मांसप्रधान नैवेद्य प्रदान करें। उक्त भोग यदि एकमात्र शिवा भक्षण करती हैं, तब कल्याण होता है, और भगवती साधक पर परितुष्ट होती हैं। यदि शिवा भोग भक्षण करके मुखोत्तोलनपूर्वक ईशानकोणाभिमुख होकर सुस्वर में ध्वनि करती हैं, तब साधक का निश्चित शुभ होगा और यदि शिवाभोग ग्रहण नहीं करती हैं, तब साधक का अमंगल अवश्यम्भावी है। यथा–

यदा न गृह्यते नूनं तदा नैव शुभं भवेत् ।

–यामलतन्त्र

इस प्रकार होने से उक्त दोष की शान्ति के लिए साधक शान्तिस्वस्त्ययनादि कराएगा। जिस किसी प्रकार कार्यानुष्ठानकाल में शिवाभोग प्रदान करके इस प्रकार शुभाशुभ से अवगत हुआ जा सकता है। जो साधक यथाक्रम पशुशक्ति, पक्षीशक्ति और नरशक्ति की पूजा करता है, उसके समस्त कर्म विगुण होने पर भी मंगलकर होते हैं। इसलिए यत्नपूर्वक सर्वशक्ति की पूजा कुलसाधक को अवश्य करनी चाहिए।

साधकगण को समयाचारविहीन होने से करोड़ जन्म में भी सिद्धिलाभ नहीं कर सकते हैं। जो मनुष्य कुलशास्त्र और कुलाचार अनुवर्ती होगा वह सभी विषयों में उदार-चित्त, वैष्णवाचारपरायण, परनिन्दासहिष्णु और सर्वदा परोपकारनिरत होगा। कुलपशु, कुलवृक्ष और कुलकन्या का दर्शन कर देवी भगवती के उद्देश्य से प्रणाम करें। कभी भी उनके विरुद्ध कोई उपद्रव न करें।

T

कुलवृक्ष– श्लेष्मातक (लिसोड़ा), करञ्ज, बिल्व, अश्वत्थ, कदम्ब, निम्ब, वट, गुल्लर, आमलकी और इमली।

कुलपशु– गृध, क्षेमङ्करी, जम्बुकी, यमदूतिका, कुबरी, श्येन, भूकाक और कृष्ण मार्जार।

कुलकन्या– नटी, कापालिका, वेश्या, रजकी, नापितांगना, ब्राह्मणी, शूद्रकन्या, गोपालकन्या और मालाकारकन्या।

कुलवृक्ष, कुलपशु और कुलकन्याओं के संगमें कुलाचार सम्पन्न साधक किस प्रकार व्यवहार करेगा शास्त्र में उसका विशदरूप से वर्णन है। गृध्रका दर्शन कर महाकाली को साधक प्रणाम करें और अन्य कुलपशु के दर्शन होने से-

ॐकृशोदरि महाचण्डे मुक्तकेशि बलिप्रिये।
कुलाचार प्रसन्नास्ये नमस्ते शङ्करप्रिये।।

इस मन्त्र के उच्चारणपूर्वक प्रणाम करें। यदि किसी समय पर्वत, विपिन, निर्जन स्थान में, चतुष्पथ अथवा कलामध्य में दैवयोग से गमन करना हो तब उस स्थल पर एकक्षण रहकर मन्त्रजपसहित नमस्कार करके यथास्थान पर गमन करें। यदि श्मशान अथवा शव का दर्शन होता है, तब उसका अनुगमन पूर्वक प्रदक्षिणा कर–

ॐ घोरद्रंष्ट्रे करालास्ये कोटिशब्दनिनादिनि।
घोरघोररवास्फाले नमस्ते चितावासिनि।।

इस मन्त्र से प्रणाम करें। रक्तवस्त्र अथवा रक्तपुष्प दर्शन करके भूमिष्ठ होकर त्रिपुराम्बिका के उद्देश्य से प्रणामपूर्वक

ॐ वन्धूकपुष्पसंकाशे त्रिपुरे भयनाशिनि।
भाग्योदयसमुत्पन्ने नमस्ते वरवर्णिनि।।

यह मन्त्र पाठ करें। यदि कृष्ण वस्त्र, कृष्णपुष्प, राजा, राजपुरुष से, तुरङ्ग, मातङ्ग रथ, शास्त्र, वीरपुरुष अथवा कुलदेव का दर्शन होता है, तब-

ॐ जयदेवि जगद्धात्रि त्रिपुराद्ये त्रिदैवते।
भंक्तेभ्यो वरदे देवि महिषघ्नि नमोऽस्तु ते।।

इस मन्त्र का पाठ कर प्रणाम करें। मद्यभाण्ड, मत्स्य, मांस, अथवा सुन्दरी स्त्री का दर्शन करने पर-

ॐ घोरविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये।
नमामि वरदे देवि मुक्तमालाविभूषिते।।
रक्तधारासमाकीर्णवदने त्वां नमाम्यहं।
सर्वविघ्नहरे देवी नमस्ते हरवल्लभे।।

इस मन्त्र के पाठपूर्वक भैरवी के उद्देश्य से प्रणाम कर मन्त्र जप करना होगा--

एतेषां दर्शनेनैव यदि नैवं प्रकुर्वते।
शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य तस्य सिद्धिर्न जायते।।

यदि कोई साधक इन समस्त का दर्शन कर विधानरूप कार्य नहीं करता है, तब वह शक्तिमन्त्र से सिद्धिलाभ नहीं कर सकता है।

यहाँ तंक कुलाचार के सम्बन्ध में जो विचार हुआ, कुछ पाठकों का धैर्य टूट सकता है। क्योंकि कुछ लोग इसे निरर्थक बाह्याड़म्बर मान सकते हैं। किन्तु समाहित चित्त से चिन्तन करने पर देखेंगे कि इन सब सामान्य विषयों में गंभीर ज्ञान का आभास निहित है। जो त्रिसन्ध्या करके अथवा नमाज में जाकर निर्दिष्ट समय पर घड़ी देखकर अथवा सप्ताह में एक दिन चर्च में जाकर धर्मानुष्ठान की पराकाष्ठा का प्रदर्शन करते हैं, वे इसकी मर्मोपलब्धि किस प्रकार कर सकते हैं? साधक जितनी ही उन्नति करेगा, उतना ही अधिक समय

T

भगवान् के ध्यान में तन्मय रहेगा। इसी से शास्त्रकारगण जितने अधिक समय तक साधक का मन इष्टदेवता के चरणों में लगा रहे, उसका उपाय कर दिए हैं। इसी कारण पूर्वोक्त वृक्ष, पशु, पक्षी, देखने पर ही साधक अपने इष्टदेवता को स्मरण कर प्रणाम करें । विशेषतः ऋषिओं ने इन सब पशु, पक्षी, वृक्षादि के अन्दर विशेषशक्ति का भी परिचय पाया है और तब समस्त प्राणियों को देखने से ही भगवान् की बात मन में आएगी, तब साधक सिद्धावस्था में उपनीत होता है। इसी से वैष्णव साधकों ने कहा है- "जहाँ जहाँ नेत्र पड़ता है वहाँ-वहाँ हरि स्फुरित होते हैं।"

कुलाचारी साधक शक्ति-अंश-सम्भूता रमणी के साथ किस प्रकार व्यवहार करें, इस समय उसी का विचार किया जाय। पाठक! उसके पढ़ने से समझ पा सकेंगे कि तन्त्रोक्त कुलाचार की साधना मद्यादिपान कर रमणी के साथ रंग करना नहीं है, वह–

रमणी को जननीत्व में परिणत करने का कौशल मात्र है। तन्त्रकारों ने समझाया था कि वेद -पुराणानुयायियों के उपदेश मत है रमणी की आसंगलिप्साका परित्याग करना जीवके लिए दुःसाध्य है, वह नशा - वह आकुल तृष्णा, जीव चाहने पर भी नहीं छोड़ सकेगा। कारण जीवमात्र ही रमणी की आविष्ट शक्ति से अनुप्राणित है। इसलिए सकौशल रमणी की परिचर्या कर उसके शरणागत हो उसके साथ आत्मसम्मिश्रण कर प्रकृति का कोमल बाहु-बन्धन छिन्न करना होगा। मायारूपिणी रमणी को जय न कर पा सकने पर आध्यात्मिक राज्य में एक पद भी अग्रसर होने का उपाय नहीं है। जीव के साध्य नहीं कि घृणा अथवा अन्य उपाय से रमणी के आकर्षण से अपनी रक्षा कर सके। देखा जाता है कि केवल शिशु बालक ही एकमात्र अपने आयत्त में रमणी को रख सकता है। बालक के समीप रमणी की समस्त माया

और कौशल व्यर्थ हुआ है। रमणी शिशु की दासी होकर सर्वदा उसके सुख-स्वास्थ्य के लिए व्यस्त रहती है। जननी सन्तान को छाती में लेकर जगत् को भूल जाती है; सन्तान को देखने से ही स्नेह-रस में अभिषिक्त हो सयत्न अंक में उठा लेती है। उस समय कोई अभिमान का भाव नहीं रह जाता। सुन्दरी, युवती अथवा रसवती किसी भी प्रकार बालक के लिए आदरणीय नहीं है। इसी से तन्त्रशास्त्रकार ने रमणी को घृणा न करके उसे जननी का स्थान दिया है। रमणी को जननीत्व में परिणत करके आध्यात्मिक राज्य के दुर्गम पथ के प्रधान विघ्न को अपसारित कर डाला है। चिन्तनशील पाठक भक्ति-नम्रहृदय से तन्त्रशास्त्र का विचार करने से हमलोगों के वाक्य की सार्थकता को उपलब्ध कर विस्मय से अभिभूत होंगे। हमने तन्त्र सम्बन्ध में नीचे किञ्चित् आभास दिया है। प्रथम तन्त्र ने कहा है-

स्त्रीसमीपे कृता पूजा जपश्च परमेश्वरि ।
कामरूपाच्छतगुणं समुदीरितमव्ययम् ।।

स्त्री के समीप जो पूजा की जाती है, वह कामरूपापेक्षा सौगुना अधिक और अक्षय फलप्रद है।

इसलिए रमणी को जगज्जननी का अंश समझकर उसके समीप में पूजादि का अनुष्ठान विवृत है। कुलाचारी का रमणी के सम्बन्ध में पवित्रभाव की रक्षा के लिए किस प्रकार आदेश है, तन्त्रशास्त्र से उसका सारांश उद्धृत किया हूँ।

कुलाचारी साधक सर्वभूत के हितानुष्ठान में नियत नियुक्त रहेगा। नैमित्तिक कर्मका परित्याग कर नित्यानुष्ठान में तत्पर रहेगा। अपने इष्टदेवता के चरणों में समस्त कर्मफल अर्पण करेगा। मन्त्रार्चन में अश्रद्धा, अन्य मन्त्र पूजा, कुलस्त्री निन्दा, स्त्रियों के प्रति क्रोध और उन पर प्रहार इन समस्त कार्यों का बुद्धिमान् व्यक्ति परित्याग करें।

T

समस्त जगत् को स्त्रीमय देखे। अपने को भी स्त्रीमय देखें। ज्ञानवान् व्यक्ति चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय, भोज्य, गृह, सुख की सभी वस्तु सर्वदा युवतीमय समझेंगे। युवती रमणी के दर्शन करने पर समाहित हृदय से प्रणाम करेंगे। यदि दैवात् कुल का दर्शन होता है, तब शीघ्र देवी के उद्देश्य से मानस गन्धादि द्वारा पूजा करके गुरुदेव को प्रणामपूर्वक "क्षमस्व" कह कर प्रार्थना करें। यहाँ तक कि कुत्सित, भ्रष्ट अथवा दुष्ट रमणी को भी नमस्कार कर उसे इष्टदेवता स्वरूप समझें। स्त्रियों के अप्रिय कार्यों को सभी प्रकार से परित्याग करें। स्त्रियों को देवतास्वरूप, जीवनस्वरूप और भूषणस्वरूप समझें। सर्वदा रमणी के समभिव्याहार में रहें। शक्ति ही शिव, शिव ही शक्ति, ब्रह्माशक्ति विष्णुशक्ति, इन्द्रशक्ति, रविशक्ति, चन्द्रशक्ति, ग्रहगण शक्तिस्वरूप- अधिक क्या कहा जाय- यह समस्त ही शक्ति का स्वरूप है। इसलिए कुत्सित ढंग से कभी भी स्त्री का दर्शन न करें। कामभाव से स्त्री के अंगों का दर्शन करना जगज्जननी का अपमान है। कारण–

यस्या अङ्गे महेशानि सर्वतीर्थानि सन्ति वै ।

नारी के अंगों में सभी तीर्थ वास करते हैं, इसलिए नर-नारी पवित्र तीर्थ स्वरूप हैं।

शक्तौ मनुष्यबुद्धिस्तु यः करोति वरानने ।
न तस्य मन्त्रसिद्धिः स्याद्विपरीतं फलं लभेत् ।।

-उत्तर तन्त्र

जो साधक नारीरूपा शक्ति को मनुष्य समझता है,उसकी मन्त्रसिद्धि नहीं होगी। वरन् विपरीत फललाभ करेगा।

शक्त्याः पादोदकं यस्तु पिवेद्भक्तिपरायणः ।
उच्छिष्टं वापिभुञ्जीत तस्य सिद्धिरखण्डिता ।।

-निगम कल्पद्रुम

जो कुलाचारी भक्तियुक्तचित्त से नारी का पादोदक और भुक्तावशेष भोजन करता है, उसकी सिद्धि का कोई खण्डन नहीं कर सकता है।

अतएव नारी को जगदम्बा की विशेष शक्ति का प्रकाश समझकर सर्वदा भक्ति और श्रद्धा करें। भ्रम से भी नारी की निंदा या नारी पर प्रहार न करें। स्त्रीमूर्ति के अन्दर श्रीश्रीजगन्माता स्वयं रहती हैं, यह बात स्मरण न रखकर भोग्य वस्तु विशेष के रूप में सकामभाव से स्त्रीशरीर को देखने से श्रीश्रीजगन्माता की अवमानना होती है और इससे मनुष्य का अशेष अकल्याण आकर उपस्थित होती है। इससे सभी स्त्रीमूर्ति साक्षात् जगदम्बा की ही मूर्ति हैं। सभी जगन्माता की जगत्पालनी और आनन्ददायिनी शक्ति का विशेष प्रकाश है। इससे दुर्गासप्तसती में देवताओं ने कहा है-

विद्याः समस्तास्तव देवि! भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः ।।

-मार्कण्डेय-पुराण

हे देवि! तुम्हीं ज्ञानरूपिणी हो, जगत् की जितनी श्रेष्ठ कनिष्ठ विद्याएँ हैं- जिससे लोगों का अशेष प्रकार से ज्ञानोदय हो रहा है- इन सभी में तुम्हीं प्रकाशित हो; तुम्हीं जगत् की सभी स्त्रीमूर्ति के रूप में वर्तमान हो। तुम अतुलनीय हो, वाक्यातीता हो- स्तव करके तुम्हारे अनन्तगुण का उल्लेख कौन, कब किया या कर पाएगा?

किन्तु हाय! जान-बूझकर कितने लोग श्रीजगन्माता का विशेष प्रकार से आधाररूपिणी स्त्रीमूर्ति को हीन-बुद्धि से कलुषित नेत्र से निरीक्षण कर दिन में शत सहस्र बार उनकी अवमानना करते हैं। कितने व्यक्ति देवी-बुद्धि से स्त्री शरीर को देखकर यथायथ सम्मान देकर हृदय में आनन्द अनुभव करने और कृतार्थ होने के लिए उद्यम

करते हैं? पशुबुद्धि से स्त्री शरीर का अवमानना कर भारत दिन-दिन अध:पतन की ओर जा रहा है।

पाठक! समझे, तन्त्र रमणी-संग के रंग में व्यभिचार-स्रोत वृद्धि करने की शिक्षा नहीं देती है। जो शास्त्र अपने तक को स्त्रीमय भावना करने को कहता है, उसके द्वारा पाशव भाव का विस्तार किस प्रकार होगा? प्रवृत्तिपूर्ण मानव स्थूल रूप-रसादिका थोड़ा बहुत भोग करेंगे ही करेंगे परन्तु यदि किसी तरह उनकी भोग वस्तु के भीतर ठीक-ठीक आन्तरिक श्रद्धा का उदय कर दिया जाय– तब वह कितना भोग करेगा। इस तीव्र श्रद्धाबल से स्वल्पकाल में ही संयमादि आध्यात्मिक भाव का अधिकारी होगा, इसमें सन्देह नहीं है। इसी से तन्त्र कुलाचार अनुष्ठान विषय में सतर्ककर साधक को कहते हैं-

अर्थाद्वा कामतो वापि सौख्यादपि च यो नरः ।
लिंगयोनिरतो मन्त्री रौरवम् नरकं व्रजेत् ।।

–कुमारीतन्त्र

जो व्यक्ति कोई प्रयोजन सिद्धिं के निमित्त, सुख के निमित्त अथवा काम के वश स्त्री संसर्ग में निरत होता है, उसका रौरव नरक में पतन होता है।

और भी कोई क्या कहेगा, तन्त्र इस देश में व्यभिचार की शिक्षा देता है? यदि तुम समझे बिना अपने मतलब का सिद्धि कर लेते हो, तो क्या यह दोष शास्त्र का है? जब शक्ति संचय करके साधक उसको उपदेश देगा, तब उसको कन्यास्वरूपा समझेगा और पूजा के समय माता समझेगा। अन्यान्य उपचारों के सम्बन्ध में भी इस प्रकार का रहस्य निहित है। रमणी को लेकर अन्य नाना प्रकार की साधना की भी विधि है। किन्तु वे अप्रकाश्य होने के नाते विचारित नहीं हुई। विशेषत: काम-कामना कलुषित जीवन उसे न समझकर कुसंस्कार के भय से

नाक सिकोड़ कर बैठेंगे इसीलिये निरस्त हुआ हूँ।[१]

कुलाचारी साधक के महामन्त्र की साधना के विषय में दिक्‌काल-नियम, जप, पूजा अथवा बलि का काल-नियम कुछ भी नहीं है, ये सब यथेच्छाभाव से सम्पन्न करें। वस्त्र, आसन, देह, गृह, जल प्रभृति शोधन की आवश्यकता नहीं, परन्तु मन जिससे निर्विकल्प हो, उसी विषय में चेष्टा करें। साधक व्यर्थ समय नष्ट न करें। परन्तु देवतापूजा, जप, यज्ञ और स्तव-पाठादि द्वारा समय यापन करें। जप और यज्ञ सभी काल में प्रशस्त हैं, यह जप-यज्ञ सभी देशों और सभी पीठों में कर्त्तव्य हैं, इसमें सन्देह नहीं। मानसिक स्नानादि, मानस शौच, मानसिक जप, मानसिक पूजा, मानसिक तर्पण प्रभृति दिव्यभाव के लक्षण हैं। कुलाचारी के पक्ष में दिवा, रात्रि, सन्ध्या अथवा महानिशा[१] आदि कहीं भी कुछ विशेष नहीं, सभी समय ही शुभ है। स्नान किये बिना अथवा भोजन कर लेने पर भी सदा देवी की पूजा करें। महानिशा काल में अपवित्र प्रदेश में भी पूजा करके मन्त्र जप किया जा सकता है। जो कुलाचारी इस निखिल जगत् को शक्तिरूप में नहीं देख सकता है, वह नरकगामी होता है। निर्जन प्रदेश में, श्मशान में, विजनवन में, शून्यागार में, नदीतीरपर, एकाकी निःशंक हृदय से सदा विहार करें। कुलवार, कुलाष्टमी, विशेषतः चतुर्दशी तिथि में

---

१. मेरे द्वारा प्रणीत 'ज्ञानीगुरु' ग्रन्थ में स्त्री-पुरुषसम्बन्ध में आध्यात्मिक तत्त्व 'नाद-बिन्दुयोग' शीर्षक निबन्धमें विशद् कर लिखा गया है और 'प्रेमिकगुरु' ग्रन्थ में श्रृंगार-साधना प्रभृति गुह्यतत्त्वका विवरण प्रस्तुत किया गया है। 'प्रेमिकगुरु' ग्रन्थ में श्रृंगार-साधना प्रभृति गुह्यतत्त्वका विवरण प्रस्तुत किया गया है।

१. रात में दो प्रहर के बाद दो मुहूर्त्त तक महानिशा, यथा--

अर्द्धरात्रात् परं यच्च मुहूर्त्तद्वयमेव च।
सा महारात्रिरुद्दिष्टा तद्दण्डमक्षयन्तु वै।।

कुल-पूजा अतीव प्रशस्त है। कुलवार, कुलतिथि और कुलनक्षत्र में पूजा करने से शीघ्र ही अभीष्ट वर लाभ कर सकता है। अतएव-

एवं कुलवारादिकं ज्ञात्वा साधकः कर्म कुर्यात् ।

साधक कुलवारादि से परिचित होकर कर्मानुष्ठान करें। कुलमार्ग सर्वदा गोपन रखें। निर्जन स्थान पर ही कुलकर्म का अनुष्ठान करना होगा, लोगों के समक्ष करना विधेय नहीं। यहाँ तक कि पशु-पक्षी के समक्ष भी कुलकार्य का अनुष्ठान करना शास्त्रद्वारा निषिद्ध है। कारण प्रकाश होने पर सिद्धिकी हानि होती है। कुलाचार प्रकाश करने से मन्त्र-नाश, कुल हिंसा और मृत्यु हो सकती है। यथा–

प्रकाशान्मन्त्रनाशः स्यात् प्रकाशात् कुलहिंसनम् ।
प्रकाशान्मृत्युलाभः स्यान्न प्रकाश्यं कदाचन ।।

-नीलतन्त्र

अतएव साधक का कभी कुलाचार प्रकाश करना कर्त्तव्य नहीं है। वरन् कभी पूजात्याग करेगा, तथापि आचार व्यक्त न करें। यथा–

वरं पूजा न कर्त्तव्या न च व्यक्तिः कदाचन।

पञ्च-मकार से काली-साधना

शक्तिपूजा के प्रकरण में मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन-ये पञ्चतत्त्व साधन-स्वरूप प्रसिद्ध है। पञ्चतत्त्वों के व्यतिरेक होने से यह पूजा प्राणनाशकारी हो सकती है; विशेषतः उसने साधक की अभीष्ट सिद्धि होना तो दूर रहे पद-पद पर भयानक विघ्न घटता है।

शिला में शस्यबीज बोने से जिस प्रकार अङ्कुर उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार पञ्चतत्त्व वर्जित पूजा से कोई फल प्राप्त नहीं होता। आदिदेव महादेव ने कहा है–

कुलाचारं विना देवि शक्तिमन्त्रो न सिद्धिदः ।
तस्मात् कुलाचाररतः साधयेच्छक्तिसाधनम् ।।

-महानिर्वाणतन्त्र

हे देवि! कुलाचारव्यतिरेक शक्तिमन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता। कुलाचारमें रत रहकर शक्तिसाधना करनी चाहिए।

पञ्च-मकार की साधना का क्रम इस प्रकार है–

साधक प्रातःकृत्यादि नित्यकर्म समापनपूर्वक गोपनीय गृह में कुशासन अथवा कम्बलासन विस्तृत कर अथवा उत्तर दिशा होकर स्कन्ध, मस्तक, मेरुदण्ड प्रभृति सरल ढंग से रखकर स्थिररूप में अपने-अपने अभ्यस्त किसी भी आसनमें (सिद्धासनादिमें) बैठें। प्रथमतः अपने मस्तक में शुक्लशतदल कमल में गुरुदेव का ध्यान करते हुए प्रार्थना और प्रणाम करें। बाद में "हूँ" मन्त्र उच्चारण पूर्वक इड़ा और पिंगला की श्वासवायुको एकत्र कर धीरे-धीरे वायु आकर्षित कर संकोचपूर्वक "हँस" मन्त्र उच्चारण कर कुम्भक करें। यही कुलाचारी की **मत्स्यसाधना** है। इस मत्स्यसाधनासे कुल-कुण्डलिनीशक्तिरूपा कालीदेवी जगकर उर्ध्वगमनोन्मुखी होंगी।

बादमें कुण्डलिनीशक्ति को श्वासके सहारे हृदयस्थ, अनाहतपद्ममें लाकर अन्तर्यागकी प्रणाली से पूजा, जप और होमकार्य सम्पादन करें। बादमें चिन्तन करें कि सहस्रार-महापद्म-कर्णिकाके भीतर पारदतुल्य स्वच्छ बिन्दुरूप शिवके स्थान है, यही कुलाचारी की **मुद्रासाधना** है।

उक्त शिव का भवन सुख-दुःख-परिशून्य और सर्वकालीन फलपुष्पालंकृत स्वर्गीय तरु-परिशोभित है। उक्त भवनाभ्यन्तरमें सदाशिवका

मनोहर मन्दिर है। इस मन्दिर के भीतर एक कल्पपादप है। यह पादप पञ्चभूतात्मक है; ब्रह्म और तीन गुण इसकी शाखा, चारों वेद इसके श्वेत, रक्त, पीत और कृष्णवर्ण पुष्प हैं। उक्त प्रकार के कल्पतरुका ध्यान करके इसके अधोभागमें रत्नवेदिका उसके ऊपरके भागमें रत्नालंकृत, सुगंध मन्दारपुष्प-विनिर्मित पर्यङ्क और उसके ऊपर के भाग में विमल-स्फटिकधवल, सुदीर्घ भुजशाली, आनन्द-विस्फारित नेत्र, स्मेरमुख, नानारत्नालंकृतदेह, कुण्डलालंकृत-कर्ण, रत्नहार और लोहितपद्मस्त्रक्‌परिशोभित-वक्षःस्थल, पद्मपलाशत्रिलोचन, रम्यमंजीरालंकृतचरण, शब्दब्रह्ममयदेह– इस प्रकार साधक देवादिदेव शिवका ध्यान करें। वे शब्दरूपके सदृश निरीह हैं, उनका कोई कार्य नहीं है। बाद में हृत्पद्मसे षोडशीतुल्य स्थिरयौवना पीनोन्नतपयोधरशालिनी, सर्वविध अलंकारपरिशोभिता, पूर्णशशधर-सुन्दरमुखी, रक्तवर्णा, चञ्चलनयना, नानाविध रत्नालंकृता नूपुरयुक्तपाद-पद्मा, किंकिनीयुक्त-कटिदेशा, रत्नकंकणमंडितभुजयुग-शालिनी, कोटि-कन्दर्प-सुन्दर-विग्रहा, मृदु-मधुरमन्दहास्ययुक्त-वदना इष्टदेवी को सहस्रारमें शिवजी के लिए लाएङ्गे। बादमें चिन्तन करें, पराशक्ति काम-समुल्लासविहारिणी रूपवती भगवतीदेवी के मुखारविंदके गंध से निद्रित शिवको प्रबोधित करके उनके समीप में बैठकर शिवका मुखपद्म चुम्बन कर रही हैं। इस प्रकार ध्यानकालमें साधक समाहित चित्तसे और मौनी होकर चिन्तन करें। यही कुलाचारीकी **मांस-साधना** है।

उसके बाद साधक चिन्तन करें कि देवी शिवजीके सहित आलिंगिता होकर स्त्री-पुरुष सदृश संगमासक्त हुई हैं। इस समय सुधी व्यक्ति अपने को शक्ति सहित अभिन्न भावना कर अपनेको आनन्दमय और परम सुखी समझें। यही कुलाचारीकी **मैथुनसाधना** है।

इसके बाद जिह्वाग्रद्वारा तालु-कुहर रोध करते हुए स्त्री-पुरुषके

सदृश शिवशक्ति के शृंगार-रस-पूर्ण विहार से जो सुधाक्षरण हो रहा है, उसी सुधाधारा के द्वारा सर्वांग प्लावित हो रहा है, इस प्रकार ध्याननिविष्ट होकर रहें। यही कुलाचारी की **मद्यसाधना** है।

इसी समय साधककी अवस्था नशा सदृश हो जाती है-शरीर-सिरमें चक्कर आने लगता है। इससे निस्तरंगिणी अर्थात् निर्वात जलाशय सदृश निश्चला समाधि उत्पन्न होगी। नारीसहवास के समय शुक्रबहिर्गमन-समयपर शरीर और मनमें जिसप्रकार अनिर्देश्य आनन्द का अनुभव होता है और अव्यक्तभाव बना रहता है, साधक समाधिकाल में उसकी अपेक्षा कोटिकोटि गुण अधिक आनन्द अनुभव करता है। शरीर और मन के जो अव्यक्त और अपूर्व भाव हैं– वह व्यक्त करने में असमर्थ है।

बादमें इसी प्रकार दिव्यकुलामृत पान कराकर फिर कुण्डलिनी को कुलस्थानमें (मूलाधारपद्मस्थ ब्रह्मयोनिमण्डलमें) लाएँगे। बार-बार इसी प्रकार करना होगा। यथा-

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पतितो धरणीतले ।
उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।।

–कुलार्णवतन्त्र

इस प्रकार बार-बार कुण्डलिनीशक्ति को कुलामृत पान कराने से साधक का फिर पुनर्जन्म नहीं होता है।

पाठक! इस मद्यके नशासे बार-बार नर्दमा पर गिरना नहीं है। मूलाधारसे कुण्डलिनीका बार-बार सहस्रारमें गमन और कुलामृत पान, यही साधना सर्वश्रेष्ठ है; इसके अनुष्ठान में इस प्रकार कोई भी विषय नहीं है, जिससे सिद्धि की उपलब्धि नहीं की जा सकती है। इसीसे तन्त्रमें कहा गया है–

मकारपञ्चकं कृत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।

पञ्च-मकार की साधनासे साधकका फिर जन्म नहीं होता है। उक्तविध साधक के गंगातीर्थ में अथवा चाण्डालालय में शरीर त्याग करने पर भी निश्चय ब्रह्मपद की प्राप्ति होगी। कारण–

एवमभ्यस्यमानस्तु अहन्यहनि पार्वति।
जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात्।।

-शाक्तानन्दतरंगिणी

उक्त साधना में अभ्यस्त होने से साधक जरामरणादि दुःख और भव बन्धनसे मुक्ति लाभ करता है।

इस प्रकार प्रकृति-पुरुषयोग अथवा शिव-शक्ति का मिलन ही तन्त्रोक्त पञ्च-मकार की कालीसाधना है। किन्तु यह अतिसूक्ष्म प्रणाली है; तन्त्रमें स्थूल पञ्च-मकार की प्रणाली है। पर साधना के सूक्ष्मतत्त्वों में उपनीत न हो सकने पर प्रकृत-फल को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसी से तान्त्रिक साधक कहते हैं–

भाङ्गिते तादेर मनोविकार, अस्थि चर्म करेछि सार,
याग यज्ञ व्रत नियम करेछि कत प्राणपणे।
गियाछि श्मशाने, भस्मभूषित करेछि गात्र,
बसेछि चितार अंगे, सार करेछि महापात्र,
तातेओ पिता नाहिं भूले, मा-टि-मोर गा-टि न तोले,
बड़ निरुपाये पड़ेछि रे भाई, कूल पाब बल केमने।।

कुल पाने का उपाय क्या है?

'श्रीनाथ क' न सेई जाने मिलन, अन्तर्यागे जेगे ये जन,
परमतत्त्व ज्ञानेर ध्याने रोध करे पवने... इत्यादि।

तब देखें पावनरोध करते हुए अन्तर्याग की सूक्ष्मसाधना ही प्रकृत साधना है। इससे साधक की सर्वाभीष्ट सिद्धि होती है। तब भोगासक्त जीव को स्थूल के भीतर से ही जाना होता है। इसी से तन्त्र

में स्थूल पञ्च-मकार भी दिखाई देता है। स्थूल-पञ्च-मकार से काली साधना इस प्रकार है।

साधक यथाविधि प्रातःकृत्य एवं प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल की वैदिक और तांत्रिकी संध्या समाप्त कर भक्तियुक्तचित्त से अवस्थान करें। इसके बाद यथासमय देवी के चरण का स्मरण करते-करते पूजामण्डप में प्रवेश करके अर्घ्यजल से गृह विशुद्ध करें। बाद में साधक दिव्यदृष्टिद्वारा और जलप्रक्षेप से गृहगत सभी विघ्नों का विनाश करें। अगरु, कर्पूर और धूपादि द्वारा गृह गन्धमय करें। बाद में अपने बैठने के लिए बाहर से चतुरस्र और भीतर से त्रिकोणाकार मण्डल लिखकर अधिष्ठात्री देवता कामरूपा की पूजा करे। उसके बाद मण्डल के ऊपर वाले भाग में आसन विछाकर-

"क्लीं आधारशक्तये कमलासनाय नमः" इस मन्त्र से आसन पर एक पुष्प प्रदान करके वीरासन में बैठे।

उसके बाद प्रथम **"ॐ ह्रीं अमृते अमतृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतमाकर्षयाकर्षय सिद्धिं देहि कालिकां मे वशमानय वशमानय स्वाहा"** इस मन्त्र से विजया (भाङ्ग) को शोधन करके उसी सिद्धि (भाङ्ग) पात्र के ऊपर सातबार मूलमंत्र जप करके आवाहनी, स्थापनी, सन्निरोधिनी और योनिमुद्रा का प्रदर्शन कराएँ। उसके बाद तत्त्वमुद्रा की सहायता से सहस्रदल कमल में विजया द्वारा गुरु के उद्देश्य से तीन बार तर्पण करें। बाद में हृदय में मूलमन्त्र जप करके **"ऐं वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्ववशंकरि स्वाहा"** इस मन्त्र के पाठ पूर्वक कुण्डलिनी के मुख में इस विजया के द्वारा आहुति प्रदान करें।

उसके बाद साधक बाएँ कान के ऊपर **"ॐ श्रीगुरवे नमः"** दाहिने कान के ऊपर **"ॐ गणेशाय नमः"** और ललाट पर **"ॐ सनातनी कालिकायै नमः"** कहकर प्रणाम करके अपने दाहिने भाग

में पूजा का द्रव्य और वाम भाग में सुवासित जल और कुलद्रव्यादि रखें। बाद में यथाविधि अर्घ्य स्थापित करके जल से पूजाद्रव्यादि प्रोक्षण और अभिसिञ्चन करें। "रं" इस वह्निबीजद्वारा वह्नि को ढकें। उसके बाद करशुद्धि के लिए पुष्प-चन्दन ग्रहण पूर्व्वक "क्रीं" मन्त्र उच्चारण करते हुए हाथ से घर्षण और प्रक्षिप्त कर "फट्" मन्त्र से छोटिका (तुड़ी) द्वारा दिग्बन्धन करें। उसके बाद भूतशुद्धि द्वारा देवता का आश्रय कर मातृक़न्यास करें।

प्रथमतः कर जोड़ कर **"अस्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्मऋषिर्गायत्री-च्छन्दो मातृकासरस्वतीदेवता हलो बीजानि स्वरः शक्तयो मातृका-न्यासे विनियोगः"** इस मन्त्र पाठपूर्वक मस्तक पर हाथ रखकर- ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुख में ॐ गायत्रीछन्दसे नमः, हृदय पर- ॐ मातृका सरस्वत्यै देवतायै नमः, गुह्ये- व्यजंनेभ्यो बीजेभ्यो नमः, पाद पर- ॐस्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः, बाद में अं कं खं गं घं ङं आं अंगुष्ठाभ्यां नमः- इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा'- उँ टं ठं डं ढं णं ऊँ मध्यमाभ्यां वषट्- एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्याम् हूँ- ओं पं फं बं भं मं औं कन्ष्ठिाभ्यां वौषट्- अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः करतल करपृष्ठभ्यामस्त्राय फट्- इस प्रकार साधक करन्यास करेगा। बाद में अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः-- इं चं छं जं झं अं ईं शिरसे स्वाहा - उं टं ठं डं ढ णं ऊँ शिखायै वषट्- एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हूँ- ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्- अं यं रं लं वं षं सं हं क्षं अः करतलपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् इस प्रकार साधक अंगन्यास करें।

उसके बाद मातृका सरस्वती का-

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोः पन्मध्यवक्षः स्थलां ।
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुंगस्तनीम् ।।

T

मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलसं विद्याश्च हस्ताम्बूजैः ।
विभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ।।

इस ध्यान का पाठ करके षट्चक्र में मातृकान्यास करें। भ्रूमध्य में हं क्षं, कण्ठिस्थित षोडशदल में - अं आं इं ईं उँ ऊँ ऋं, ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः, हृदयस्थित द्वादशदल में- कं खं गं घं चं छं जं झं टं ठं, नाभिस्थित दशदल में डं टं णं तं थं दं धं नं पं फं, लिंग मूल के षड्दल में– बं भं मं यं रं लं और गुह्यदेश के चतुर्दल में– वं शं षं सं इस रूप से न्यास करें। बाद में ललाट, मुख, चक्षु, कर्ण नासिका, गण्डद्वय, ओष्ठ, दन्त, उत्तमाङ्ग, मुखविवर, बाहुसंधि और अग्रस्थान, पदसंधि और अग्रस्थान, पार्श्वदेश, पृष्ठ, नाभि, जठर, हृदय से आरम्भ करके दक्षिण बाहु और दक्षिण पद और हृदय से आरम्भ कर वाम बाहु और वाम पद– इस प्रकार जठर और मुख में यथाक्रम से बहिर्न्यास करें।

उसके बाद 'ह्रीं' बीज द्वारा, १६/६४/३२ संख्या में अनुलोम-विलोमक्रम से तीनबार प्राणायाम करें। उसके बाद अपने-अपने कल्पोक्त क्रम से ऋष्यादिन्यास करें। इसके बाद हृदयपद्म में आधारशक्ति, कूर्म, शेष, पृथ्वी, सुधाम्बुधि, मणिद्वीप, पारिजात-वृक्ष, चिन्तामणि-गृह, मणिमाणिक्यवेदी और पद्मासन न्यास करें। उसके बाद दक्षिणस्कन्ध में, वामस्कन्ध में, दक्षिणकटि और वामकटि में धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यका क्रमशः न्यास करें। बादमें आनन्दकन्द, सूर्य, सोम, हुताशन और आद्यवर्ण में अनुस्वार योग करके सत्त्व, रजः और तमः और केशरकर्णिका और पदसंमुदाय में मंगला, विजया, भद्रा, जयन्ती, अपराजिता, नन्दिनी, नारसिंही और वैष्णवी– इन आठ पीठनायिकाओं का न्यास करें। इसके बाद अष्टदल के आगे असिताङ्ग, रूरू, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, भयंकर, कपाली, भीषण और संहार इन अष्ट भैरवों

का न्यास करें। उसके बाद और एक बार पूर्व्वोक्त विधान से प्राणायाम करना होगा।

उसके बाद में गन्धपुष्प ग्रहण कर कच्छपमुद्रा में धारणपूर्व्वक वही हाथ हृदय में धारण करके–

ॐ मेघांगीं शशिशेखरां त्रिनयनां रक्ताम्बरां विभ्रतीं ।
पाणिभ्यामभयं वरञ्च विकसद्रक्तारविन्दस्थिताम् ।।
नृत्यन्तं पुरतो निपीय मधुरं माध्वीकमद्यं महा-
कालं वीक्ष्यं प्रकाशितानन्वरामाद्यां भजे कालिकाम् ।।

इस मन्त्रानुयायी ध्यान करें और ध्यान के पुष्प को अपने मस्तक में प्रदान करते हुए भक्तिभाव से साधक मानसोपचार से पूजा करें।

मानसपूजा और अन्तर्योग की प्रणाली इतिपूर्व वर्णित हैं; इसलिए इस स्थान पर फिर पुनरुल्लिखित नहीं हुआ है।

यथाविधि मानसपूजा समाप्त कर बाह्यपूजा करें। प्रथमतः विशेषार्घ्य स्थापित करें। अर्घ्यपात्र तीन भाग मद्य और एक भाग जल द्वारा पूर्ण करना होता है। विशेषार्घ्य स्थापित होने पर उसका किंचिन्मात्र जल प्रोक्षिणीय पात्र में प्रक्षिप्त करके उसी जल से अपने को और पूजाद्रव्यों को प्रोक्षित करें और जबतक पूजा समाप्त न हो जाय, तब तक विशेषार्घ्यस्थानान्तरित नहीं करें। उसके बाद मन्त्र लिखकर कलस स्थापित करें। साधक अपने वाम भाग में एक षट्कोणमण्डल लिखकर उसमें एक शून्य दें, उसके बाहर गोलाका मण्डल लिखकर उसके बाहर भाग में एक चतुष्कोण मण्डल अंकित करें। उसको सिन्दूर, रजः या रक्तचन्दनद्वारा लिखना होगा। बाद में 'अनन्ताय नमः' इस मन्त्र से प्रक्षालित आधार उक्त मण्डल के ऊपर स्थापित कर "फट्" इस मन्त्र से प्रक्षालित कलस आधार के ऊपर स्थापित करें। कलस सुवर्ण,रजत, ताम्र, कांस्य अथवा मृत्तिका निर्मित होगी, बाद में

साधक "क्ष" से आरम्भ करके अकार पर्यन्त वर्ण में बिन्दु संयोग करके मूलमन्त्र पाठ करते-करते कलस को पूर्ण करें। बाद में देवी-भाव से स्थिरमना होकर आधारकुण्ड और उसमें अधिष्ठित मद्य के ऊपर वह्निमण्डल, अर्कमण्डल और सोममण्डल की पूजा करें। इसके बाद रक्तचन्दन, सिन्दूर, रक्तमाला और अनुलेपन से कलस को विभूषित करके "फट्" मन्त्र से कलस में ताड़ना "ह्रीं" मन्त्र से अवगुंठित और दिव्यदृष्टि द्वारा कलस दर्शन "नमः" मन्त्र से जल द्वारा सभी अभ्युक्षित और मूलमन्त्र से तीनबार कलस में चन्दन लेपन करें। बाद में कलस को प्रणाम कर उसमें रक्तपुष्प प्रदान करते हुए मद्य शोधन करें। प्रथमतः-

एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ।।
सूर्यमण्डलमध्यस्थे वरुणालयसम्भवे ।।
अमावीजमयि देवि शुक्रशापाद्विमुच्यसे ।।
वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्या व्यपोहतु ।।

इस मन्त्र का पाठ करके "**ॐ वां वीं वुं वैं वौं वः ब्रह्मशाप-विमोचितायै सुधादेव्यै नमः**" कहकर दसबार मन्त्र जप करें। बाद में "**ॐ शां शीं शूं शैं शौं शः शुक्रशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः**" इस मन्त्र का दसबार जप करें। बाद में "**ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः कृष्णशापं विमोचयामृतं स्रावय स्वाहा**" इस मन्त्र का दशबार जप करें। इसप्रकार शापमोचन कर समाहित हृदय से आनन्दभैरव और भैरवी की पूजा करें। बाद में कलस में उक्त देवदेवीद्वय के सामञ्जस्य और ऐक्यरूप में ध्यान करके अमृत संसक्ति हुआ है, ऐसी भावना करके उसमें बारह बार मूलमन्त्र का जप करें। बाद में देवबुद्धि

से मूलमन्त्र से मद्य के ऊपर तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान कर घण्टावादनपूर्वक धूप-दीप प्रदान करें।

बाद में मांस लाकर सम्मुख त्रिकोणमण्डल के ऊपर स्थापित कर "फट्" इस मन्त्र से अभ्युक्षित करते हुए पश्चात् "यं" वायुबीज से अभिमन्त्रित करें। बाद में कवच में अवगुण्ठित कर "फट्" इस मन्त्र से रक्षा करें, पश्चात् "वं" इस मन्त्र से धेनुमुद्रा द्वारा अमृतीकरण करके-

ॐ विष्णोर्वक्षसि या देवी शंकरस्य हृदय या च ।
मांसं मे पवित्रीकुरु तद्विष्णोः परमं पदम् ।।

यह मन्त्र पाठ करें। बाद में इस प्रकार मत्स्य और मुद्रा लाकर एवं उसे संशोधन करके-

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।।

इस मन्त्र का पाठ करके मत्स्य और-

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम् ।
ॐ तद्विप्रासो विपण्यवो जागृवांसः समिन्धते विष्णोर्यत् परमं पदम् ।।

इस मन्त्र का पाठकर मुद्राशोधन करें। अथवा केवल मूल-मन्त्र से पञ्चतत्त्व का शोधन किया जाता है, उससे कोई प्रत्यवाय नहीं होता है। किन्तु पञ्चतत्त्व के शोधन न करने से सिद्धि हानि होती है और देवी क्रुद्धा हो जाती है। यथा-**"संशोधनमनाचर्येति।"** *(श्रीक्रम)*

अनन्तर गुणशालिनी स्वकीया रमणी को (कारण, परकीया रमणी कलिकाल में ग्राह्य नहीं है, उससे परदार गमन का दोष होता है– यही तन्त्र का शासन है) लाकर **"ऐं क्लीं सौः त्रिपुरायै नमः इमां शक्तिं पवित्रीकुरु मम शक्तिं कुरु स्वाहा"** इस मन्त्र के पाठपूर्वक सामान्यार्घ्य जल से अभिषेक करें। यदि उनकी दीक्षा न हुई हो, तब उनके कान में माया-बीज सुना दें। पूजास्थान में कोई परकीया

शक्ति उपस्थित रहने पर उसकी भी पूजा करना कर्त्तव्य है।

इसके बाद पूर्व्वलिखित मन्त्र में एक त्रिकोण, उसके बाहर एक षट्कोणमण्डल और उसके बाहर चतुष्कोणमण्डल लिखें। बाद में षट्कोमण्डलका छ कोणों में **ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः** इन छः मन्त्रों में उनकी अधिष्ठात्री देवी की पूजा कर त्रिकोणमण्डल के ऊपर वाले भाग में प्रक्षालित पात्र रखकर–धूम्रा, अर्चि, ज्वालिनी, सूक्ष्मा, ज्वालिनी विस्फुलिंगिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला और हव्यकव्यवहा इस वह्निदशकला के प्रत्येक शब्द में चतुर्थी विभक्ति योग कर अन्त में "नमः" शब्द प्रयोग-पूर्व्वक उनकी पूजा करें। बाद में **"मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः"** इस मन्त्र से वह्निमण्डल की पूजा करें। उसके बाद अर्घ्यपात्र लाकर "फट्" मंत्र से विशोधित कर आधार पर स्थापित करते हुए वर्णबीज की पूर्व ही योजना कर सूर्य की तापिनी, धूम्रा, मरीचिः, ज्वालिनी, सुधूम्रा, सूक्ष्मज्वालिनि, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, सन्निरोधिनि, धरणी और क्षमा इन बारह कलाओं की अर्चना करें। उसके बाद **"अं सूर्य्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः"** यह मन्त्र पाठ कर अर्घ्यपात्र से सूर्यमण्डल की पूजा करें। बाद में साधक विलोम मातृकावर्ण और उसके अन्त में मूलमंत्र उच्चारण पूर्वक कलसस्थ सुराद्वारा विशेषार्घ्य जल से तीन भाग पूर्ण करें। बाद में षोडशी-बीजाश्रय से अन्त में चतुर्थ्यन्त नाम उच्चारण करके मन्त्र के अमृता, मानदा, पूजा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कांति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अलका, पूर्णा और पूर्णामृता इन षोड़श कलाओं की पूजा करें। बाद में **"ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः"** इस मन्त्र से अर्घ्यपात्रस्थ जल से सोममण्डल की पूजा करें। बाद में दूर्वा, अक्षत, रक्तपुष्प– इनको ग्रहण कर "श्रीं इस मन्त्र से निक्षेप करते हुए तीर्थका आवाहन

करें। उसके बाद कलस-मुद्राद्वारा अवगुण्ठन करके अस्त्र-मुद्राद्वारा रक्षण करें, पश्चात् धेनु-मुद्राद्वारा अमृतीकरण पूर्वक उसे मत्स्य मुद्राद्वारा आच्छादित करें। बाद में दस बार मूलमन्त्र जप करके–

अखण्डैकरसानन्दाकरे परसुधात्मनि ।
स्वच्छन्दस्फुरणामत्र निधेहि कुलरूपिणि ।।
अनंगस्थामृताकारे शुद्धज्ञानकलेवरे ।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि ।।
तद्रूपेणैकरस्यञ्च कृतार्घ्यं तत्स्वरूपिणि ।
भूत्वा कुलामृताकारमयि विस्फुरणं कुरु ।।
ब्रह्माण्डरससम्भूतमशेष - रससम्भवम् ।
आपूरितं महापात्रं पीयूषरसमावह ।।
अहन्तापात्रं भरितमिदन्तापरमामृतम् ।
परहन्तामये वह्नौ होमस्वीकारलक्षणम् ।।

इन पाँच मन्त्रों द्वारा सुरा अभिमन्त्रित करें। बाद में उसमें हर पार्वती जी का समानुराग ध्यान करके पूजान्त में धूप-दीप प्रदर्शन करें।

उसके बाद साधक घट और श्रीपात्र के मध्यस्थल में गुरुभोग और शक्तिपात्र स्थापित करें। योगिनीपात्र, वीरपात्र, बलिपात्र, आचमन-पात्र, पाद्यपात्र और श्रीपात्र, इन छ पात्रों में सामान्यार्घ्यस्थापना की प्रणाली से स्थापित करें। बाद में सभी पात्रों को तीन अंश मद्यद्वारा पूर्ण करके इन सभी पात्रों में माषप्रमाण शुद्धिखण्ड निक्षेप करें। उसके बाद बाएँ हाथ के अंगूठे और अनामिका की सहायता से पात्रस्थित सुरा और मांसखण्ड ग्रहणान्त में दाहिने हाथ से तत्त्वमुद्रा के द्वारा सर्वत्र तर्पण करें। प्रथमतः श्रीपात्र से परमविन्दु लेकर आनन्दभैरव और भैरवी के लिए तर्पण करें। बाद में गुरुपात्रस्थ सुराग्रहण में गुरुपंक्ति का तर्पण करें। बाद में शक्तिपात्र से मद्य ग्रहण कर अङ्ग और

आवरण देवताओं की अर्चना करें। उसके बाद योनिपात्रस्थित अमृत द्वारा आयुधधारिणी बद्धपरिकरा कालिकादेवी का तर्पणकर बटुकों को बलि प्रदान करें।

प्रथमतः साधक अपने वामभाग में सामान्य मण्डल रचनापूर्वक उसकी पूजा करके मद्यमांसादि मिश्रित सामिषान्न स्थापित करें। आगे वाङ्मया, कमला और बटुककी पूजा करके मण्डल की पूर्वदिशा में रख दें। इसके बाद **"यां योगिनीभ्यः स्वाहा"** इस मन्त्र से मंडल की दक्षिण दिशा में योगिनीगण के लिए और पश्चिम में क्षेत्रपालकगण के लिए बलि प्रदान करें। उसके बाद मण्डल के उत्तर में गणेश को बलि प्रदान कर मध्यस्थल में **"ह्रीं श्रीं सर्व्वभूतेभ्यः हूं फट् स्वाहा"** इस मन्त्र से सर्व्वभूतों के लिए बलि प्रदान करें और पूर्वोक्त प्रणाली से एक शिवा-भोग दें। यही पञ्च-मकार में कालीसाधना का चक्रानुष्ठान है।

उसके बाद चन्दन, अगरु और कस्तूरीबासित मनोहर पुष्प कूर्म्म-मुद्राद्वारा हाथ में धारण कर उसको अपने हृदय-कमल में स्थापित कर **"ॐ मेघांगीं..."** देवी का पूर्व्वोक्त ध्यान फिर से पाठ करें। बाद में सहस्रार नामक महापद्म में सुषुम्नारूप ब्रह्मवर्त्मद्वारा हृदयस्थित इष्टदेवता को लेकर बृहत् निःश्वासवर्त्म में उनको आनन्दित कर दीप से प्रज्ज्वलित दीपान्तर की तरह करस्थित पुष्प में देवी को स्थापित करते हुए यन्त्र में अथवा देवी प्रतिमा के मस्तक पर प्रदान करें। बाद में कृताञ्जलि होकर पाठ करें।

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ।।

उसके बाद आवहनी मुद्राद्वारा **'क्रीं कालिके देवी परिवारादिभिः सह इहागच्छ इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निरूध्यस्व मम पूजां गृहाण'** इस मन्त्रका पाठ करके देवी का

आवाहन करें। बाद में **'ॐ-स्थां स्थिं स्थिरा भव यावत् पूजां करोम्यहम्'** कहकर प्रार्थना कर देवता की प्राणप्रतिष्ठा करें।

"ॐ आं ह्रीं क्रों श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः प्राणा इह प्राणाः, ॐ आं ह्रीं क्रों श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः जीव इह स्थितः, ॐ आं ह्रीं क्रों श्रीं स्वाहा आद्याकाली देवतायाः सर्वेन्द्रियाणि, ॐ आं ह्रीं क्रों श्रीं स्वाहा आद्याकाली वाङ्मनश्चक्षुश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' इस प्राणप्रतिष्ठाका मन्त्र प्रतिमा होनेपर यथा स्थान में करें, नहीं तो यन्त्र मध्यमें तीन बार पाठ करके लेलिहान-मुद्राद्वारा प्राण-प्रतिष्ठा समापन करके कृताञ्जलिपुट में **'आद्ये कालि स्वागतन्ते सुस्वागतमिदन्तव'** इस मन्त्र का साधक पाठ करें। उसके बाद देवता की शुद्धि के लिये मूलमन्त्रोच्चारणपूर्वक विशेषार्घ्य जल से तीन बार प्रोक्षण करें। बाद में षडङ्गन्यास द्वारा देवता के अंगों में सकलीकरण कर आसन, पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क, स्नान, वसन, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, पुनराचमनीय, ताम्बुल, आचमन, नमस्कार इस षोड़शोपचार में भक्तिभाव से यथाविधि अर्चना करें। बाद में पञ्चतत्त्व निवेदन करना होगा।

प्रथमत: पूर्णपात्र हाथद्वारा धारण करके मूलमंत्र उच्चारणपूर्वक देवी कालिका को निवेदन करते हुए कृतांजलि होकर–

ॐ परमं वारुणीकल्पं कोटिकल्पान्तकारिणि ।
गृहाण शुद्धिसहितं देहिमे मोक्षमव्ययम् ।।

इस मंत्र से प्रार्थना करें। बाद में सामान्य विधानानुसार सम्मुख में मंडल लिखकर उसमें नैवेद्यपूर्ण पात्र संस्थापित करें। बाद में उसका प्रोक्षण, अवगुण्ठन, रक्षण और अमृतीकरण कर मूलमन्त्र द्वारा सातबार अभिमन्त्रित करते हुए अर्घ्यजल से देवी को निवेदन करें। प्रथम मूलमन्त्रोच्चारण कर **"सर्वोपकरणान्वितं सिद्धान्नम् इष्टदेवतायै नमः"**

कहकर **"शिवे इदं हविर्जुयस्व"** इस मन्त्र से पाठ करें। उसके बाद प्राणादि मुद्रा द्वारा **"प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा और व्यानाय स्वाहा"** इस मन्त्र का पाठ कर देवी को हवि प्रदान करें। बाद में बाँये हाथ से प्रफुल्लपंकजसदृश नैवेद्यमुद्रा का प्रदर्शन कराकर मूलमन्त्र से मद्यपूर्ण कलस पानार्थ निवेदन करें।

बाद में श्रीपात्रस्थ अमृतद्वारा तीन बार तर्पण करें। अवशेष में साधक मूलमन्त्र से देवी के मस्तक, हृदय, चरण और सर्वाङ्ग में पंच पुष्पाञ्जलि प्रदान करें।

उसके बाद कृतांजलिपुट में देवी के निकट **"तवावरणदेवान् पूजयामि नमः"** यह कहकर प्रार्थना करें। उसके बाद अग्नि, नैऋत्य, वायु, ईशान, सम्मुख और पश्चात् भाग में यथाक्रम षडङ्ग की पूजा करके गुरु, परमगुरु, परापरगुरु और परमेष्ठीगुरु इस गुरुपंक्ति[१] और कुलगुरु की अर्चना करें। बाद में अमृतद्वारा उनका तर्पण करें।

बाद में अष्टदल पद्म के दलमध्य में अष्टनायिका और दलाग्र में अष्ट भैरव की पूजा करनी होगी। उसके बाद आदि में 'ॐ' और अन्त में 'नमः' शब्द जोड़कर इन्द्रादि दशदिक्पाल की पूजा कर बाद में उनके अस्त्रों की पूजा करें। अन्त में सर्वोपरि देवी की पूजा करके समाहित चित्त से बलिदान करें।

प्रथमतः साधक देवी के आगे सुलक्षण पशु संस्थापित करके अर्घ्यजल से प्रोक्षित कर धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करते हुए छाग को **"ॐ छागपशवे नमः"** यह कहकर, इस मंत्रद्वारा क्रम से—गन्ध,

---

१. गुरुके गुरु उनके गुरु गुरुपंक्ति नहीं है। मन्त्रदाता-गुरु, मन्त्र-परमगुरु, पराशक्ति-परापरगुरु और परमशिव-परमेष्ठीगुरु, इस प्रकार तन्त्रशास्त्र ने गुरु पंक्तिका निर्देश किया है।

पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और जलद्वारा पूजा करें। अनन्तर पशु के कान में '**ॐ पशुपाशाय विद्महे विश्वकर्मणे धीमहि तन्नो जीवः प्रचोदयात्**' इस पापविमोचनी गायत्री को सुना दें।

बाद में खड्ग लेकर उसमें क्लीं-बीज से पूजा करके उसके अग्रभाग में वागिश्वरी और ब्रह्मा, मध्य में लक्ष्मी-नारायण की और मूल में उमा-महेश्वर की पूजा करें। अन्त में '**ॐ ब्रह्मविष्णुशिव-शक्तियुक्ताय खड्गाय नमः**'–इस मंत्र से खड्ग की पूजा करें। बाद में महावाक्य उच्चारणपूर्वक पशु उत्सर्ग करके कृताञ्जलिपुट में यथोक्त विधानानुसार '**तुभ्यमस्तु समर्पितम्**' इस मन्त्र का पाठ करते हुए पशुबलि प्रदान करके देवीभक्तिपरायण होकर तीव्र प्रहारसे और एक आघात से पशु को छिन्न करें। स्वयं अथवा सुहृद्वर्ग के हस्तसे पशुबलि होने का कर्त्तव्य है, शत्रुहस्त से संहार होना उचित नहीं है। बाद में कवोष्ण रुधिर बलि '**ॐ बटुकेभ्यो नमः**' इस मन्त्र से निवेदन करके सप्रदीप शीर्ष बलि देवी को निवेदन कर दें। केवल कुलाचारी साधक कुलकर्म के अनुष्ठान के लिये इस विधान से बलि दें। इसके बाद होमकार्य आरम्भ करें।

प्रथमतः साधक अपनी दाहिनी दिशा में बालुका द्वारा चतुर्हस्त-परिमित चतुष्कोण मण्डल रचना कर मूलमंत्र से निरीक्षण करके 'फट्' इस मंत्र से ताड़ित कर उक्त मंत्र से प्रोक्षण करें। बाद में स्थण्डिल में प्रादेश परिमित तीन प्रागग्र और तीन उदग्र रेखा रचित कर–प्रागग्र तीनों रेखाओं के ऊपर यथाक्रम से विष्णु, शिव और इन्द्र और उदग्र तीन रेखाओं के ऊपर यथाक्रम से ब्रह्मा, यम और चन्द्र की पूजा करें। उसके बाद स्थण्डिलमें त्रिकोणमण्डल की रचना कर उसमें "**हंसौः**" शब्द लिखें, बाद में त्रिकोण के बाहरी भाग में षट्कोण और उसके बाहरी भाग में वृत्त रचना कर बहिःप्रदेश में अष्टदल पद्म लिखें। बाद में मूलमंत्र

का पाठ कर प्रणवोच्चारणपूर्वक पुष्पांजलि प्रदान करते हुए होमद्रव्य मूलमंत्र द्वारा प्रोक्षित कर अष्टदल पद्म के बीज-कोष में मायाबीज के उच्चारण से आधारशक्ति की पूजा करें। बाद में यन्त्र के अग्निकोण से आरम्भ कर यथाक्रम चतुष्कोण धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की पूजा कर मध्यभाग में अनन्त और पद्म की पूजा करें। बाद में यथाविधि कलासहित सूर्य और सोममण्डल की पूजा कर प्रागादि केशर के सध्य में श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, स्फुलिंगिनी, रुचिरा और ज्वालिनी की यथाक्रम से पूजा करनी होगी।

उसके बाद साधक ऋतुस्नाता नीलकमललोचना वागीश्वरी को वागीश्वर के सहित वह्निपीठ में ध्यान करें। मायाबीज से उनकी पूजा करके बाद में यथाविधि अग्निवीक्षण करते हुए फट् मन्त्र से आवाहन करें। उसके बाद **"ॐ वह्नेर्योगपीठाय नमः"** यह मन्त्र पाठ कर अग्नि उद्धृत कर मूलमंत्र और कूर्चबीज (हूँ) का पाठ करें। इसके बाद **'क्रव्यादेभ्यः स्वाहा'** इस मंत्र के पाठपूर्वक क्रव्यादंश त्याग करें, बाद में बीजमंत्र से अग्निवीक्षण कर कूर्चबीज से वह्नि वेष्ठन करें। इसके बाद धेनुमुद्रा द्वारा अमृतीकरण कर हस्तंद्वारा अग्नि उद्धृत करते हुए प्रदक्षिण क्रम से उसको स्थण्डिलोपरि भ्रमित करें। बाद में जानु द्वारा तीन बार भूमि स्पर्श कर शिवबीज का चिन्तन करते हुए अपने मुख से योनि-यंत्रोपरि उसको स्थापित करना होगा। पश्चात् मायाबीज उच्चारण कर चतुर्थी विभक्ति के एकवचनान्त वह्निमूर्तिशब्दान्त में नमः योग करते हुए उसका और **'ॐ रं वह्निचैतन्याय नमः'** कहकर वह्निचैतन्य की पूजा करें।

उसके बाद मन ही मन नमो मन्त्र से वह्निमूर्ति और ब्रह्मचैतन्य की कल्पना करके **"ॐ चित्पिंगल हन हन दह दह पच पच सर्वं ज्ञापय ज्ञापय स्वाहा"** इस मंत्र से वह्नि प्रज्ज्वलित करें बाद में कृताञ्जलि पुट में–

ॐ अग्निं प्रज्ज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम् ।।

इस मंत्र को बोलकर अग्नि की वन्दना करें। बाद में वह्नि स्थापित कर कुशद्वारा स्थण्डिल आच्छादित करें। बाद में इष्टदेवता का नाम उच्चारित कर वह्निका नाम लेते हुए **"ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा"** इस मन्त्र से अग्नि की अभ्यर्चना और हिरण्यादि सप्तजिह्वा की पूजा करें। बाद में चतुर्थ्यन्त एक वचनान्त सहस्रार्च्चि शब्द के अन्त में **"ॐ हृदयाय नमः"** कहकर वह्नि के हृदय से षडंग मूर्त्ति की पूजा करनी होगी।

बाद में ब्राह्मी प्रभृति अष्टशक्तियों की पूजा करें। बाद में पद्मादि अष्टनिधियों की अर्चना कर इन्द्रादि दशदिक्पाल की पूजा करें। इसके बाद वज्रादि अस्त्रसमूह की पूजा कर प्रादेश प्रमाण कुशपत्रद्वय ग्रहण करते हुए घृत में स्थापन करें। घृत के वामांश में ईड़ा, दक्षिण में पिंगला और मध्य में सुषुम्ना की चिन्ता कर समाहित चित्त से दक्षिण-भाग से आज्य ग्रहण करके अग्नि के दक्षिण नेत्र में **'ॐ अग्नये स्वाहा'** कहकर आहुति प्रदान करें। इसके बाद वामभाग से घृत ग्रहण कर **'ॐ सोमाय स्वाहा'** कहकर अग्नि का वामनेत्र में होम कर मध्यभाग से घृत ग्रहण कर अग्नि का ललाटनेत्र में **'ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा'** मन्त्र से होम कर फिर दक्षिणभाग से घृत ग्रहणपूर्वक **'ॐ अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा'** कहकर मुख में आहुति प्रदान करें। उसके बाद **'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा'** इस मन्त्र से तीन बार उच्चारण कर आहुति प्रदान करें। बाद में अग्नि से इष्टदेवता का आवाहन कर पीठादिसहित उनकी पूजा करें और मूलमन्त्र में स्वाहा पद योग कर पचीस बार आहुति दें। इसके बाद अग्नि, इष्टदेवी और अपनी आत्मा—इन तीनों का चिंतन करके

आहुति प्रदान करें। बाद में **"ॐ अंगदेवताभ्यः स्वाहा"** कहकर अङ्गदेवता का होम करें।

इसके अनन्तर अपने उद्देश्य से तिल, आज्य और मधुमिश्रित पुष्प अथवा बिल्वदल या यथाविहित वस्तुद्वारा यथाशक्ति आहुति प्रदान करें। अष्टसंख्या से न्यून आहुति देने का विधान नहीं है। उसके बाद स्वाहान्त मूलमन्त्र से फलपत्रसमन्वित घृतद्वारा पूर्णाहुति प्रदान करें। बाद में संहार-मुद्राद्वारा अग्नि से इष्टदेवी की आवाहनपूर्वक हृदयकमल में रक्षा करें। बाद में 'क्षमस्व' इस मन्त्रसे अग्निको विसर्जन कर दक्षिणान्त और अच्छिद्रावधारण करें और होमावशेष द्वारा ललाट में तिलक धारण कर जप आरम्भ करें।

प्रथमतः मस्तक में गुरु, हृदय में इष्टेवता और जिह्वा में तेजोरूपिणी विद्या का ध्यान कर इन तीन पदार्थों के तेजद्वारा एकीभूत आत्माद्वारा संपुटित कर मूलमन्त्र जप करते हुए मातृकावर्ण संपुटित कर सप्तबार स्मरण करें। साधक अपने मस्तक में मायाबीज का दस बार जप करें; बाद में दसबार प्रणव जप कर हत्पद्म में मायाबीज का सातबार जप करें। अन्त में तीन बार प्राणायाम कर जपमाला ग्रहणपूर्वक–

ॐ माले माले महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।।

इस मन्त्र का पाठ करें। बाद में पूजा के श्रीपात्रस्थित अक्षतद्वारा मूलमन्त्र से मालाका तीन बार तर्पण करें। बाद में यथाविधि स्थिर मन से अष्टोत्तर सहस्र अथवा एक सौ आठ बार जप करें। बाद में फिर प्राणायाम कर श्रीपात्रस्थित जल और पुष्पादि द्वारा–

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्रीं त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ।।

इस मन्त्र से जप समापन कर देवी के वामकर में जपफल

प्रदान करें। उसके बाद भूतल में दण्डवत् निपतित होकर प्रणाम करें और बाद में कृताञ्जलि पुट से स्तव और कवच पाठ करें। इसके बाद प्रदक्षिण कर विलोम मन्त्र से विशेषार्घ्य प्रदानपूर्वक **"इतः पूर्वं प्राणबुद्धि-देहधर्माधिकारतः जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिषु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतम् यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वम् ब्रह्मार्पणमस्तु"** यह मन्त्र पाठकर आत्मसमर्पण करें। उसके बाद **'आद्याकालीपदाम्भोजे अर्पयामि ॐ तत्सत्'** इस मन्त्र से देवी के चरणों में अर्घ्य प्रदान कर कृताञ्जलि होकर इष्ट देवता के निकट प्रार्थना करें। बाद में **'श्रीं श्रीमाद्ये'** इस मन्त्र को उच्चारण करें और यथाशक्ति पूजा करके इष्टदेवता को विसर्जन करके संहार-मुद्राद्वारा पुष्प ग्रहण कर आघ्राण करके हृदय में स्थापित करें। उसके बाद ईशानकोण में सुपरिष्कृत त्रिकोणमण्डल लिखकर उससे निर्माल्य पुष्प और जल-संयोग से देवी की पूजा करें।

बाद में साधक ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रभृति देवताओं को नैवेद्य वितरणपूर्वक कुलाचारी सुहृद्समभिव्याहार से स्वयं ग्रहण करें। कुलाचारी साधक, यन्त्र अथवा प्रतिमा में पूजा न कर कुमारी अथवा षोड़शी रमणीशक्ति की ही यथाविधि पूजा करता है। किन्तु उसका विधान अतिशय गोपनीय, विशेषतः अनधिकारी पशु के निकट अश्लीलता प्रभृति दोषदुष्ट होगा विवेचना कर उसके प्रकाश में क्षान्त हुआ हूँ। प्रयोजन होने पर तन्त्र का गुप्त-साधन-रहस्य की शिक्षा साधक को दे सकता हूँ।

पंच-मकारसे इष्टपूजा कर प्रसाद-ग्रहण प्रभृति कार्य्य चक्रानुष्ठान की प्रणाली से करनी होती है, इसलिये इस स्थान पर उसको नहीं लिखा गया।

तन्त्रोक्त चक्रानुष्ठान

कुलाचारी तान्त्रिकगण चक्र बनाकर साधना करते हैं। तन्त्रशास्त्र में भैरवीचक्र, तत्त्वचक्र प्रभृति बहुविध चक्रानुष्ठान का बहुविध विधान दिखाई देता है। साधकों में प्राय: दो प्रकार के चक्रों का अनुष्ठान ही करते हुए दिखाई पड़ता है। प्रथम ब्रह्मभावमय तत्त्वचक्र के विधान का वर्णन किया जाय।

यह तत्त्वचक्र चक्र में श्रेष्ठ है–इसको दिव्यचक्र भी कहा जाता है। कुलाचारी भैरवीचक्र और दिव्याचारी तत्त्वचक्रका अनुष्ठान करें। तत्त्वचक्रमें बह्मज्ञानी का ही अधिकार है, दूसरों का नहीं। यथा–

ब्रह्मभावेन तत्त्वज्ञो ये पश्यन्ति चराचरम् ।
तेषां तत्त्वविद्यां पुंसां तत्त्वचक्रेऽस्त्यधिकारिता ।।
सर्वब्रह्ममयो भावश्चक्रेऽस्मिंस्तत्त्वसंज्ञके ।
येषामुत्पद्यते देवि त एव तत्त्वचक्रिणः ।।

जो इस चराचर को ब्रह्मभाव में अवलोकन करता है, वही तत्त्ववित् पुरुष ही इस चक्र का अधिकारी है। समस्त ही ब्रह्म है; इस प्रकार के भावमय व्यक्ति का ही तत्त्वचक्र में अधिकार है।

इसलिये परब्रह्म का उपासक, ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मतत्पर, शुद्धन्त:करण, शान्त, सर्वप्राणी के हितकार्य में निरत, निर्विकल्प, दयाशील, दृढ़व्रत और सत्यसंकल्प साधक इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी व्यक्तिगण ही इस तत्त्वचक्र का अनुष्ठान करें। इस चक्र के अनुष्ठान में घटस्थापन नहीं; पूजादि का बाहुल्य भी नहीं है। इस तत्त्व की साधना– सर्वत्र ब्रह्मभाव है। ब्रह्ममन्त्रोपासक और ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति चक्रेश्वर होकर ब्रह्मज्ञ साधकगण-सहित तत्त्वचक्र का अनुष्ठान आरम्भ करें। उसका क्रम इस प्रकार है–

रम्य, सुनिर्मल और साधकों के सुखजनक स्थान में विचित्र आसन लाकर विमल आसन की कल्पना करें। चक्रेश्वर उसी स्थान में

ब्रह्मोपासकों के सहित बैठकर तत्त्वों का आहरण करते हुए अपने सम्मुख भाग में स्थापना करें। चक्रेश्वर सभी तत्त्वों के आदि में 'ॐ' यह मन्त्र सौ बार जप करें। उसके बाद 'ॐ हंसः' इस मन्त्र को सात बार अथवा तीन बार जप कर समस्त शोधन करें। उसके बाद ब्रह्ममन्त्रद्वारा वही सभी द्रव्य परमात्मा को उत्सर्ग कर ब्रह्मज्ञ साधकों के सहित एकत्र पान-भोजन करें। इस तत्त्वचक्र में जातिभेद वर्जन करें। इसमें देश, काल अथवा पात्र का नियम नहीं है। यथा—

ये कुर्वन्ति नरा मूढ़ा दिव्यचक्रे प्रमादतः।
कुलभेदं वर्णभेदं ते गच्छन्त्यधमां गतिम्।।

जो मूढ़ नर दिव्यचक्र में भ्रमवशतः कुलभेद, वर्णभेद प्रभृति करता है, वह निश्चय ही अधोगति को प्राप्त होता है।

अतएव दिव्याचारी ब्रह्मज्ञ साधकोत्तम यत्न पूर्वक धर्मार्थ-काम-मोक्ष प्राप्ति की कामना से तत्त्वचक्र का अनुष्ठान करें।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।

तत्त्वचक्रका अनुष्ठान कर—जो अर्पित हो रहा है वह ब्रह्म है, जो अर्पणपदवाच्य है वह भी ब्रह्म द्वारा हुत हो रहा है, अर्थात् अग्नि और होमकर्त्ता भी ब्रह्म हैं। इस प्रकार ब्रह्मकर्म में जिसके चित्त में एकाग्रता उत्पन्न होती है—वे ही ब्रह्मलाभ करते हैं।

दिव्याचारी ब्रह्मज्ञ साधक-सदृश कुलाचारी की कुलपूजापद्धति में चक्र का प्रयोजन है; विशेष पूजा के समय साधकगण का चक्रानुष्ठान करना अवश्य कर्त्तव्य है।

कुलाचारी का अनुष्ठेय-चक्र भैरवीचक्र नाम से ख्यात है ओर जो इस चक्र में बैठकर प्राधान्य करते हैं अर्थात् चक्रानुष्ठानादि का आयोजन प्रभृति करते हैं, उनको चक्रेश्वर कहा जाता है।

यह भैरवीचक्र श्रेष्ठ से श्रेष्ठ है; सारात्सार है। एक बार मात्र इस चक्र का अनुष्ठान करके सभी पापों से मुक्त हुआ जा सकता है। नित्य इसका अनुष्ठान करने से निर्वाण-मुक्तिलाभ होता है। यथा–

नित्यं समाचरन् मर्त्यो ब्रह्मनिष्ठामवाप्नुयात् ।

भैरवीचक्र के विषय में उस प्रकार कोई नियम नहीं है; जिस किसी समय अतिशुभकर भैरवीचक्र का अनुष्ठान किया जा सकता है। इसके द्वारा देवी शीघ्र ही वांछित फल प्रदान करती हैं। इसका विधान इस प्रकार है–

कुलाचारी साधक सुरम्य मृत्तिका के ऊपर कम्बल अथवा मृगचर्मादि का आसन डालकर **'क्लीं फट्'** इस मन्त्र से आसन संशोधनपूर्वक उस पर बैठेगा। बाद में सिन्दूर, रक्तचन्दन अथवा केवल जलद्वारा त्रिकोण और उसके बाहर के भाग में चतुष्कोण मण्डल लिखेगा। बाद में उस मण्डल में एक विचित्र घट, दधि, आतप तण्डुल, फल, पल्लव, सिन्दूर तिलकयुक्त और सुवासित जलपूर्ण कर प्रणव (ॐ) मन्त्र पाठ करते हुए स्थापित करेगा और धूप दीप प्रदर्शन करायेगा। उसके बाद गन्ध-पुष्पद्वारा अर्चना कर इष्टदेवता का ध्यान करें और संक्षेप में पूजा-पद्धति के अनुसार उसमें पूजा करें। बाद में साधक अपनी इच्छा के अनुसार तत्त्वपात्र को सम्मुख रखकर **'फट्'** इस मन्त्र से प्रोक्षण कर दिव्यदृष्टि द्वारा अवलोकन करें। बाद में अलियन्त्र में (मद्यपात्र में) गन्धपुष्प प्रदान करके–

नवयौवनसम्पन्नां तरुणारुणविग्रहाम् ।
चारुहासामृतोद्भासोल्लसद्वदनपंकजाम् ।।
नृत्यगीतकृतामोदां नानाभरणभूषिताम् ।
विचित्रवसनां ध्यायेद्वराभयकराम्बुजाम् ।।

इस मन्त्र से आनन्दभैरवी का और–

कर्पूरपुरधवलं कमलायताक्षं
दिव्याम्बराभरणभूषितदेहकान्तिम् ।
वामेन पाणिकमलेन सुधाढ्यपात्रं,
दक्षेण शुद्धगुटिकां दधतं स्मरामि ।।

इस मन्त्र से आनन्दभैरव का ध्यान करेगा।

ध्यानान्त में उसी मद्यपात्र से दोनों देव-देवी की समरसता विशेषरूपसे चिन्तन करेगा। उसके बाद **'ॐआनन्दभैरव्यै आनन्दभैरवाय नमः'** इस मन्त्र से गन्धपुष्पद्वारा पूजा करते हुए अलियन्त्र से **"ॐ आं ह्रीं क्रों स्वाहा"** इस मन्त्र से एकशत आठ बार जप करके मद्य शोधन करेगा। बाद में मांसादि जो पाया जाता है उन्हीं सभी में **"ॐ आं ह्रीं क्रों स्वाहा"** इस मन्त्रद्वारा सौ बार अभिमन्त्रित कर शोधन करेगा। बाद में समस्त तत्त्व को ब्रह्ममय भावना कर दोनों आँखें बन्द करते हुए देवी को निवेदन करके पान भोजन करेगा।

चक्रमध्ये वृथालापं चाञ्चल्य बहुभाषणम् ।
निष्ठीवनमधोवायुं वर्णभेदं विवर्जयेत् ।।
क्रूरान् खलान् पशून् पापान् नास्तिकान् कुलदूषकान् ।
निन्दकान् कुलशास्त्राणां चक्राद्दूरतरं त्यजेत् ।।

—महानिर्वाणतन्त्र

चक्रमध्य में रह कर वृथालाप अर्थात् इष्टमन्त्रजपादि और पद्धति-अनुसार के बिना अन्य क्रिया, अन्य प्रकार से आलाप न करें, चञ्चलता प्रकाश न करें। थूक न फेकें, अधोवायु निःसारण और जाति विचार न करें। क्रूर, खल, पश्वाचारी, पापी, नास्तिक, कुलदूषक और कुलशास्त्रनिन्दूकों को चक्र में नहीं बैठने दें।

पूर्णाभिषेकात् कौल स्याच्चक्राधीशः कुलार्चकः ।

—महानिर्वाणतन्त्र

जिनका पूर्णाभिषेक हुआ है वे ही कौल, कुलार्चक और चक्राधीश्वर होंगे। भैरवीचक्र आरम्भ होने से समस्त जाति द्विजश्रेष्ठ होती है। फिर भैरवीचक्र से निवृत्त होने पर सर्ववर्ण पृथक् अर्थात् जो जाति थी वही हो जाती है। भैरवीचक्र के मध्य में जाति विचार नहीं होता है–उच्छिष्टादिका भी विचार नहीं है। चक्रमध्यगत वीरसाधकगण शिवके स्वरूप हैं। इस चक्र में देश, काल, नियम अथवा पात्र-विचार नहीं हैं। चक्रस्थान महातीर्थ; इसलिये तीर्थ समूह से श्रेष्ठ है। इस स्थान से पिशाचादि क्रूरजाति दूर पलायन कर जाती हैं, किन्तु देवतागण आ जाते हैं। पापी व्यक्तिगण भैरवीचक्र और शिवस्वरूप साधकगण का दर्शन करने से पापमुक्त हो जाते हैं। जिस किसी स्थान से अथवा जिस किसी व्यक्तिद्वारा आहृत द्रव्य भी चक्रमध्यस्थ साधकगण के हाथ में अर्पित होने से ही पवित्र हो जाता है। चक्रान्तर्गत कुलमार्गावलम्बी साक्षात् शिवस्वरूप साधकगण को पापाशंका कहाँ? ब्राह्मणेतर जो कोई सामान्य जाति कुलधर्म आश्रित होने से ही देववत् पूज्य हो जाती है।

पुरश्चर्याशतेनापि शवमुण्डचितासनात् ।
चक्रमध्ये सकृज्जप्त्वा तत्फलं लभते सुधीः ।।

-महानिर्वाणतन्त्र

शवासन, मुण्डासन, अथवा, चितासन पर आरूढ़ होकर सौ पुरश्चरण करने से जो फल पाया जाता है– भैरवीचक्र में बैठकर एकबार मात्र मन्त्र जप करने से वही फल होता है। इसलिए कुलाचारी साधक प्रत्यह भैरवीचक्र का अनुष्ठान करें।

पूर्वोक्त प्रकार से भैरवीचक्र में पूजादि कर बाद में पान-भोजनादि करें। प्रथमतः अपने वामभाग में पृथक् आसन पर अपनी शक्ति को संस्थापित अथवा एकासन पर बैठकर स्वर्ण, रौप्य, काच अथवा नारियलमाला-निर्मित पानपात्र शुद्धिपात्र के दक्षिण में आधार

T

के ऊपर स्थापित करना होगा। पानपात्र पाँच तोला से कम करने का नियम नहीं है। फिर भी अभाव पक्ष में तीन तोला किया जा सकता है। उसके बाद महाप्रसाद लाकर पानपात्र में सुधा (मद्य) और शुद्धिपात्र में मत्स्यमांसादि प्रदान करें। उसके बाद समागत व्यक्तियों के सहित पान-भोजन करें।

तन्त्रशास्त्र का उद्देश्य मद्यपान के मत्तता में नहीं है, देहस्थ शक्तिकेन्द्र उद्‌बोधन करना ही उद्देश्य है। प्रथम आस्तारण के लिए उत्तम शुद्धि ग्रहण करें। बाद में–

स्वस्वपात्र समादाय परमामृतपूरितम्।
मूलाधारादिजिह्वान्तां चिद्रूपां कुलकुण्डलीम्।।
विभाव्य तन्मुखाम्भोजे मूलमन्त्रं समुच्चरन्।
परस्पराज्ञामादाय जुहूयात् कुण्डलीमुखे।।

कुलसाधक हृष्टमनसे परमामृतपूर्ण अपना-अपना पात्र ग्रहण कर मूलाधार से आरम्भ करके जिह्वाके आगे तक कुण्डलीनी का चिन्तन करते हुए मुखकमलसे मूलमन्त्र उच्चारणपूर्वक परस्पर आज्ञा ग्रहण के अन्त में कुण्डलिनीमुख में परमामृत प्रदान करेगा।

सुषुम्नापथ में इस मद्य को संचालित करना होता है। इसका कौशल गुरुमुख से शिक्षा लेकर क्रमाभ्यास से आयत्त करना होता है। इस प्रकार के कौशल और एकतान चिंतन से कुण्डलीनीशक्ति उद्बोधिता होती है, किन्तु यदि अतिरिक्त सुरापान घटित होता है, तब उससे कुलधर्मावलम्बियों की सिद्धिहानि होती है । यथा–

यावन्न चालयेद्दृष्टिर्यावन्न चालायेन्मनः ।
तावत् पानं प्रकुर्वीत पशुपानमतः परम्।।

–महानिर्वाणतन्त्र

जिस समय तक दृष्टि घूर्णित और मन चंचल नहीं होता तब तक

सुरापान का नियम है, इसके अतिरिक्त पान पशुपान सदृश होता है।

इसलिए सुरापानसे जिसकी भ्रान्ति उपस्थित होती है, वह पापिष्ठ कौल नाम के आयोग्य है। तब देखा जाता है, केवल कुण्डलिनीशक्ति को उद्बोधित और शक्तिसंपन्न रखने के लिए तन्त्र में मद्यपान की व्यवस्था है। चक्रस्थित कुलशक्तिगण मद्यपान करें।

सुरापानं कुलस्त्रीणां गन्धस्वीकारलक्षणम् ।।

–महानिर्वाणतन्त्र

कुलरमणीगण केवल मद्यका आघ्राणमात्र स्वीकार करेंगी, पान नहीं करेंगी। इस प्रकार के नियम से पान-भोजन समाधान्त में अन्तिम तत्त्व की साधना करें। यह क्रिया अतिगुह्य है और अप्रकाश्य विद्या और अश्लीलता दोषशंका के कारण साधारण के निकट प्रकाश नहीं कर सका। उपयुक्तगुरु के निकट मौखिक शिक्षा लेनी होगी। शेषतत्त्वों की सधना में साधक उर्ध्वरिता होता है और प्रकृति जयी होकर आत्म सम्पूर्त्ति लाभ कर जीवन्मुक्त हो सकता है।*

पाठक! शिक्षिताभिमानी अशिक्षित व्यक्तिगण पंच-मकार के विशेषत: मद्य और मैथुन के नाम से सिहर जाते हैं और तन्त्रशास्त्र का नाम ही सुनकर घृणा से नाक सिकोड़ते हैं। किन्तु तन्त्रशास्त्रकार क्या उनकी अपेक्षा अधिक स्वेच्छाचारी और उन्मार्गगामी थे? उनको क्या मद्य और मैथुन के गुण का ज्ञान नहीं है। अथवा भोगसुख ही एकमात्र मानव के श्रेय: और प्रेय: है, कहकर इस प्रकार का विधान कर गए हैं? नितान्त विकृत-मस्तिष्क व्यक्ति अथवा वातुल के अतिरिक्त और कोई सामान्य चिन्ताशील व्यक्ति भी यह कहने का साहस नहीं पाएगा।

---

* मेरे द्वारा लिखित ज्ञानीगुरु और प्रेमिकगुरु पुस्तक में इस साधना का क्रम दिया गया है।

T

तन्त्रशास्त्रों का सम्यक् विचार करने से ही वे अपने-अपने भ्रमको समझ पा सकेंगे। प्रथमत: तन्त्रशास्त्र के मैथुनतत्त्व में स्वीय अर्थात् विवाहिता नारी को ही ग्रहण करने का आदेश दिया है। यथा–

बिना परिणयं वीरः शक्तिसेवां ससाचरन्।
परस्त्रीगामिनां पाप प्राप्नुयान्नात्र संशयः ।।

–महानिर्वाणतन्त्र

बिना परिणय शक्तिसाधना करने से साधक परस्त्रीगमन के पापका भागी होता है। उसके बाद कलिके मनुष्य स्वभावत: कामद्वारा विभ्रान्तचित्त और सामान्य बुद्धि सम्पन्न होते हैं, रमणी को शक्ति कहा जाता है, वे इससे अवगत नहीं हैं, वे उसे कामोपभोग्या विलास की वस्तुरूप से ही जानते हैं– यही जानकर तन्त्रकारों ने व्यवस्था की है–

अतस्तेषां प्रतिनिधौ शेषतत्त्वस्य पार्वति।
ध्यानं देव्याः पदाम्भोजे स्वेष्टमन्त्रजपस्तथा ।।

–महानिर्वाणतन्त्र

कामना-कलुषित जीव के पक्ष में अन्तिमतत्त्व के (मैथुन तत्त्व का) प्रतिनिधित्व देवी के पादपद्मका ध्यान और इष्टमन्त्र का जप करना होता है और मद्यपान के सम्बन्ध में कहा है–

गृहकार्यैकचित्तानां गृहिणां प्रबले कलौ।
आद्यतत्त्वप्रतिनिधौ विधेयं मधुरत्रयम् ।।
दुग्धं सितां माक्षिकञ्च विज्ञेयं मधुरत्रयम्।
अलिरूपमिदं मत्वा देवतायै निवेदयेत् ।।

–महानिर्वाणतन्त्र

प्रबल कलिकाल में गृहकार्य आसक्तचित्त व्यक्ति के पक्ष में मद्यपान अविधेय है। मद्य के प्रतिनिधि के स्थान पर दुग्ध, सिता, चीनी) और मधु, ये मधुरत्रय मिलकर मद्य-स्वरूप करते हुए देवता को निवेदन करें।

उच्चाधिकारी के लिए मद्य के स्थान पर अनुकल्प की व्यवस्था की गई। विशेषत: वे सूक्ष्म पंच-मकार की साधना करने में समर्थ हैं। केवल मात्र पापाचारी भोगी, कामुक और मद्यपों के लिए तन्त्रोक्त स्थूल पंच-मकार की व्यवस्था है। पहले ही कहा है कि साधनाशास्त्र सभी के लिए है– ज्ञानी-अज्ञानी, सत् -असत् , अच्छे-बुरे प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। केवल समाज के कुछ सात्त्विकाचारी, निष्ठावान् व्यक्ति धर्माचरण करेगा और शेष सभी अध:पतन में पहुँचेंगे शास्त्र के इस प्रकार की संकीर्ण व्यवस्था नहीं हो सकती है। इसी कारण जिस प्रकार प्रकृति हो उसी प्रकार साधन प्रणाली युक्तिसंगत है।

भगवान्‌को कौन नहीं चाहता है? किन्तु लघुचित्त भोगसुखरत व्यक्ति करतलस्थ सुख के द्रव्य को फेंककर भगवत्प्राप्तिजनित भावी सुख की कल्पना नहीं कर सकता है। किन्तु यदि दृढ़चित्त सिद्ध तान्त्रिकगुरु कहते हैं–"बाबू! शराब पीकर, रमणी को ग्रहण कर और निरामिषभोजन न करने पर भी मुक्ति की प्राप्ति की जा सकती है, इसलिये तन्त्र पञ्च-मकार की व्यवस्था दिया है। यह देखो, मैंने मांस खाकर भी सिद्धि की प्राप्ति की है"। मद्यप सुनकर आवाक् हुआ। सुरापान करके धर्मलाभ होता है, यह सुनकर उस आनन्द से गुरु के चरणों में शरण लेकर कहा-'भगवन्! केवल सुरापान नहीं छोड़ सकता हूँ, नहीं तो जो कहेंगे उसे करूँगा। कह दें, किस प्रकार भगवान को पा सकता हूँ। गुरु ने तब उससे कहा–"मेरे आश्रम में चलो। जब-तब अशोधित और अनिवेदित सुरा नहीं पा सकते हो। माता का प्रसाद जितनी इच्छा हो - पी सकते हो'। शिष्य ने स्वीकार किया। गुरु ने पूजान्त में प्रसाद दिया। शिष्य आज पूजामण्डप में साधकों के साथ मद्यपान कर इष्टमन्त्र जप करने लगा। एक ही दिन में कितनी उन्नति हुई। जो व्यक्ति अन्यदिन मद्यपान कर वारंगनागृह में

T

ही अथवा नर्दमामें पड़कर शकार-बकार बकता रहा, आज वह मदके नशे में गुरु के चरण में पड़कर 'माँ-माँ' बोलकर रो रहा है। क्रमश: माँ माता के नाम से उसकी प्रकृत भक्ति ही संचारित होने लगी है; गुरु भी अवस्था को समझकर धीरे-धीरे सुरा की मात्रा ह्रास करने लगे। जब गुरुजी ने देखा कि शिष्य के हृदय में भवगद्भक्ति की एक अच्छी और गभीर रेखा अंकित हुई है, तब मद्यसंशोधन का, शापविमोचन के मन्त्रों को शिष्य को समझा दिया। उससे शिष्य ने समझा कि सुरापान कर जब पितामह ब्रह्मा, दैत्यगुरु शुक्राचार्य तक ने विभ्रान्त चित्त होकर कितने गर्हित कार्यों को किया है, तब मनुष्य जो सुरापान करके अध:पतन की ओर जाएगा- इसमें सन्देह नहीं है। भगवत्प्राप्ति की आशा लेकर आज शिष्य मद्यत्तत्त्व को समझ कर मद्यपान से निरस्त हुआ।

तान्त्रिकगुरु इसी प्रकार वेश्यासक्त, लम्पट और शराबी को प्रवृत्ति के पथ से छुड़ाकर निवृत्तिमार्ग पर चलाने लगे। मद्यप साधना की प्रणाली से क्रम से साधु हो गया। इसी कारण तन्त्रशास्त्र में पञ्च-मकार की व्यवस्था है। नहीं तो सात्त्विक निष्ठावान् व्यक्ति तन्त्रोक्त साधन करने जाने पर भी मद्यमांस उस समय ग्रहण करेगा, यह विभ्रान्त और बालक के अतिरिक्त अन्य कोई विश्वास नहीं कर सकता है। सत्त्वप्रधान ब्राह्मण के सम्बन्ध में तन्त्र ने कहा है–

न दद्याद् ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै कथञ्चन ।
वामकामो ब्राह्मणो हि मद्यं मांसं न भक्षयेत् ।।

–श्रीक्रम-तन्त्र

ब्राह्मण कभी भी महादेवी को मद्य प्रदान करें। कोई ब्राह्मण वामाचार से मद्यमांस भक्षण नहीं कर सकता ।

"**एतत् द्रव्यदनान्तु शूद्रस्यैव**'' अतएव तम:प्रधान आचार-

विचार-विमूढ़, भक्तिहीन, भोगविलासी शूद्र के लिए ही मद्यादि दान विहित है। पाठक! समझा कि किसलिए और किसके लिए तन्त्र ने स्थूल पञ्च-मकार की व्यवस्था की है! नहीं तो वास्तविक रूप में सुरापान करने से ही यदि मनुष्य सिद्धि प्राप्तकर सकता है, तब संसार के सभी मद्यप सिद्धिलाभ कर सकते हैं और यदि स्त्रीसम्भोग द्वारा मोक्षलाभ हो, तब जगत् के सभी जीव मुक्त हो गये होते। इसीलिए कहता हूँ कि तन्त्रकार क्या इतने मूढ़ हैं कि जिसे तुम मैं समझ सकता हूँ– तन्त्रकार के मस्तिष्क में क्या वह प्रवेश नहीं किया हैं, इसलिए कहना होगा–सर्वाधिकारी जनगण को आश्रय देने के लिए ही तन्त्र की यह उदार शिक्षा है। इतनी बात कहने पर भी यदि कोई मद्यप और लम्पट को "तान्त्रिक साधक" नाम से समझता है- उसके लिए दोषी कौन है? विशेषत: उस प्रकार वृषभवुद्धिविशिष्ट की बात सुनने से अनिष्ट की ही सम्भावना है। तन्त्र की कुलाचारप्रथा साधना का चरम मार्ग है। इसलिए अपने-अपने अधिकार के अनुसार साधक कुलाचार मार्ग का अवलम्बन करें। इस साधना में सिद्धिलाभ करने पर साधक शीघ्र शिवतुल्य गातलाभ कर सकता है। सर्व-धर्मशून्य कलि की प्रधानता के समय में एकमात्र कुलाचारप्रथा ही सर्वोत्कृष्ट है। यथा–

बहुना किमिहोक्तेन सत्यं जानीहि कालिके ।
इहामूत्रसुखावाप्तै कुलमार्गो हि नापरः ।।

–महानिर्वाणतन्त्र

अधिक क्या कहूँ–सत्य समझो कि कुलपद्धति के बिना ऐहिक और पारत्रिक सुखलाभका और उपाय नहीं है।

T

मन्त्रसिद्धिका लक्षण

मन्त्रसिद्धि हो जाने पर साधक के जो जो लक्षण प्रकाश पाते हैं, उन्हें भी शास्त्रकार निर्देशित कर गये हैं। यथा–

हृदयग्रंथिभेदश्च सर्वावयववर्द्धनम् ।
आनन्दाश्रुणि पुलको देहावेशः कुलेश्वरि ।
गद्गदोक्तिश्च सहसा जायते नात्र संशयः ।।

–तन्त्रसार

जपकाल में हृदयग्रंथि भेद, सभी अंगों की वर्द्धिष्णुता, आनन्दाश्रु, देहावेश और गद्‌गद भाषण प्रभृति भक्तिचिह्न प्रकाश पाते हैं– सन्देह नहीं है, इससे भिन्न और भी नानाविध लक्षण प्रकाश पाते हैं।

मनोरथसिद्धि ही मन्त्रसिद्धि का प्रधान लक्षण है। साधक जब जो अभिलाषा करता है, बिना कष्ट अभिलाषा के पूर्ण होने से ही जाना जाता है कि मंत्रसिद्धि हुई है। मृत्युहरण, देवता-दर्शन, देवता के साथ वाक्यालाप, मंत्र का झंकार-शब्द श्रवण प्रभृति लक्षण मंत्रसिद्धि से घटित होते हैं।

सकृदुच्चरितेऽप्येवं मन्त्रे चैतन्यसंयुते ।
दृश्यन्ते प्रत्यया यत्र पारस्पर्यं तदुच्यते ।।

-तन्त्रसार

चैतन्यसंयुक्त कर मन्त्र से एकबार मात्र उच्चारण करने से ही पूर्वोक्त भावों का विकाश होता है।

जिस व्यक्ति को मन्त्र की चरमसिद्धि होगी, वही व्यक्ति देवता को देख सकता है, मृत्यु को रोक सकता है, परकायप्रवेश, परपुरप्रवेश और शून्यमार्ग में विचरण भी कर सकता है और सर्वत्र गमनागमन की शक्ति होती है। खेचरी देवीगण सहित मिलकर उनकी बात को सुन सकता है। भूछिद्र देख सकता है और पार्थिवतत्त्व को जान सकता है।

इस रूप-सिद्ध पुरुष की दिगन्तव्यापिनी कीर्ति होती है, वाहन-भूषणादि बहुत द्रव्यों की प्राप्ति होती है, और ऐसा व्यक्ति बहुत समय तक जीवित रहता है। राजा और राजपरिवारवर्ग को वशीभूत रख सक़ता है, स्थानों पर चमत्कारजनक कार्य प्रदर्शन कर सुख से कालयापन करता है। वैसे लोगों को देखने मात्र से ही रोगापहरण और विषनिवारण होता है। सभी शास्त्रों में अत्यन्त सुलभ चतुर्विध पाण्डित्य लाभ कर सकता है। विषयभोग से विरक्त होकर मुक्ति की कामना करता है, सर्व-परित्यागशक्ति और सर्ववशीकरण क्षमता उत्पन्न होती है; अष्टांगयोग का अभ्यास होता है। विषय भोग की इच्छा नहीं रहती है। सर्वभूत के प्रति दया उत्पन्न होती है; और सर्वज्ञता शक्ति प्राप्त होती है। कीर्ति और वाहन भूषणादि लाभ होता है; दीर्घजीवन, राजप्रियता, राजपरिवारादि सर्वजनवात्सल्य, लोकवशीकरण, प्रभूत ऐश्वर्य, धनसम्पत्ति, पुत्रदारादि सम्पद प्रभृति सामान्य़ गुण मन्त्रसिद्धि की प्रथमावस्था में प्राप्त होते हैं।

सारांश योगसाधना और मन्त्रसाधना में कोई प्रभेद नहीं है। कारण उद्देश्य, स्थान एक ही है; केवल पथ की विभिन्नता मात्र है। वास्तविक पक्ष में जो प्रकृत मंत्रसिद्धि प्राप्त करते हैं, वे साक्षात् शिवतुल्य हैं, इसमें थोड़ा भी संदेह नहीं है। यथा–

सिद्धमन्त्रस्तु यः साक्षात् स शिवो नात्र संशयः ।।

–तन्त्रसार

इसलिए मंत्रवित् साधक पूर्वोक्त जिस किसी पद्धति का अवलम्बन लेकर मन्त्रसिद्धि लाभ कर जीवन्मुक्त और अंत में शिवसायुज्य प्राप्त करें अथवा निर्वाण मुक्तिलाभ करें। युगशास्त्र और युगावतार महाप्रभु चैतन्यदेव "कलिकाल में एकमात्र मन्त्र या नाम जप कर सकने पर ही सर्वाभीष्ट सिद्ध होगा, इसमें संदेह नहीं है' यह बात प्रचारित किये हैं।

T

तन्त्र की ब्रह्मसाधना

जिस तंत्रशास्त्र ने व्यष्टि देवदेवी से मूला ब्रह्मशक्ति की स्थूल साकारोपासना पञ्चतत्त्व की साधना, गृहस्थादि चार आश्रमों की इतिकर्त्तव्यता और धर्मांधर्म प्रभृति समस्त विषय वर्णना की है; वहीं तंत्रशास्त्र ब्रह्मज्ञान में क्या अदूरदर्शी था? तंत्रशास्त्र क्या कुछ स्थूल आनुष्ठानिक कर्म में ही परिपूर्ण है? कभी भी नहीं। इसी ने प्रथम हमको सुनाया है कि ब्रह्मसद्भाव ही उत्तम साधना है और अन्यान्य भाव अधम है। यथा–

उत्तमो ब्रह्मसद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यमः ।

–महानिर्वाणतन्त्र

तंत्रशास्त्र ने समझाया है कि ब्रह्मज्ञान बिना अन्य किसी उपाय से मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती हैं। यथा–

विहाय नामरूपाणि नित्ये ब्रह्मणि निश्चले ।
परिनिश्चिततत्त्वो यः स मुक्तः कर्मबन्धनात् ।।
न मुक्तिर्जपनाद्धोमादुपवासशतैरपि ।
ब्रह्मैवाहमिति ज्ञात्वा मुक्तो भवति देहभृत् ।।
आत्मा साक्षी विभुः पूर्णः सत्योऽद्वैतः परात्परः ।
देहस्थोऽपि न देहस्थो ज्ञात्वैवं मुक्तिभाग् भवेत् ।।
बालक्रीड़नवत् सर्वं नामरूपादिकल्पनम् ।
विहाय ब्रह्मनिष्ठो यः स मुक्तो नात्र संशयः ।।
मनसा कल्पिता मूर्तिर्नृणां चेन्मोक्षसाधनी ।
स्वप्नलब्धेन राज्येन राजानो मानवास्तदा ।।
मृच्छिलाधातुदार्वादिमूर्त्तावीश्वरबुद्धयः ।
क्लिश्यन्तितपसा ज्ञानं बिना मोक्षं न यान्ति ते ।।
आहारसंयमक्लिष्टा यथेष्टाहारतुन्दिलाः ।
ब्रह्मज्ञानविहीनाश्चेन्निष्कृतिं ते व्रजन्ति किम् ।।

वायुपर्णकणातोयव्रतिनो मोक्षभागिनः ।
सन्ति चेत् पन्नगा मुक्ताः पशुपक्षिजलेचराः ।।

–महानिर्वाणतन्त्र

जो व्यक्ति नाम और रूप छोड़कर निश्चल ब्रह्म के तत्त्वसे परिचित हो सके, उसको फिर कर्मबन्धन में नहीं पड़ना होता है। जप, होम और सैकड़ों उपवासों से मुक्ति नहीं होती है, किन्तु **''मैं ही ब्रह्म हूँ''**, इस ज्ञान के हो जाने से देही की मुक्ति होती है। आत्मा साक्षीस्वरूप, विभु, पूर्ण, सत्य, अद्वैत और परात्पर– यदि यह ज्ञान स्थिरतर हो तब जीव को मुक्ति प्राप्त होती है। रूप और नामादिकी कल्पना बालकों की क्रीड़ा के सदृश है; जो बाल्यक्रीड़ा छोड़कर ब्रह्मनिष्ठ हो सकते हैं, वे निःसन्देह मुक्तिलाभ के अधिकारी हैं। यदि मनःकल्पित मूर्ति मनुष्य की मोक्ष-साधिनी हो तब स्वप्नलब्ध राज्य से भी लोग राजा हो सकते हैं। मृत्तिका, शिला, धातु और काष्ठादिनिर्मित मूर्त्ति में ईश्वरज्ञान से जो आराधना करते हैं– वे व्यर्थ कष्ट पाते हैं। कारण ज्ञानोदय नहीं होने से मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती है। लोगों में आहारसंयम से क्लिष्टदेह अथवा आहार ग्रहण में पूर्णोदर हो, किन्तु ब्रह्मज्ञान न होने से कभी भी निष्कृति नहीं हो सकती है। वायु, पर्ण, कण अथवा जलमात्र पीकर व्रत धारण में यदि मोक्षलाभ हो तब सर्प, पशु-पक्षी और जलचर जन्तु सभी मुक्त हो सकते ।

पाठक! देखें कि तन्त्र के इन वाक्यों में क्या अमूल्य उपदेश निहित है। वेदान्त, उपनिषदादि के सदृश तन्त्रशास्त्र भी विशेषरूप में कहता है कि ब्रह्मज्ञान के अतिरिक्त और किसी उपाय से भी जीव मुक्तिलाभ नहीं कर सकता है। तब तन्त्र में स्थूल कर्मानुष्ठान की व्यवस्था क्यों है? उसके उत्तर में हमने पूर्व ही कहा है कि शास्त्र का उपदेश सार्वजनीन है; केवल मात्र समाज के कुछ उन्नत हृदय व्यक्ति के

लिए शास्त्र प्रणीत नहीं हुआ है। अधिकारानुसार जिससे सर्व प्रकार लोग शास्त्रोपदेश में क्रमोन्नति अवलम्बनपूर्वक अग्रसर हो सकें तन्त्रमें भी वही व्यवस्था हुई है। इसलिए ब्रह्मसाधना बिना तन्त्र की यावतीय साधना की विधि-व्यवस्था सभी कर्मानुजीवी मनुष्यों के लिए हैं। यथा–

यद् यत्पृष्ठं महामाये नृणां कर्मानुजीविनाम् ।
निःश्रेयसाय तत् सर्वं सविशेषं प्रकीर्तितम् ।।

–महानिर्वाणतन्त्र

हे महामाये! कर्मानुजीवी मनुष्यगण के लिए तुमने मुझसे जो-जो जिज्ञासा की, मैंने सब कुछ को विस्तार के साथ बतलाया। कारण जीवगण कर्म के व्यतिरेक क्षणार्ध भी अवस्थिति नहीं कर सकते हैं, उनमें कर्म वासना न रहने पर भी उनको कर्मवायु आकर्षित करती है। कर्म के प्रभाव में जीव सुख और दुःख भोगता है; कर्म के वश जीव की उत्पत्ति और विलय होता है। इसीलिए तन्त्रशास्त्र में अल्पबुद्धि व्यक्तियों की प्रवृत्ति की उत्तेजना और दुष्प्रवृत्ति की निवृत्ति के लिए साधना-समन्वित बहुविध कर्मों की बातें कही गयी हैं।

यह कर्म शुभ और अशुभ-भेद से द्विविध है– उसमें अशुभ कर्मानुष्ठान करके प्राणीगण तीव्र यातना भोगते हैं और फलवासनासे जो शुभकर्म में प्रवृत्त होते हैं, वे भी कर्मशृङ्खला से आबद्ध हो इह और परलोक में बारम्बार गमनागमन करते हैं। जब तक जीव के शुभ अथवा अशुभ कर्म का क्षय नहीं होता है, तब तक सौ जन्मों में भी मुक्ति नहीं होती है। पशु जिस प्रकार लोहे अथवा सोने की शृङ्खला में बद्ध होता है, उसी तरह जीव शुभ अथवा अशुभ कर्म में आबद्ध होता है। जब तक ज्ञानोदय नहीं होता, तब तक सतत कर्मानुष्ठान और शत कष्ट स्वीकार करने पर भी मोक्ष-प्राप्ति नहीं होती है। जो निर्मल स्वभाव और ज्ञानवान् हैं- तत्त्वविचार अथवा निष्काम कर्म

द्वारा उनका तत्त्वज्ञान प्रकाशित होता है। ब्रह्म से आरम्भ कर तृणतक जगत् के सम्पूर्ण पदार्थ मायाद्वारा कल्पित हुए हैं; केवल एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है; इसको जान सकने से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

यहाँ तक जितना विचार हुआ उसके बाद बोध होता है कि और कोई तन्त्र को ब्रह्मज्ञानहीन कुछ आडम्बरपूर्ण कर्मानुष्ठान की पद्धति से पूर्ण शास्त्र कहकर उपेक्षा नहीं करेगा। तन्त्र का प्रधान उद्देश्य, जीव ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो। तब उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए क्या एक बार ब्रह्मभाव का चिन्तन करने से उसकी साधना हो जाती है? तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति ही समधिक कठिन है; जो अध्यात्म विषय में मूर्ख हैं, वे किस प्रकार उस भाव का अनुभव कर सकते हैं? मूर्ख व्यक्ति जिस प्रकार काव्य के रस को ग्रहण करने के लिए वर्ण परिचय से आरम्भ कर व्याकरण प्रभृति की शिक्षा ग्रहण करता है; उस प्रकार जो अध्यात्मतत्त्व से अनभिज्ञ हैं उसके लिए देवतापूजा से आरम्भ कर ब्रह्मोपासना तक जाना होता है। देवता की सूक्ष्म अदृष्ट शक्ति को जय न कर सकने पर ब्रह्मोपासना किस प्रकार की कराई जा सकती है। किन्तु देवता की आराधना से मुक्ति होती है, यह बात तन्त्रशास्त्र में किसी स्थान पर नहीं लिखी गई है। तब देवता की आराधना से मुक्तिपथ पर अग्रसर हुआ जाता है। वही अधिकारी भेद से साधनाभेद कर उन्नति की ओर अग्रसर होना होता है। इस प्रकार कर्मक्षय कर ब्रह्मज्ञान का अधिकारी होना होता है। तन्त्रशास्त्र में ही वह अधिकार विशद कर वर्णित हुआ है। यथा–

योगी जीवात्मनोरैक्यं पूजनं सेवकेशयोः ।
सर्वं ब्रह्मेति विदुषो न योगो न च पूजनम् ।।
ब्रह्मज्ञानं परं ज्ञानं यस्य चित्ते विराजते ।
किन्तस्य जपयज्ञाद्यैस्तपोभिर्नियमव्रतैः ।।

सत्यं विज्ञानमानन्दमेकं ब्रह्मेति पश्यतः ।
स्वभावाद् ब्रह्मभूतस्य किं पूजा-ध्यान-धारणा ।।
न पापं नैव सुकृतिं न स्वर्गो न पुनर्भवः ।
नापि ध्येयो न वा ध्याता सर्वं ब्रह्मेति जानतः ।।
अयमात्मा सदा मुक्तो निर्लिप्तः सर्ववस्तुषु ।
किं तस्य बन्धनं कस्मान्मुक्तिमिच्छन्ति दुर्जनाः ।।

–महानिर्वाणतन्त्र

जीव और आत्मा के एकीकरण का नाम योग है; सेवक और ईश्वर की ऐक्य पूजा है; किन्तु दृश्यमान सभी पदार्थ ही ब्रह्म है- इस प्रकार ज्ञान होने से योग अथवा पूजा की आवश्यकता नहीं है। जिसके अन्तर में परब्रह्मज्ञान विराजित है, उसको जप, यज्ञ, तपस्या, नियम और व्रतादिकी कोई आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने सभी स्थानों पर नित्य, विज्ञान और आनन्द-स्वरूप अद्वितीय ब्रह्मपदार्थ का दर्शन किया है, स्वभावतः ब्रह्मभूत होने से उनकी पूजा और ध्यानधारणा की आवश्यकता नहीं है। सभी ब्रह्ममय है, इस ज्ञान के उत्पन्न होने से पाप, पुण्य स्वर्ग, पुनर्जन्म, ध्येयवस्तु और ध्याता, का प्रयोजन नहीं रहता है। यह आत्मा सतत विमुक्त और सभी वस्तुओं से निर्लिप्त है, इस ज्ञान के उत्पन्न होने पर और कर्मों का बन्धन अथवा मुक्ति कहाँ?

अब बोध होता है कि पाठक समझ पाए हैं कि आत्मज्ञान ही तन्त्र का चरम उद्देश्य है और वह आत्मज्ञान प्राप्त होने से पुनः पूजादि कुछ का भी प्रयोजन नहीं होता है। किन्तु जबतक वह आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता है, तब तक पूजादि का प्रयोजन होता है, किसी पदार्थ का अनुसन्धान करने के लिए ही आलोक की आवश्यकता होती है, किन्तु प्राप्ति के बाद उस पदार्थ पर फिर आलोक की आवश्यकता नहीं रहती है। यथा–

अमृतेन हि तृप्तस्य पयसा किम् प्रयोजनम् ।

–उत्तर-गीता

जिस व्यक्तिने अमृतपानसे तृप्ति प्राप्त की है, उसको दूधका प्रयोजन क्या है? अतएव साधकों को प्रथमतः तन्त्रोक्त दीक्षा ग्रहणान्तर पूर्वोक्तक्रम से जप, पूजादि करते-करते कर्मक्षय होकर ज्ञान का विकास होगा; तभी ब्रह्मसाधना करेंगे। जिन व्यक्तियों ने पूर्ण दीक्षा प्राप्त की है वे ही व्यक्ति ब्रह्मोपासना के अधिकारी हैं। ब्रह्मसाधना का यह रूप है–

शाक्त, शैव, वैष्णव, सौर एवं गाणपत्य- ये पञ्च उपासकोंका सम्पूर्ण वर्ग ही ब्रह्मोपासनाका अधिकारी है। मुक्त्यभिलाषी साधक ब्रह्मज्ञ गुरुके निकट जाकर उसके चरणकमलका ध्यानपूर्वक भक्तिभाव से प्रार्थना करें कि–

करुणामयदीनेश तवाहं शरणं गतः ।
तत्पदाम्भोरुहच्छायां देहि मुर्ध्नि यशोधन ।।*

इस प्रकार प्रार्थना कर शिष्य यथाशक्ति गुरुकी पूजा करेगा; बाद में गुरुके सम्मुख कृताञ्जलिपुटसे शान्त होकर रहेगा।

गुरुदेव तब यथाविधान यथोक्त शिष्यलक्षणकी परीक्षाके साथ पूर्व-मुख अथवा उत्तरमुख होकर आसन पर बैठकर शिष्यको अपनी बाँई दिशामें बैठाकर करुणापूर्वक हृदयसे अवलोकन करेंगे। बादमें साधककी इष्टसिद्धिके लिए ऋषिन्यासकर शिष्यके मस्तक पर (हाथ रखकर) एक सौ आठ बार मंत्र जप करेंगे। ब्राह्मणके दाहिने कान; अन्य जाति के बाँए कान में सात बार '**ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म**' इस मन्त्र को सुनाएँगे। इसमें पूजादि की अपेक्षा नहीं है, केवल मात्र

---

* "हे करुणामय! हे दीनजनों के ईश्वर! मैं आपका शरणागत हुआ हूँ। हे यशोधन, आप मेरे मस्तक पर अपने चरण कमल की छाया प्रदान करें।"

मानसिक संकल्प करना होगा।

उसके बाद गुरुके पादपद्ममें पतित होने से गुरु उसको स्नेहसे प्रयुक्त–

उत्तिष्ठ वत्स, मुक्तोऽसि ब्रह्मज्ञानपरो भव।
जितेन्द्रियः सत्यवादी बलारोग्यं सदास्तु ते।।[१]

इस मन्त्र का पाठ-पूर्वक उत्थान कराएँगे। बादमें वह साधकश्रेष्ठ उठकर गुरुको यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करेंगे। बादमें गुरु की आज्ञा लेकर देवतासदृश भूमण्डलमें विचरण करेंगे।

जो ब्रह्ममन्त्र ग्रहण करते हैं, उसकी आत्मा मन्त्रग्रहण करने मात्रसे ही तन्मय हो जाती है। सत्, चित्, आनन्दस्वरूप परब्रह्म, स्वरूपलक्षण और तटस्थलक्षण द्वारा यथावत् ज्ञेय होते हैं। तब जो शरीरनिष्ठ आत्मत्व-बुद्धिरहित इस प्रकार सब योगी लोंग कर्तृक समाधि योगद्वारा– जो सत्तामात्र, निर्विशेष और वाक्य एवं मनके अगोचर हैं; जिनकी सत्तामें मिथ्याभूत त्रिलोकी सत्यत्वकी प्रतीति होती है, वही परब्रह्म-स्वरूप अनुभव करते हैं। इस रूप में स्वरूप लक्षण के द्वारा ब्रह्मको जानने पर साधनाकी अपेक्षा नहीं रहती है; केवल ब्रह्मभावमें तन्मय होकर इच्छानुकूल भूमण्डल में घूमेंगे। उनका उपदेश उपनिषत् और वेदान्तादि ग्रंथ में वर्णित है। संन्यास ही उसकी एकमात्र साधना है।[२] और जिससे यह विश्व उत्पन्न है; जात-विश्व जिसमें अवस्थान करता है और प्रलय-कालमें यह चराचर जगत् जिसमें लय प्राप्त होता है। इस रूपमें तटस्थलक्षणद्वारा वेद्य ब्रह्मकी

---

१. "वत्स! उठो, तुम मुक्त हो गये हो; तुम ब्रह्मज्ञान परायण हो जाओ, तुम सत्यवादी और जितेन्द्रिय होओ; सर्वदा तुम्हारा बल और आरोग्य अक्षतरूप में रहे।'

२. मेरे द्वारा रचित "प्रेमिकगुरु" में वह विशदरूप में वर्णित है।

साधना ही हम इस निबन्धमें विवृत्त करेंगे।

ब्रह्ममन्त्र-ग्रहणमें या उसकी साधनामें आयास नहीं है। उपवास नहीं है; शरीर सम्बन्धी कोई कष्ट नहीं है; आचारादिका नियम नहीं है;दिशा और कालादिका कोई विचार नहीं है। मुद्रा और न्यासका प्रायोजन नहीं है बहु उपचारादिका प्रयोजन नहीं, ब्रह्ममन्त्र में तिथि, नक्षत्र, राशि और चक्रगणनाका नियम नहीं है और किसी प्रकार के संस्कार की भी अपेक्षा नहीं है। यह मन्त्र सर्वथा सिद्ध है; इसमें किसी प्रकारके विचार की अपेक्षा नहीं है।

बहुजन्मार्जितैः पुण्यैः सद्गुरुर्यदि लभ्यते ।
तदा तद्वक्त्रतो लब्ध्वा जन्मसाफल्यमाप्नुयात् ।।

–महानिर्वाणतन्त्र

बहुजन्मार्जित पुण्यफलसे यदि जीव सद्गुरुको प्राप्त करता है, तब उसी गुरुके मुखसे निर्गत यह मन्त्र प्राप्त करने से तत्क्षणात् जन्म सफल हो जाता है।

यह ब्रह्ममन्त्र ग्रहण करने से ही देही ब्रह्ममय हो जाता है। इसलिए उसकी सन्ध्या, आह्निक, साधनान्तर श्राद्ध, तर्पणादि की आवश्यकता नहीं है। उसका कुल अपने से ही पवित्र होता है; पितृलोग आनन्दसे नृत्य करते हैं। साधना का क्रम इस प्रकार है–

ब्रह्ममन्त्रके ऋषि सदाशिव हैं; छन्द अनुष्टुप् है; उस मन्त्रके देवता निर्गुण सर्वान्तर्यामि-परमब्रह्म और चतुवर्गफलप्राप्ति के लिए विनियोग करेंगे। साधक समाहित चित्तसे उपवेशन करके ऋष्यादिन्यास करेगा। यथा- शिरसि सदाशिवाय ऋषये नमः - मुखमें अनुष्टुप्छंदसे नमः- हृदि सर्वान्तर्यामि-निर्गुण-परब्रह्मणे देवतायै नमः- धर्मार्थकाम-मोक्षावाप्तये विनियोगः। बाद में **"ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म"** इस पद समूहको क्रमान्वय उच्चारण कर समाहित चित्तसे करन्यास और

T

अंगन्यास करें। उसके बाद मूलमन्त्र अथवा प्रणव जप करते हुए ८/३२/१६ संख्या में तीन बार प्राणायाम करें। बाद में-

हृदयकमलमध्ये निर्विशेषं निरीहं ।
हरिहरविधिवेद्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम् ।।
जननमरणभीतिभ्रंशि सच्चित् स्वरूपं ।
सकलभुवनबीजं ब्रह्मचैतन्यमीड़े ।।*

इस ध्यानमन्त्र के पाठपूर्वक चैतन्य-स्वरूप ब्रह्मको हृदयकमल के अन्दर ध्यानकर मानसोपचारसे पूजा करें। पृथ्वीतत्त्वको गन्ध, आकाशतत्त्वको पुष्प, वायुतत्त्वको धूप, तेजतत्त्वको दीप और जलतत्त्वको नैवेद्य कल्पना करके उसी परमात्माको प्रदानकर मानस जप करना होगा।

उसके बाद वाह्यपूजा आरंभ करें। गन्ध-पुष्पादि वस्त्रालंकारादि और भक्ष्यपेयादि, पूजा का सभी द्रव्य ब्रह्ममन्त्रद्वारा संशोधन करके दोनों नेत्रों को निमीलनपूर्वक मतिमान् व्यक्ति सनातन ब्रह्मको ध्यान करते हुए परमात्मा को समर्पण करें। संशोधन और समर्पण मन्त्र इस प्रकार हैं- अर्पण अर्थात् यज्ञपात्र ब्रह्म, हवि अर्थात् हवनीय द्रव्य, जिसको अर्पण करना होगा वह ब्रह्म, अग्नि अर्थात् जिसे अर्पण करना होगा- वह भी ब्रह्म और जो आहुति अर्पण करते हैं, वह भी ब्रह्म हैं। इस प्रकार जो ब्रह्म में चित्त एकाग्ररूपसे स्थापित करते हैं, वे ही ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। बादमें यथाशक्ति ब्रह्ममन्त्र जप कर दोनों नेत्र

---

* जो नानारूपभेदशून्य हैं, जो चेष्टा-रहित हैं; जो ब्रह्मा-विष्णु-शिवजी के द्वारा ज्ञेय हैं, जो योगियों द्वारा ध्यानगम्य हैं; जिनसे जन्म और मृत्यू का भय दूर होता है; जो नित्यस्वरूप और ज्ञान-स्वरूप हैं; जो निखिल भुवन के बीजस्वरूप हैं; उनके सदृश चैतन्यस्वरूप ब्रह्म को हृदय में कमल में ध्यान करता हूँ।

उन्मीलनपूर्वक "ब्रह्मार्पणमस्तु" इस मन्त्रसे ब्रह्मको जप समर्पित करते हुए स्तवकवचादि पाठ करें।

बादमें भक्तिभावसे–

ॐ नमस्ते परमं ब्रह्म नमस्ते परमात्मने।
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सद्रूपाय नमो नमः ।।[१]

इस मन्त्रका पाठकर परमात्माको प्रणाम करें। इस प्रकार ब्रह्मकी पूजा कर आत्मीय स्वजनोंके सहित महाप्रसाद ग्रहण करें।

परब्रह्मकी पूजाके समय आवाहन भी नहीं और विसर्जन भी नहीं। हर समय सभी स्थानोंमें ही ब्रह्म-साधना हो सकती है। ब्रह्मस्मरण और महामन्त्रजप ही उनका प्रात:कृत्य और सन्ध्याह्निक है। स्नात हो अथवा अस्नात हो, भुक्त हो अथवा अभुक्त हो, जो कोई अवस्था अथवा जो कोई काल हो– विशुद्ध चित्तसे ही परमात्माकी पूजा करें।

---

१. परब्रह्म का स्तव–

ॐ नमस्ते सते सर्वलोकाश्रयाय नमस्ते चिते विश्वरूपात्मकाय।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय नमो ब्रह्मणे व्यापिने निर्गुणाय।।
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं त्वमेकं जगत्कारणं विश्वरूपम्।
त्वमेकं जगत्कर्त्तृपातृप्रहर्तृ त्वमेकं परं निष्कलं निर्विकल्पम्।।
भयानां भयं भीषणं भीषणानां गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं परेषां परं रक्षकं रक्षकाणाम्।।
परेशं प्रभो सर्वरूपाबिनाशिन्ननिर्देश्य सर्वेन्द्रियागम्य सत्य।
अचिन्त्याक्षरव्यापकाव्यक्ततत्त्व जगद्भासकाधीश पायादपायात्।।
तदेकं स्मरामस्तदेकं जपामस्तदेकं जगत्साक्षिरूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवाम्बोधिपोतं शरणं व्रजामः।।

परमात्मा ब्रह्म का यह स्तोत्र जो संयत होकर पाठ करते हैं, वे ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त होते हैं। यथा–

यः पठेत् प्रयतो भूत्वा ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्।

–महानिर्वाणतन्त्र

T

ब्रह्मार्पित वस्तु महापवित्रकारी और ब्रह्मनिवेदित वस्तु भोजन में ब्राह्मणादि वर्णका विचार नहीं; उच्छिष्टादिका विचार भी नहीं। इससे कालाकाल अथवा शौचाशौचका भी विचार नहीं। सभी कार्योंके प्रारम्भमें "तत्सत्" इस वाक्य का उच्चारण करें। सब कामोमें "ब्रह्मार्पणमस्तु" कहें। इस अति दुस्तर घोर पापमय कलियुगमें ब्रह्ममन्त्रकी साधना ही एकमात्र निस्तारका उपाय है। इसलिए ब्रह्मसाधक प्रातःकालमें प्रातःकृत्य समाधाकर त्रिकाल संध्या और मध्याह्नमें पूर्वोक्त पद्धतिसे पूजा करें।

ब्रह्मसाधक सत्यवादी, जितेन्द्रिय, परोपकारपरायण, निर्विकारचित्त और सदाशय होगा। सर्वदा ब्रह्मप्रतिपादक वाक्य श्रवण करेगा, ब्रह्मचिन्ता करेगा और सर्वदा ब्रह्मतत्त्व-जिज्ञासु होगा। सर्वदा संयत-चित्त और दृढ़बुद्धि होकर सब में ब्रह्ममयकी भावना करें। अपने को भी ब्रह्मस्वरूप समझेगा। ब्रह्ममन्त्रसे दीक्षित होनेसे ही सभी जाति ब्राह्मण सदृश पूज्य हो जाती है।

परब्रह्मोपदेशेन विमुक्तः सर्वपातकैः ।
गच्छति ब्रह्मसायुज्यं मन्त्रस्यास्य प्रसादतः ।।

—महानिर्वाणतन्त्र

ब्रह्ममन्त्र में उपदिष्ट व्यक्ति मन्त्रके प्रसादसे सर्वपापसे विनिर्मुक्त होकर ब्रह्म-सायुज्य प्राप्त करता है।

इसलिए ब्रह्मज्ञ गुरुके निकट ब्रह्ममन्त्रका उपदेश लेकर अपनेको ब्रह्मस्वरूप समझते हुए देश, काल, स्थान, खाद्याखाद्य, जाति-कुल और विधि-निषेध और विचार-शून्य होकर इच्छानुरूप भूमण्डलमें विचरण करता फिरेगा।

T

तन्त्रोक्त योग और मुक्ति

ब्रह्ममन्त्रके उपासकगण सर्वदा ब्रह्मविचार करेंगे। मन्त्रमें ही अति सुन्दर रूपसे ब्रह्मविचार प्रदर्शित हुआ है, उनके पाठ करने से तन्त्रके माहात्म्यका सम्यक्रूपसे अनुधावन कर सकेंगे।[१] तन्त्र एक अमूल्य शास्त्र हैं, यह समझ सकनेसे भक्ति-विनम्र-हृदयसे तन्त्रकार के उद्देश्यको नमस्कार करेंगे। ब्रह्ममन्त्रके उपासकगण पूर्वोक्त प्रणालीसे तत्त्वचक्रका अनुष्ठान करके भी ब्रह्मसाधना कर सकेंगे। कारण दिव्यभावावलम्बी साधक ही एकमात्र ब्रह्ममन्त्रका अधिकारी है। वे इच्छा करनेपर पूर्वोक्त आध्यात्मिक पंच-मकारद्वारा भी ब्रह्मोपासना कर सकते हैं। नहीं तो साधक सहज भाव की प्राप्ति के पूर्व ही योगावलम्बन करके भी ब्रह्मतन्मयता प्राप्त कर सकता है। हमने इतिपूर्व अन्यान्य ग्रन्थों में योग की प्रक्रिया का विवरण दिया है। तन्त्रशास्त्र में भी बहुविध योगका आभास देखा जाता है। हम ब्रह्मतन्मयता की प्राप्तिके उपायस्वरूप तन्त्रशास्त्रसे योगकी प्रणालीका नीचे विवरण देते हैं।

साधक उपयुक्त आसन पर स्थिर भावसे बैठकर गुरु, गणेश और इष्टदेवताको प्रणाम करेगा। बादमें पूरकयोगसे हंसरूपी जीवात्माको कुंडलिनीसे शरीरमें लय करायेगा। बादमें कुम्भकयोगसे कुलकुंडलिनी-शक्तिको सिरमें—सहस्रारमें ले जायेगा। कुण्डलिनी गमनकालमें क्रमशः चौबीस तत्त्व ग्रास कर जायेगी, अर्थात् तत्त्वसमूह उसके शरीरमें लय प्राप्त करेगा। उसके बाद कुण्डलिनीको सहस्रदल कर्णिकान्तर्गत बिन्दुरूपमें परमशिवके साथ ऐकात्म्य प्राप्त करायेगा। उसपर निस्तरंग जलाशय सदृश समाधि उत्पन्न हो "मैं ही ब्रह्म हूँ" यह ज्ञान उत्पन्न होगा।

---

१. वेदान्तशास्त्रानुयायी ब्रह्मविचार मेरे द्वारा रचित "ज्ञानीगुरु" ग्रन्थ में और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का उपाय "प्रेमिकगुरु" ग्रन्थ में विशद् लिखा है।

T

साधक मूलाधारमें कुण्डलिनीको तेजोमयी, हृदय में जीवात्मा और सहस्रारमें परमात्माको तेजोमय रूपमें चिन्तन करेगा। बादमें इन तीन तेजोंकी एकता कर उनमें ब्रह्माण्डको लीनके रूप में समझेगा। उसके बाद इस ज्योतिर्मय ब्रह्म ही मैं हूँ; इस चिन्तनमें तन्मय हो जाएगा और कुछ चिन्तन नहीं करेगा। ऐसा होने पर शीघ्र ब्रह्मज्ञान समुद्भूत होगा।

योनिमुद्रायोगमें कुण्डलिनीशक्तिको सहस्रारमें उत्थापित कर इष्टदेवीके रूपमें शिवके सहित मिलन करायेगा। उसके बाद वे स्त्री-पुरुष सदृश संगमासक्त होकर आनन्दरससे आलुप्त हो रहे हैं, यह चिन्तन करते हुए अपनेको उसी आनन्दधारामें प्लावित समझकर ध्यानपरायण हो जायेगा। उसके होनेसे "मैं ही वह हूँ" यह अद्वैतज्ञान उत्पन्न होगा।

अवश्य गुरुमुखसे योगके कौशल अवगत होकर अभ्यासद्वारा इस योगकी प्राप्ति करनी होगी। इष्टदेवताको आत्मासे अभिन्नभाव चिन्तन करने से साधक तत् स्वरूपता की प्राप्ति कर सकता है। मेरे इष्ट-देवतासे मेरी आत्मा भिन्न नहीं है; दोनों एक ही पदार्थ हैं, मैं बद्ध नहीं हूँ- मुक्त हूँ। साधक सर्वदा इसी रूपमें चिन्तन करेगा। इससे देवता के सारूप्य की प्राप्ति होती है। साधक के उक्त प्रकारसे अभिन्नरूप में शिव का चिन्तन करने से शिवत्व, विष्णुका चिन्तन करने से विष्णुत्व और शक्ति के चिन्तन से शक्तित्वकी प्राप्ति करता है। प्रतिदिन इस प्रकार अभिन्न चिन्तन-अभ्यास कर सकने पर साधक जरामरणादि दुःखपूर्ण भवबन्धनसे मुक्तिलाभ कर सकता है। जो साधक ध्यानयोग परायण है- उसकी पूजा, न्यास,और जपादि की आवश्यकता नहीं है; वह एकमात्र ध्यानयोगके बलसे ही सिद्धिलाभ कर सकता है- इसमें सन्देह नहीं है। यथा–

विना न्यासैर्विना पूजां विना जपैः पुरश्क्रियाम् ।

ध्यानयोगाद्भवेत् सिद्धिर्नान्यथा खलु पार्वति ।।

–श्रीक्रमतन्त्र

जिस प्रकार फेन और तरंगादि समुद्रसे उठकर और समुद्रमें लीन होता है, उसी प्रकार जगत् भी आत्मासे उत्पन्न है और आत्मामें ही विलीन होता है। इसलिए मैं भी आत्मासे अभिन्न हूँ।

अहं ब्रह्मास्मि विज्ञानादज्ञानविलयो भवेत् ।
सोऽहमित्येव संचिन्त्य विहरेत् सर्वदा प्रिये ।।

–गंधर्व-तन्त्र

मैं ब्रह्मसे अभिन्न हूँ- इसप्रकार ज्ञानके उत्पन्न होने से अज्ञानका लय होता है। इसलिए साधक सर्वदा योगपरायण होकर "मैं ही ब्रह्म हूँ" इस प्रकार चिन्तन करें।

यथाभिमतध्यानाद्वा ।।

–पातञ्जल-दर्शन

जिस किसी मनोज्ञ वस्तुके– जिसके मनमें होने से मन प्रफुल्ल होता है, एकाग्रताके अभ्यासके लिए उसीका ध्यान करें। ध्येयवस्तुमें चित्त स्थैर्य अभ्यस्त होनेसे सर्वत्र ही चित्त प्रयोग और उसमें चित्त तन्मय कर सकेगा। तब सभी प्रभेदभाव मनसे विदूरित हो एकाग्रभाव संस्थापित होगा; आत्मज्ञान की प्राप्ति होगी और अन्यान्य बाह्य चेष्टाएँ नहीं रह जाएँगी। यथा–

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ।।

जब बुद्धि पर्यन्त चेष्टारहित होती है; जब पाप-पुण्य धर्माधर्म सुख-दुःखादि सभी द्वैतभाव तिरोहित होकर मन निश्चल होता है, तब जीव में अद्वैत ब्रह्मज्ञान समुदित होकर परमगतिको प्राप्त होता है।

इस प्रकार जब तत्त्वज्ञान उत्पन्न होकर वैराग्य उपस्थित होगा,

T

तब सब कुछ परित्याग करके संन्यास धर्मका अवलम्बन [illegible] तन्त्रशास्त्र में विधि दी गई है। यथा–

तत्त्वज्ञाने समुत्पन्ने वैराग्यं जायते यदा।
तदा सर्वं परित्यज्य संन्यासाश्रममाश्रयेत्॥

–महानिर्वाणतन्त्र

तब देखिए, वैदिक शास्त्रादिसे किसी विषयमें तन्त्रशास्त्रकी निकृष्टता प्रमाणित नहीं होगी; वरन् अनेक विषयों में अन्यान्य शास्त्रों में तन्त्रका ही प्राधान्य देखा जाता है। निवृत्तिमार्गमें भी तन्त्रने श्रेष्ठासन प्राप्त किया है।[1]

इसलिए तन्त्रशास्त्रकी विधि-व्यवस्था सब केवल ब्रह्मज्ञानके लिए हैं। ज्ञानोदय होने से भ्रमरूप अज्ञानसे निवृत्ति होगी। अज्ञानकी निवृत्ति होनेसे माया, ममता, शोक, ताप, सुख, दुःख, मान, अभिमान, राग, द्वेष, हिंसा, लोभ, क्रोध, मद, मोह, मात्सर्य प्रभृति अन्तःकरणकी सम्पूर्ण वृत्तियाँ निरोध हो जायेंगी। तब केवल विशुद्ध चैतन्य मात्र की स्फूर्ति होती रहेगी। इस प्रकार केवल चैतन्यस्फूर्ति पाना ही जीवदशामें जीवन्मुक्ति एवं अन्तमें निर्वाण प्राप्ति कहा जाता है। तद्भिन्नः कर्मकाण्डद्वारा या अन्य किसी भी प्रकार से मुक्तिकी सम्भावना तन्त्र में कहीं भी नहीं दिखाई देती। वरन् तन्त्र ने कहा है–

यावन्न क्षीयते कर्म शुभञ्चाशुभमेव वा।
तावन्न जायते मोक्षो नृणां कल्पशतैरपि॥
यथा लौहमयैः पाशैः पाशैः स्वर्णमयैरपि।
तथा बद्धो भवेज्जीवः कर्म्मभिश्चाशुभैः शुभैः॥

–महानिर्वाणतन्त्र

---

१. निवृत्तिमार्ग का अर्थात् संन्यासाश्रम की कर्त्तव्यता साधनाप्रणाली प्रभृति मेरे द्वारा रचित "प्रेमिकगुरु" में विस्तार सहित लिखी गयी है।

जब तक शुभ और अशुभ कर्मका नाश न हो, तब तक सौ कल्पमें भी मनुष्य की मुक्ति नहीं हो सकती। जिस प्रकार शृंखल लौहरूप हो अथवा स्वर्णमय हो, दोनों प्रकार के शृंखलसे बन्धन किया जाता है, उसी प्रकार जीवगणका शुभ अथवा अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों के द्वारा बन्धन होता है।

केवल ज्ञान ही मुक्ति का हेतु है। वह ज्ञान किस रूप में उत्पन्न होगा।

ज्ञानं तत्त्वविचारेण निष्कामेनापि कर्मणा।
जायते क्षीणतमसां विदुषां निर्मलात्मनाम्।।

—महानिर्वाण-तन्त्र

तत्त्वविचार और निष्काम कर्मानुष्ठानद्वारा आवरणशक्ति सम्पन्न तमोराशिके क्रमश: विदूरित होने से हृदयाकाश निर्मल होकर तत्त्वज्ञानका उदय होता है।

तन्त्रशास्त्रके मतमें तत्त्वज्ञान प्राप्ति का उपाय इस प्रकार है– प्रथमत: गृहस्थाश्रममें अवस्थितिपूर्वक गुरुदेवके निकट मन्त्रदीक्षामें दीक्षित होकर पशुभावानुसारसे वेदाचार द्वारा वैदिक कर्म, वैष्णवाचार द्वारा पौराणिक कर्म एवं शैवाचारद्वारा स्मार्त कर्म करें। बादमें शाक्ताभिषिक्त होकर पशुभावानुसार दक्षिणाचारद्वारा साधना करें। उसके बाद पूर्णाभिषिक्त होने के बाद गृहावधूत होकर वीरभावानुसार वामाचारद्वारा साधना करें। फिर क्रमदीक्षा से दीक्षित होकर वीरभावानुसार वामाचारद्वारा यथाविधि साधनामें उन्नति लाभ करें। उसके बाद साम्राज्यदीक्षामें दीक्षित होकर वीरभावानुसार सिद्धान्ताचारद्वारा साधना कार्य सम्पन्न करें। उसके बाद महासाम्राज्यदीक्षासे दीक्षित होकर दिव्यभावानुसार कुलाचारद्वारा साधना करें। अन्त में पूर्णदीक्षा से दीक्षित होकर दिव्यभावानुसार कुलाचारद्वारा साधना में उन्नति करें। इस अवस्थामें

ही गृही होने पर उसको अपूर्ण शैवावधूत अथवा अपूर्ण ब्रह्मावधूत कहा जाता है। तब इच्छानुसार कब गृहमें अथवा कब तीर्थमें विचरण करें अर्थात् परिव्राजक होगा। यदि गृहमें न रहकर सर्वथा सन्यासाश्रम अवलम्बन करना होता हो, तब पूर्ण शैवावधूत अथवा पूर्ण ब्रह्मावधूत होकर दिव्य भावानुसारसे कुलाचारद्वारा साधना करके परमहंस होगा। इसके बाद दिव्यभावसे परिपक्व होने से हंसावधूत होकर योगी होगा। योगसिद्धि होने से ही तत्त्वज्ञान प्रकाशित होगा, तब और कुछ नहीं करेगा; समाधिस्त होकर क्षितितलमें वृक्षकोटरमें अथवा पर्वतगुहामें निष्क्रिय होकर समय व्यतीत करेगा।

सर्वथा माया-समताशून्य होकर संसार परित्याग करके गिरिगुहामें वास करना सहज व्यापार नहीं है, इसके लिए धीरे-धीरे सभी संसर्गों को छोड़कर निर्जनमें वासकर वैराग्याभ्यास करेगा। जिस व्यक्ति की साधनामें सिद्धि लाभ करने की इच्छा है, वह व्यक्ति प्रथमतः निर्जनमें शुद्धाचारसे शुद्धासन पर उपविष्ट होकर शरीरको सुस्थिर करें। उसके बाद बुद्धिको निश्चल कर अपने इष्टदेवताके प्रति भक्तिसे मनको परिपूर्ण करेगा। बुद्धिद्वारा समस्त जगत् के अनित्य बोधसे इष्टदेवताओं में अथवा आत्मा में लय समझेगा। तब यह संसार इष्टदेवतामय अथवा आत्ममय दर्शन होगा और अपने को अभिन्न समझेगा। यह संसार सब इष्टदेव अथवा आत्मामें लय हो जाएगा तब केवल निद्राभंग होने पर जिस प्रकार स्मरण होता है--उसी रूपमें यह संसार केवल स्मरण मात्र रहेगा। प्रतिनियत इस अवस्थाके अभ्यासवशतः जब मन और बुद्धिको इष्टके श्रीचरणोंमें अथवा आत्मामें लय करके दीर्घकाल अवस्थान करने की क्षमता उपस्थित होगी तब सच्चिदानन्द और जीवन्मुक्त होकर गृह पर, वनमें अथवा गिरिकन्दरामें सर्वत्र ही देवमय, ब्रह्ममय अथवा आत्ममय रूपमें देखते हुए इच्छानुसार अवस्थान कर सकेगा।

आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदं
जानात्यभेदेन मयात्मनस्तदा ।
यथा जलं वारिनिधौ यथा पयः
क्षीरे वियद्व्योम्न्यनिले यथानिलः ।।

जब साधक इस समस्त जगत् को अपने स्वरूपसहितं अभेदभावमें समझेगा, तब जिस प्रकार समुद्र में प्रविष्ट जलमें जल, दुग्धमें प्रक्षिप्त दुग्ध, महाकाशमें घटाकाश और महावायुमें यन्त्रोत्क्षिप्त वायुमिश्रित होकर अभेदरूपमें प्रतीत होता है। उसी प्रकार वही साधक परमात्माके साथ अपने को अभेदरूपमें जान सकते हैं।

इसलिए शास्त्रमें जीवन्मुक्तिका लक्षण इसरूपमें निर्देश किया है कि– जिस प्रकार सहस्रकिरणमाली दिवाकर अपनी किरणोंके विस्तारद्वारा चराचर ब्रह्माण्ड प्रकाशित करके सर्वत्र ही अवस्थान करते हैं। इस रूपमें ज्ञानविशिष्ट जो पुरुष हैं, वे ही जीवन्मुक्त नाम से पुकारे जाते हैं। यथा–

एवं ब्रह्म जगत् सर्वमखिलं भासते रविः ।
संस्थितः सर्वभूतानां जीवन्मुक्तः स उच्यते ।।

ॐ शान्तिः ओम्

T

परिशिष्ट

विशेष नियम

तन्त्रशास्त्र किस प्रकार मोक्षलाभका पथप्रदर्शक है, उसे शायद पाठक भलीभाँति समझ गए हैं। इससे तत्त्वज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान और उसके लाभका उपाय जिस प्रकार प्रदर्शित हुआ है, उससे कोई निरपेक्ष साधक वेदान्तादि की अपेक्षा तन्त्रको किसी भी विषय में अदूरदर्शी नहीं कह सकता है। पर तन्त्रसे अनभिज्ञ की बात धर्तव्य नहीं है। वरन् इसमें सगुण-ब्रह्म-अथवा साकार ईश्वरोपासना एवं स्थूल देवदेवियों की जिस प्रकार सहज साधनपन्था विवृत है, उसपर विचार करनेसे शतमुखसे तन्त्रकारका गुणगान करना होगा। हमने साधनाकल्पमें उसे विशेषरूपमें साधारण व्यक्तियों को गोचर कराया है। इसके अतिरिक्त तन्त्रमें जो सब क्रूरकर्म और अविद्या की साधना व्यक्त हुई है; पूर्व में ही कहा गया है कि हम उसको अविद्या-विमोहित मानव समाज में प्रचार नहीं करेंगे। तब कितनी कर्मानुष्ठान पद्धति और साधनाकौशल परिशिष्टमें व्यक्त करता हूँ, जो गृहस्थाश्रमी मानवगणके नित्यप्रयोजनीय हैं। सामान्य साधनासे शास्त्रमें विश्वास होगा और धन-धान्यादि लाभ कर और निरोग होकर सुखसे संसारमें कालयापन कर सकेगा और कितने तन्त्रोक्त उपायसे दुरारोग्य रोगप्रतिकारकी विधि भी विवृत होगी। पाठक! साधना करके– रोगमुक्त होकर सहज ही तन्त्रशास्त्रकी महिमा समझने में समर्थ हो सकेंगे। तब उन अनुष्ठानोंसे लाभ उठानेके लिए शास्त्रोक्त कितने विशेष नियमों का ज्ञान रखना आवश्यक है, नहीं तो फल नहीं होगा। नीचे नियमों को लिपिबद्ध किया जाता है।

अदीक्षित व्यक्ति स्वार्थ सिद्धिके लिए केवल काम्यकर्मका अनुष्ठान करके फल की प्राप्ति नहीं कर सकेगा। दीक्षित व्यक्ति क्रमशः पूर्णाभिषेक और क्रमदीक्षा संस्कारसे संस्कृत होकर बादमें काम्यकर्मका अंनुष्ठान करेगा। प्रथमतः साधकके नित्य-नैमित्तक सब कार्य प्रकृष्टरूपमें सम्पन्न कर लेने पर, किसी प्रकार विशेष साधनामें अग्रसर होने में क्षमता उत्पन्न होती है। तब जिसके मनमें जिस प्रकार की अभिलाषा होती है, वह उसके अनुरूप साधनामें प्रवृत्त हो सके। जिसका जो इष्ट है, उसका उस विषयमें साधना करना कर्त्तव्य है। साधनान्तमें इष्टसिद्धि होने पर साधक तब सभी प्रकारसे साधनाकार्यों को हस्तगत कर सकता है।

साधारणतः साधना दो प्रकार के हैं- प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति साधनाका उद्देश्य यह है कि इस संसारमें सुख समृद्धिका उपभोगकर अन्तमें स्वर्गादिको प्राप्त करना है; निवृत्ति साधनाका उद्देश्य यह है कि इस संसार के सुख और समृद्धि की इच्छा परित्यागकर अन्तमें केवल मोक्षलाभ करना है। इन दो प्रकारके साधनोंमें जिसकी जिस प्रकार प्रवृत्ति है, वह उस प्रकारसे कार्य करता है। निवृत्ति साधनाकांक्षी व्यक्तिकी भोग-स्पृहा न रहने पर भी वह प्रवृत्ति साधनाकार्य समापनान्तर निवृत्ति-साधनाकार्यमें नियुक्त होगा। अर्थात् साधनाकार्य सब जिस प्रणालीसे विन्यस्त हुए हैं, वे सभीके करने योग्य है। उनमें किसी की भोगस्पृहा रहती है अथवा किसी की नहीं रहती है यही केवल प्रभेद है; किन्तु पद्धतिके अनुसार सभीको चलना होगा; न चलने पर प्रत्यवाय होगा अर्थात् इष्टसिद्धि नहीं होगी। यह कारण है कि मन की प्रसन्नता नहीं उत्पन्न होगी; इसलिए सिद्धिलाभ दुरूह होगा। इसलिए तन्त्रका उपदेश यह है कि जब तक संसार-सुख-स्पृहा परितृप्त न हो तब तक गृहस्थाश्रममें अवस्थितिपूर्वक नित्य, नैमित्तिक और काम्यादि सभी कर्म करें। उसके बाद भोगस्पृहाका अवसान होनेसे निवृत्ति धर्मसाधनाके

लिए संन्यासाश्रमका अवलम्बन करें। इह लोकमें सुख भोगके लिए जो सब वेदविहित कर्म हैं, संसार की प्रवृत्ति के हेतु उसे प्रवृत्ति-धर्म की साधना कहा जाता है और संसारनिवृत्तिके हेतु विधासे उसको निवृत्तिधर्मकी साधना कहा जाता है। प्रवृत्ति कर्म के संशोधन द्वारा देवतुल्य गति की प्राप्ति होती है और निवृत्ति कर्म की साधनाद्वारा भूतप्रपञ्चका अतिक्रमण कर मोक्ष-लाभ होता है। यथा–

सकामाश्चैव निष्कामा द्विविधा भूवि मानवाः ।
अकामानां पदं मोक्षो कामिनां फलमुच्यते ।।

-महानिर्वाण-तन्त्र

इस संसार में सकाम और निष्काम यह दो श्रेणीके मनुष्य हैं। इनमें जो निष्काम हैं, वे मोक्षपदके अधिकारी हैं और जो सकाम हैं, वे संसारमें नाना प्रकार की भोग्यवस्तुका भोगकर अन्तमें स्वर्गलोकादिको प्राप्त होते हैं। इसलिए सकाम व्यक्तिगण ही काम्यकर्मका अनुष्ठान करें।

नित्य-नैमित्तिक क्रियावान् व्यक्ति क्रमदीक्षा अथवा पूर्णाभिषेक संस्कार लाभ कर काम्यकर्मका अनुष्ठान करेगा। शाक्त, शैवादि पञ्च उपासकगण ही काम्यकर्मके अधिकारी हैं। ओंकार-उपासक अथवा संन्यासाश्रम की कोई व्यक्ति कभी भी काम्य-कर्मका अनुष्ठान न करें। जो नित्यनैमित्तिक कर्मसाधन न करके फल-लाभसे प्रलुब्ध होकर केवल मात्र काम्यकर्मका अनुष्ठान करता है वे अधिक भ्रांत हैं। कारण नित्यकर्मी व्यक्ति ही साधना में योग्यता प्राप्त कर सकता है, उसके अतिरिक्त अन्यके लिए साधनाकार्यमें अग्रसर होना केवल बन्ध्या स्त्रीसे सन्तानोत्पादन की चेष्टा सदृश विफल होता है। इसलिए वे साधनाकार्यमें आशानुरूप फल न पाकर शास्त्र की निन्दा करने लगते हैं। उससे दूसरे भी निरुत्साह हो जाते हैं। अतएव किसी भी साधनाकार्य में फल लाभ

करने की आशा रखने से सयत्न नित्यकर्मका अनुष्ठान करें। एकमात्र नित्यकर्मी ही काम्यकर्मका अधिकारी है।

नित्य-नैमित्तिक कर्मानुष्ठानकारी व्यक्ति फलकामना कर जिस किसी काम्यकर्मके अनुष्ठानमें फललाभ कर सकता है। दूसरों की वह आशा दुराशा-मात्र है। साधक सत्यवादी, संयत और हविष्याशी होकर साधना कार्यका अनुष्ठान करें। देवालयमें, वनमें, नदीतीर पर, पर्वत पर, श्मशानमें, बेर के वृक्ष के मूलदेशमें अथवा जिस किसी निर्जन स्थान में गोपनीय ढंग से साधना करनी होती है।

साधनाके बिना कोई शान्ति-कर्म, स्वस्त्ययन, पूजा, होम अथवा स्तवकवचादि के लिए भी पूर्वोक्तरूपसे अधिकारी का प्रयोजन है। नहीं तो फललाभ नहीं होगा और दीक्षित ब्राह्मण बिना तन्त्रोक्त यन्त्र-मन्त्र अन्य कोई व्यवहारमें नहीं ला सकता। ब्राह्मणके न रहने से शूद्रादि जाति अपने गुरु अथवा पुरोहित द्वारा ये सब कार्य करा लेंगे। गुरु और पुरोहितके अभावमें अन्य ब्राह्मणके द्वारा भी कराया जा सकता है। शूद्रादिमें जो दीक्षाग्रहण के बाद पूर्णाभिषिक्त हुए हैं, वे स्वयं ही सभी कार्य कर सकते हैं। शूद्र पूर्णाभिषिक्त होने पर किसी भी जाति के शूद्र ही क्यों न हों, ब्राह्मण-गण-सदृश सभी कार्यों के अधिकारी होंगे और प्रणवादि सभी वेदमन्त्र उच्चारित कर सकेंगे। इसलिए अभिषिक्त वैद्य और शूद्रगण स्वयं पश्चादुक्त कार्य करेंगे, उसमें कोई बाधा नहीं। किन्तु नित्य, नैमित्तिक क्रियाहीन आचारभ्रष्ट व्यक्तिके द्वारा कभी भी सुफलकी आशा नहीं। यथा–

> अस्तु तावत् परो धर्मः पूर्वधर्मोऽपि नश्यति ।
> शाम्भवाचारहीनस्य नरकान्नैव निष्कृतिः ।।

–महानिर्वाणतन्त्र

जो शम्भुप्रोक्त आचारहीन हैं, उसका तत्तत् कर्म के लिए धर्म

दूर रहे, पूर्वसञ्चित धर्म नष्ट होगा और उनके नरक से उद्धारका उपाय नहीं है।

इसलिए पूर्वोक्तरूप अधिकारी व्यक्ति पश्चादुक्त साधना और शान्ति कर्म अनुष्ठान करें। दूसरोंको फल-लाभकी आशा नहीं है। अनधिकारी व्यक्ति साधना के अनुष्ठान करने से विडम्बना भोगेगा और शास्त्रमें अविश्वासी होकर जीवन विषमय कर देगा। उपर्युक्त संस्कार प्राप्त करने पर यथाविधि आचार पालन करने पर साधना और जप-पुजादिका अनुष्ठान करने से निश्चय ही फल प्राप्त कर सकेगा- शिव वाक्यमें सन्देह नहीं है। हम भी बहुत बार पश्चादुक्त विषयों की परीक्षा कर फल प्राप्त किए हैं। इसी से भोगासक्त मनुष्यों के लिए नीरोग और दीर्घजीवन लाभका उपाय और भोग और भोग्य वस्तु संग्रहके उपाय नीचे लिखे जा रहे हैं। पाठकगण! तन्त्रोक्त साधनाका अधिकार प्राप्तकर कर्मानुष्ठान-पूर्वक शास्त्रकी परीक्षा करें; उससे स्वस्थ और निरोग देह प्राप्त कर भोग-सुखसे जीवन अतिवाहित कर सकेंगे।

योगिनी-साधना

भैरवी,नायिकादि अविद्या और योगिन्यादि उपविद्या की साधनासे इस संसार में ख्यातिप्रतिपत्तिके साथ राजाके सदृश भोगविलासमें कालातिवाहित की जा सकती है। किन्तु अविद्यासेवी व्यक्ति अन्तमें नरकमें अवश्य जाता है। विशेषत: विपरीत बुद्धिका उदय होकर मनोवासनाकी पूर्णतामें भी विघ्न उत्पादन होता है। देशप्रसिद्ध काला पहाड़ ने देवता, धर्म, गो और ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिए, अष्टनायिकाकी साधना करके किस प्रकार देवता और धर्मकी रक्षा की थी, वह किसीसे

T

अविदित नहीं है। इसलिए अविद्या-विमोहित मानव-समाज में अविद्याकी साधनादिको व्यक्त करना मंगलमय नहीं है। तब उपविद्यादि साधनामें वह भय नहीं है। वरन् उस साधनामें प्रवृत्तिपूर्ण भोगवासनाके क्षय में महाविद्या की साधनाका अधिकार प्राप्त किया जाता है। वही योगिनी साधना का विवरण दे रहे हैं।

शास्त्रों में कहा गया है कि योगिनीगण जगज्जननी दगदम्बाकी सहचारिणी हैं। इसलिए योगिनी-साधना करके जिस प्रकार भोगवासना को पूर्ण किया जाता है। उसी प्रकार फिर उनकी सहायतासे इष्टसाक्षात्कार लाभकी भी सहायता प्राप्त की जाती है। इसीलिए भूतभावन भवानीपति प्राणीवर्ग के हितसाधनार्थ योगिनी साधनाका प्रकाशन किया है। योगिनी की अर्चना करके कुवेर धनपति हुए हैं। इनकी अर्चना करनेसे मनुष्य राज्य प्राप्त कर सकता है। योगिनियोंमें आठ प्रधान हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं- सुरसुन्दरी, मनोहरा, कनकवती, कामेश्वरी, रतिसुन्दरी, पद्मिनी, नटिनी और मधुमती। इनमेंसे किसी एककी साधनामें मानव अशेष सुख और सम्पत्तिका अधिकारी हो ख्याति प्रतिपत्तिके साथ दीर्घकाल संसार यात्राका निर्वाह कर सकता है। इस ग्रंथ में सभी योगिनियोंकी साधनापद्धति का विवरण देना असम्भव है। हम केवल सर्वश्रेष्ठ मधुमती योगिनी की साधना प्रणाली को इस स्थल पर व्यक्त करेंगे। जिस किसी एक योगिनीकी साधना करने से ही मनोवांछा पूर्ण होगी। तब सर्वसिद्धि-प्रदायिनी मधुमती देवी अतिगुह्य हैं। एकमात्र इनकी साधनासे मानव का सर्वाभीष्ट सिद्ध हो सकता है और साधना भी थोड़ी सहजसाध्य हो सकती है; इसी से हम मधुमती देवी की साधना-प्रणाली को प्रकाशित कर रहे हैं।

धीमान् साधक हविष्याशी और जितेन्द्रिय होकर योगिनीकी साधना करेगा। इस साधना के लिए बसन्तकाल उपयुक्त होगा।

T

उज्जटे प्रान्तरे वापि कामरूपे विशेषतः।

–डामरतन्त्र

उजाड़ अथवा प्रान्तर में इस साधना को करें, विशेषतः कामरूप में यह सिद्धिकार्य विशेष फलप्रद होता है। इन सब स्थानोंमें से कोई एक स्थान पर भी योगिनीका ध्यान करके उनके दर्शन के लिए समुत्सुक हो संयत चित्तसे इस साधनाको करें। इस प्रकार के विधान से साधना करने से निश्चय देवीका दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। जो देवी के सेवक हैं, वे ही इस कार्यके अधिकारी हैं। ब्रह्मोपासक संन्यासीगणोंको इस कार्य में अधिकार नहीं है। यथा–

देव्याश्च सेवकाः सर्वे परं चात्राधिकारिणः।
तारकब्रह्मणो भृत्यं विनाप्यत्राधिकारिणः।।

–तन्त्रसार

धीमान् साधक प्रातःकाल गात्रोत्थान कर स्नानादि नित्य क्रिया समापनके अन्तमें "हौँ" इस मन्त्रसे आचमनकर **"ॐ सहस्रारे हूँ फट्"** इस मन्त्रसे दिगबन्धन करेगा। बादमें यथोपयुक्त स्थानमें साधनाका आयोजन कर पूजा द्रव्यादि लाएँगे। उत्तर अथवा पूर्वमुखसे जिस किसी आसन पर बैठकर (इस कार्यके लिए रंगीन कम्बलासन प्रशस्त) भूर्जपत्र में कुंकुमद्वारा ध्यानानुयायी मधुमती देवी की प्रतिमूर्ति अंकित कर उनके बाहरी भाग में अष्टदल पद्म लिखेगा। इसके बाद आचमन अंगन्यासादि करके "सूर्यः सोमः" पाठपूर्वक स्वस्तिवाचन करेगा। उसके बाद सूर्यार्घ्य स्थापित कर प्रणाम करेगा। बाद में मूलमन्त्रसे १६/६४/३२ संख्या से तीन बार प्राणायाम कर- **"ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौ ह्रः"** मन्त्रद्वारा अंगन्यास और करन्यास करें। उसके बाद भुर्जपत्रपर इस अंकित मूर्तिमें जीवन्यासद्वारा प्राण-प्रतिष्ठा और पीठदेवताका आवाहन कर मधुमती का ध्यान करें।

T

ॐ शुद्धस्फटिकसंकाशां नानारत्नविभूषिताम् ।
मंजीरहारकेयूर-रत्नकुण्डलमण्डिताम् ।।

इस मन्त्र का ध्यान कर मूलमन्त्र से देवी की पूजा करें। मूलमन्त्र के उच्चारणपूर्वक पाद्यादि प्रदान कर धूप, दीप, नैवेद्य, गंधपुष्प और ताम्बुल निवेदन करें। पूजादि सामान्यपूजा प्रकरण की प्रणाली से सम्पन्न करें।

बाद में पूजा समाप्त कर फिर प्राणायाम एवं अंग और करन्यास समापन करके योगिनी का ध्यान करते हुए जपके नियमानुसार समाहित चित्त से सहस्त्रबार जप करें। उसके बाद फिर देवीके हाथ में जपफल समर्पण और भक्तिभाव से साष्टांग प्रणाम करें। मधुमती देवी का मंत्र - यथा-**''ॐह्रीं आगच्छ अनुरागिणि मैथुनप्रिये स्वाहा''**यह मंत्र गुरु के निकट से सुन लेने से अच्छा होता है।

यह साधना कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि से आरम्भ कर गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यादि उपचार से त्रिसंध्या देवी की पूजा और एक सहस्त्र जप करें। इस प्रकारसे एकमास पूजा और जपकर पूर्णिमा तिथिके प्रातःकाल से षोड़शोपचार से साधक देवी की पूजा करें। बादमें घृतप्रदीप और धूप प्रदान कर दिवारात्र मंत्र का जप करते रहें। रात में देवी साधक को नानारूप से भय दिखाएँगी। उससे साधक भयभीत न होकर जप करता रहें। देवी साधक को भी दृढ़प्रतिज्ञ जानकर प्रभात समय में साधक के निकट आगमन करेगी। तब साधक फिर भक्तिभाव से पाद्यादिद्वारा पूजा, उत्तमचन्दन और सुगंधित पुष्पमाला प्रदान करते हुए देवी को माता, भगिनी, भार्या अथवा सखी सम्बोधन कर वरग्रहण करें। बाद में देवी साधक को अभिलषित वर प्रदान कर प्रस्थान करेंगी।

योगिनी-साधना में सिद्धि लाभ करने से देवी प्रत्यह रात में

साधक के निकट आकर रति और भोजन द्रव्यद्वारा उसको परिपोषित करती रहती हैं। देवकन्या, दानवकन्या, नागकन्या, यक्षकन्या, गंधर्वकन्या, विद्याधरकन्या, राजकन्या, और विविध रत्नभूषण और चर्व्यचोष्यादि नाना भक्ष्य द्रव्य प्रदान करती है। देवी को भार्यारूप से भजन करने पर साधक अन्य स्त्री के प्रति आसक्ति परित्याग करें, अन्यथा देवी क्रुद्धा होकर विनाश कर देती हैं। यथा-

अन्यस्त्रीगमनं त्यक्त्वा अन्यथा नश्यति ध्रुवम् ।

-भूतडामर

साधक देवी के प्रसाद से सर्वज्ञ, सुन्दरकलेवर और श्रीमान् होकर निरामयदेह से दीर्घकालतक जीवित रहता है। सर्वत्र गमनागमन की शक्ति उत्पन्न होती है। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में जो सब वस्तु विद्यमान हैं, देवी साधक की आज्ञा के अनुसार उन समस्त को लाकर उसे अर्पण करती है और प्रतिदिन प्रार्थित सुवर्ण-मुद्रा उसे प्रदान करती हैं। प्रतिदिन जो पाएगा, उसको सम्पूर्णरूप से व्यय करेगा; किंचिन्मात्र अवशिष्ट रहने पर भी देवी कुपिता होकर और कुछ प्रदान नहीं करेंगी।

रेमे सार्द्धं तया देवी साधकेन्द्रो दिनेदिने ।

–तन्त्रसार

साधक इसी प्रकार योगिनीसाधना कर प्रतिदिन देवी के सहित क्रीड़ाकौतुकादि करते हुए सुख से जीवन-यापन करता है।

T

हनुमद्देवकी वीर-साधना

योगिनी-साधना करके जिस प्रकार भोग-विलास किया जाता है, उसी प्रकार हनुमत् साधना करके शौर्य-वीर्य लाभ करके पृथ्वी में अपना आधिपत्य स्थापित किया जा सकता है। उसी कारण से मैं हनुमद्देव की साधना-प्रणाली भी विवृत कर रहा हूँ। यह साधना-प्रणाली महापुण्यजनक और महापाप-नाशक है। हनुमद्देव की साधना अतिगुह्य और मानव के लिए शीघ्र सिद्धिप्रद है– जिसके प्रसादसे अर्जुन त्रिलोकजयी हुए थे। यथा-

एतन्मन्त्रमर्ज्जुनाय प्रदत्तं हरिणा पुरा।
जयेन साधनं कृत्वा जितं सर्वं चराचरम्।।

–तन्त्रसार

हनुमत् साधना मन्त्र पूर्व में श्रीहरि ने अर्जुन को प्रदान किया था। अर्जुन ने इसी मन्त्र की साधना से चराचर जगत् को जय किया था।

गुरुदेवके निकट हनुमन्मंत्र ग्रहण करके नदीकूल पर, विष्णु मन्दिरमें, निर्जन अथवा पर्वत पर एकाग्रचित्त होकर साधना करेगा। "**हं पवननन्दनाय स्वाहा**" यह दशाक्षर हनुमन्मन्त्र मनुष्य के लिए कल्पवृक्ष सदृश है। हनुमद्देव के अन्यान्य मन्त्रों में से यह मन्त्र श्रेष्ठ है, आशुफल प्रद है और अत्यन्त सहज साध्य है। अन्यान्य मन्त्रों-सदृश इस मन्त्र में यन्त्र, पूजा अथवा होमादि नहीं करना होगा, केवल मात्र तप से ही सिद्धि की प्राप्ति होगी। साधना की प्रणाली इस प्रकार की है–

साधक ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठ कर संध्या- वन्दनादि नित्यक्रिया समापन करके अन्त में तीर्थावाहनपूर्वक आठ बार मूलमन्त्र का जप करें। उसके बाद उस जल द्वारा अपने मस्तक पर द्वादशबार अभिषेक कर दो वस्त्रोंका परिधानकर नदीतीर पर अथवा पर्वत पर बैठकर '**हां अंगुष्ठाभ्यां**

नमः' इत्यादि प्रकार से करन्यास और 'हां हृदयाम नमः' इत्यादि प्रकार से अंगन्यास करें। उसके बाद अ-कारादि षोड़श स्वरवर्ण उच्चारण कर वाम नासापुट में वायु पूरण, क-कारादि म-कारान्त पचीस वर्णों को उच्चारित कर कुम्भक और य-कारादि क्षकारान्त नव वर्णों को उच्चारित कर दक्षिण नासा से वायु रेचन करें। इस प्रकार दक्षिण नासा से पूरण, दोनों नासा पुटों के धारण से कुम्भक और वाम नासा से रेचन करें। इस प्रकार अनुलोम विलोम क्रम से तीनबार प्राणायाम कर मन्त्रवर्णद्वारा अंगन्यास पूर्वक ध्यान करें।

ध्यायेद्रणे हनुमन्तं कोटिकपिसमन्वितम् ।
धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम् ।।
लक्ष्मणञ्च महावीरं पतितं रणभूतले ।
गुरुञ्च क्रोधमुत्पाद्य गृहीत्वा गुरुपर्वतम् ।।
हाहाकारैः सदर्पैश्च कल्पयन्तं जगत्त्रयम् ।
आब्रह्माण्डं समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम् ।।*

इस ध्यानानुयायी हनुमद्देव का चिन्तन करते-करते उनका पूर्वोक्त मन्त्र यथानियम से छः हजार बार जप करेगा। जप के अन्त में फिर तीन बार प्रणायाम कर जप समर्पण करना होगा।

इस प्रकार छः दिवस जप करके सातवें दिवस-दिवारात्रि व्यापी जप करता रहेगा। इस प्रकार एकाग्र चित्त से दिवारात्रि मन्त्र जपने से

---

* हनुमान रणमध्यगत एवं कोटि-कोटि कपिगण से परिवृत । ये रावण की पराजय के लिए दौड़ रहे हैं, उनको देखकर रावण सत्वर खड़ा हो गया। महावीर लक्ष्मण भूमि पर पतित हैं, उनको देखकर ये क्रोध से भरकर महापर्वत उत्पाटन पूर्वक सदर्प हाहाकार ध्वनि से त्रिभुवन को कम्पित कर दिए हैं। ये ब्रह्माण्डव्यापी भीम कलेवर प्रकाशकर अवस्थित हैं। ध्यान के इस भाव का चिंतन करते-करते जप करना होगा।

रात के चौथे भाग में महाभय प्रदर्शनपूर्वक निश्चय हनुमद्देव साधक के समीप आयेंगे। यदि साधक भय छोड़कर दृढ़ प्रतिज्ञ हो सके तब साधक को अभिलषित वर प्रदान करके रहेंगे । यथा-

विद्यां वापि धनं वापि राज्यं वा शत्रुनिग्रहम् ।
तत्क्षणादेव चाप्नोति सत्यं सत्यं सुनिश्चितम् ।।

-तन्त्रसार

साधक विद्या, धन, राज्य अथवा शत्रुनिग्रह जो कुछ अभिलाषा करते हैं, प्राप्त कर लेंगे- सन्देह नहीं। बाद में साधक वर प्राप्त कर यथासुख संसार में विहार कर सकेगा।

सर्वज्ञता लाभ

हम पहले ही कहे हैं कि महायोगेश्वर महादेव योग और तन्त्र शास्त्रके वक्ता हैं। योगशास्त्र में सूक्ष्मसाधना और तन्त्रशास्त्र में स्थूलसाधना का विषय वर्णित हुआ। योगाभ्यास कर जिस प्रकार आत्मज्ञान अथवा अलौकिक शक्ति का लाभ होता है,उसी प्रकार तन्त्रोक्त साधना में भी इष्टदेवता के प्रसाद से मुक्ति का कारण ज्ञान अथवा अमानुषी शक्ति का लाभ होता है । तब योग की सूक्ष्मसाधना में आत्मशक्ति का विकास होता है और तन्त्र की स्थूलसाधनासे आत्मा की व्यष्टिशक्ति स्थूल आवरण से आवृत होकर देवतारूप में शक्ति प्रदान करती है, यही प्रभेद है। नहीं तो योग और तन्त्रशास्त्र एक ही पदार्थ हैं- सूक्ष्म और स्थूल में विभिन्नता है। जगत् में जितनी भिन्न-भिन्न शक्तियों का विकास देखा जाता है, सभी एकमात्र आत्मा की शक्ति है। सूक्ष्म में कारण-स्थूल में कार्य। इसी से योगाभ्यास में अपनी ही सूक्ष्मशक्ति का विकास होता है और तन्त्र की साधना में वही सूक्ष्मशक्ति स्थूलदेवता के रूप में आविर्भूत होकर साधक की कार्य सिद्धि कर देता है। प्रमाणस्वरूप हम तन्त्र की साधना

T

की विभूति की उपलब्धि के उपाय का विवरण दे रहे हैं। पर जिस शक्तिलाभ से जगत् का अपकार होता हो, हम उसकी ओर दृष्टि नहीं डालेंगे। उद्धत व्यक्ति के हाथों में शाणित अस्त्र जिस प्रकार भयप्रद है। उसी प्रकार असंयत चित्त व्यक्ति की शक्ति प्राप्ति विपज्जनक है। उसी पर विचार कर हम क्रूरशक्ति के लाभ के उपाय पर प्रकाश नहीं डाल रहे हैं। केवल मात्र तन्त्र के प्राधान्य साधनार्थ कई एक मंगलजनक शक्ति-विकास के अथवा लाभ के उपाय को लिपिबद्ध किया।

विभूति-लाभ के लिए तन्त्रशास्त्र में पिशाच और कर्णपिशाची के मन्त्र और साधना की प्रणाली है। पिशाच की साधना में मानव पिशाचत्व लाभ कर रहता है। किन्तु कर्णपिशाची के मन्त्रजय में वह भय नहीं हैं, परन्तु सर्वज्ञ हुआ जा सकता है। जो कोई प्रश्न हो उसका उत्तर साधक के कान में पिशाची बोल देती है। इसलिए उसकी साधना में मनुष्य शीघ्र ही सर्वज्ञता प्राप्त कर सकता है। यथा-

एष मन्त्रो लक्षजपतो व्यासेन संसेवितः ।
सार्वज्ञ्यं लभतेऽचिरेण नियतं पैशाचिकी भक्तितः ।।

-तन्त्रसार

कर्णपिशाची का मन्त्र एक लाख जप कर भगवान् वेदव्यासने शीघ्र सर्वज्ञता प्राप्त की थी। इस न्यास, पूजा, होम और तर्पण किए बिना मात्र जप द्वारा कर्णपिशाची की साधना के उपाय पर प्रकाश डालते हैं। अन्याय मन्त्रापेक्षा पश्चाल्लिखित मन्त्र ही श्रेष्ठ और शीघ्र फलप्रद है।

''ॐ क्लीं जयादेवि स्वाहा' इस मन्त्र को यथारीति ग्रहण कर नियमानुसार प्रथमतः एक लाख जप करें। फिर एक गृहगोधिका को मारकर उसके ऊपर यथाशक्ति जयादेवी की पूजा करें। जब तक वह गृह गोधिका जीवित न हो जाय, तब तक जप करते रहें। जब देखें

T

कि वह गृह गोधिका जीवित हो गयी है, तब और जप करने का प्रयोजन नहीं है। तब समझ लें कि मन्त्र की सिद्धि हो गयी। इस मन्त्र से सिद्ध होने पर साधक जब मन ही मन कोई प्रश्न करता है, तब देवी आ जाती है और साधक उनके पीछे भूत और भविष्यत् के विषय में सब कुछ लिखा हुआ पाता है।

तन्त्रमें और भी एक प्रकार का कर्णपिशाची मन्त्र है उसकी साधना-प्रणाली और भी सहज है। मन्त्र यथा– **''ॐ ह्रीं कर्णपिशाचि मे कर्णो कथय हूँ फट् स्वाहा''**। रात्रि में धीमान् साधक दोनों पदों में प्रदीपतैल मर्दन कर इस मन्त्र को यथा नियम एकाग्रचित्त एक लाख जपेगा। इस मन्त्र में पूजा अथवा ध्यानादि का प्रयोजन नहीं है। इस प्रकार जप करनेसे ही उक्त मन्त्रसे सिद्धि प्राप्त कर सकता है। तब साधक सर्वज्ञ हो जाता है।

इस साधना में सिद्धि-प्राप्त करने से मंनुष्य के मन का भाव, भूत और भविष्यत् के विषय में साधक सब कुछ जान सकता है।

दिव्यदृष्टि लाभ

धीमान् साधक यक्ष देवकी मूर्ति निर्माण कर **''ॐ नमो रूद्राय रुद्ररूपाय नमो बहुरूपाय नमो विश्वरूपाय नमो विश्वात्मने नमस्तत्पुरुषयक्षाय नमो यक्षरूपाय नम एकस्मै नमः एकाय नमः एकरौरवाय नमः एकयक्षाय नम एकक्षणाय नमो वरदाय नमः-तुद तुद स्वाहा''**–इस मन्त्र को संयतचित्त से एक हजार आठ बार साधक जप करें। इस प्रकार सिद्धि लाभ कर दिव्यदृष्टि लाभ के लिए साधना करनी होगी।

प्रथमतः हिज्जलवृक्षका पत्र संग्रह कर गृहमें संस्थापित करें। उसके बाद चिता, रजकगृह अथवा तस्करगृहसे **"ॐ ज्वलितविद्युते स्वाहा"** इस मन्त्र से अग्नि ग्रहण कर पूर्वस्थापित पत्र में अग्नि को प्रज्ज्वलित करें। बाद में **"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय बबन्ध श्रीपतये स्वाहा"** इस मन्त्रसे वर्तिका अभिमन्त्रित करके **"ॐ नमो भगवते सिद्धिसाधकाय ज्वल ज्वल पत पत पातय पातय बन्ध बन्ध संहर संहर दर्शय दर्शय निधिं मम"** इस मन्त्र से साधक प्रदीप प्रज्वलित करें। **"ॐ ऐं मन्त्रसिद्धेभ्यो नमो विश्वेभ्यः स्वाहा"** इस मन्त्र से कज्जल प्रस्तुत करके **"ॐ कालि कालि महाकालि रक्षेदमञ्जनं नमो विश्वेभ्यः स्वाहा"** इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करें। हम अञ्जन द्वारा चक्षु अंजित करने से दिव्यदृष्टि प्राप्त होती है। स्वर्ण शलाकाद्वारा उक्त कज्जल **"ॐ सर्वे सर्वसहिते सर्वौषधि प्रयाहिते विरते नमो नमः स्वाहा"** इस मन्त्र से चक्षु में अंजन प्रदान करें।

इस अंजन के प्रदान मात्र से ही साधक को दिव्यदृष्टि प्राप्त हो जायगी। तब घोरान्धकार रात में दिवा भाग सदृश समस्त वस्तु देखी जाएँगी। सिद्ध, चारण प्रभृति सूक्ष्मदेवयोनि, भू-छिद्र और गुप्तधनादि दिखाई देगा।

अदृश्य होने का उपाय

नित्य-नैमित्तिक क्रियावान् साधक पवित्र होकर 'रात में श्मशान में बैठकर नग्न होकर **"ॐ ह्रौं ह्रीं स्फ्रैं श्मशानवासिनि स्वाहा"** इस मन्त्र का चार लाख जप करें। इसमें सन्तुष्ट होकर यक्षिणी साधक को पादुका प्रदान करेगी।

तेनावृतो नरोऽदृश्यो विचरेत् पृथिवीतले ।

—कामरत्न तन्त्र

उस पादुका द्वारा पदद्वय आवृत कर समस्त पृथ्वी पर विचरण करने से भी उसको कोई देख नहीं सकता है।

मदार तूला, शिमूल तूला, कर्पास तूला, पट्टसूत्र और पञ्चसूत्र इन पञ्चविध द्रव्यों द्वारा पाँच वर्त्ति प्रस्तुत करें। उसके बाद पाँच मनुष्य–मस्तक की खोपड़ियों में स्थापित कर नरतैल द्वारा इन पाँच दीपों को जलाएँ। उसके बाद दूसरे पाँच नरकपालों को लाकर इन पाँच दीपों की शिखा से पृथक्-पृथक् कज्जलपात करना होगा। बाद में इन पाँच प्रकार कज्जलों को एकत्र कर "**ॐ हूँ फट् कालि कालि महाकलि मांसशोणितं खादय खादय देवी मा पश्यतु मानुषेति हूँ फट् स्वाहा**" इस मन्त्र से एक हजार आठ बार अभिमन्त्रित करें। इस कज्जल के द्वारा चक्षु को अंजित करने से वह व्यक्ति देवताओं को भी नहीं दिखाई दे सकता है। "**त्रैलोक्यादृश्यो भवति**" अर्थात् त्रिभुवन में उसको कोई देख नहीं सकता है।

यह साधना कार्य श्मशानस्थ शिवालय में ही करना प्रशस्त है। श्मशान में शिवालय के अभाव में जिस किसी शिवालय में करना होगा। इस अदृश्यकारिणी विद्या को प्राप्त करने के लिए पहले अधिकार प्राप्त होना चाहिए। इसके लिए रात में निशाचर का ध्यान करते हुए वामहस्त द्वारा "**ॐ नमो निशाचर महामहेश्वर मम पर्यटतः सर्वलोकलोचनानि बन्ध बन्ध देव्याज्ञापयति स्वाहा**" इस मन्त्रको एकाग्रचित्त से जपें।

अदृश्यकारिणीं विद्यां लक्षजाप्ये प्रयच्छति ।।

—कामरत्न-तन्त्र

यह अदृश्यकारिणी विद्या लक्ष जप से सिद्ध होती है। पाठक! विधि का उल्लंघन कर तन्त्रोक्त कार्य के फल लाभ की आशा न करे।

T

पादुका - साधना

वीर साधक कुलतिथि और कुलनक्षत्र युक्त मंगलवार को आधी रात के समय निम्बकाष्ठ श्मशान में प्रोथित कर उसी स्थान पर बैठकर **"ॐमहिषमर्द्दिनि स्वाहा ह्रीं"** अथवा **"क्लीं महिषमर्दिनी स्वाहा ॐ"** इस महिषमर्दिनी मन्त्र से एक लाख आठ बार जप करें और श्मशान में रहकर एक सहस्र होम करें। बाद में उस निम्बकाष्ठ को उठाकर उसमें पादुका अंकित करनी होगी। बाद में दुर्गाष्टमी की रात में इस निम्बकाष्ठ को श्मशान में निक्षेप पूर्वक उसके ऊपर शव स्थापित कर यथाविधि पूजा करें। इसके बाद उसी श्मशान में बैठकर एक सहस्र आठ बार जप कर मातृगण के उद्देश्य से बलि देकर काष्ठ का आमन्त्रण करें। आमन्त्रण का मन्त्र-

'गच्छ गच्छ द्रूतं गच्छ पादुके वरवर्णिनि।
मत्पादस्पर्शमात्रेण गच्छ त्वं शतयोजनम्।।

इस मन्त्र से आमन्त्रण कर उक्त निम्बकाष्ठ में पाद-स्पर्शमात्र से साधक अभिलषित स्थान पर उपस्थित होगा। मुहूर्त्त में ही शतयोजन पथ अतिक्रम किया जा सकता। इस पादुका की साधना कर साधकगण अतिअल्प समय में पृथ्वी के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में विचरण कर सकते हैं।

कनैर का मूल, गिरिमाटी, सैन्धव, मालतीपुष्प, शिवजटा और भूमिकुष्माण्ड सबको सम परिणाम में लेकर उत्तमरूप में प्रेषण करें। बाद में उस औषध **"ॐ नमो भगवते रुद्राय नमो हरित गदाधराय त्रासय त्रासय क्षोभय क्षोभय चरणे स्वाहा"** इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करें।

तल्लिप्तपादः सहसा सहस्रयोजनम् ब्रजेत्।

—कामरत्न-तन्त्र

T

इस औषधिद्वारा पादलेपन करने से सहस्रयोजन तक गमन कर सकेगा सन्देह नहीं।

तिलके तैल के साथ ढेरावृक्ष के मूल को पकाएगा। बाद में **"ॐ नमश्चण्डिकायै गगनं गगनं चालय वेशय हिलि हिलि वेगवाहिनी ह्रीं स्वाहा"** इस मन्त्र से यथाविधि अभिमन्त्रित कर वह तैल पाद से जानु पर्यन्त लेपन करने से बहुत दूर तक अनायास ही गमन किया जा सकता है।

पादं सजानुपर्यन्तं लिप्त्वा दूरादूराध्र्वगा भवेत् ।

–कामरत्नतन्त्र

अर्थात् इस तेल को पाद से जानु तक लेपन करने से ऊपर-नीचे बहुत दूर तक अनायास ही जाया जा सकता है।

अनावृष्टिहरण

यथाविधि वरुणदेव की पूजा कर उनके मन्त्र जप करने से निश्चय ही वृष्टि होगी। पूजा का नियम इस प्रकार है–

प्रथमतः स्वस्तिवाचन कर संकल्प करें। उसके बाद गणेशादि पञ्च देवताओं की पूजा कर यथाविधि भूत-शुद्धि, प्राणायाम, अंगन्यास, करन्यास समाप्त कर--

ॐ पुष्करावर्त्तकैर्मेघैः प्लावयन्तम् वसुन्धराम् ।
विद्युतार्ज्जितसन्नद्ध्यात्मानं नमाम्यहम् ।।
यस्य केशेषु जीमूतो नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु ।
कुक्षौ समुदाश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः ।।

इस ध्यानमन्त्र पाठान्त में अपने मस्तक पर पुष्पदान और मानसोपचार

T

से साधक पूजा करें। बाद में अर्घ्य स्थापन और फिर ध्यान कर वरुणदेव के आवाहनपूर्वक यथाशक्ति उनकी पूजा क़रें, बाद में जप का करना आरम्भ करें। जपके साथ चिन्ताशक्ति, क्रियाशक्ति और इच्छाशक्ति के संयोग होने का प्रयोजन है। इसी से जप के पूर्व **"प्रजापतित्रृषिस्त्रिष्टुप् छन्दो वरुणो देवता एतद्राज्यमभिव्याप्य सुवृष्ट्यर्थं जपे विनियोगः"** इस मन्त्रको पाठ कर इस त्रिशक्ति को स्थिर करना होता है।

बाद में नदी, अभाव में पुष्करिणी में नाभि तक जल में खड़े होकर **"ॐ बं"** इस मन्त्र का आठ सहस्त्र बार जप करने से निश्चय ही दृष्टि होगी।

जल में प्रविष्ट होकर **"हुं श्रीं हुं"** इस मन्त्र के जप आरम्भ करने से बिना पूजा और ध्यान के भी वृष्टिपात होता है।

अग्निनिवारण

गृह में आग लगने पर सप्तरति जल (जिसका-तिसका लाया हुआ भी जल होने से कोई क्षति नहीं) लेकर-

उत्तरस्याञ्च दिग्भागे मारीचो नाम राक्षसः ।
तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां हुतो वह्निः स्तम्भ स्वाहा ।।

इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर अग्निमें निक्षेप करें। उससे जितनी वेगशाली आग क्यों न हो, शीघ्र बुझ जायेगी।

(१) ॐ ह्रीं महिषमर्दिनी अग्नि को स्तम्भन कर, मुग्ध कर, भेद कर, अग्निं तम्भय ठठ् (२) ॐ मत्त ढीट छयद्यने मे कटीर-मूलघसी आलिप्याग्नाय मुदीयते शनक विज्जे मन्त्री ह्रीं फट्।

इन दो मन्त्रों में जो कोई एक मन्त्र यथानियम दससहस्त्रबार जप

T

करने से मनुष्य ज्वलन्त अग्नि में प्रवेश कर सकता है, उससे शरीर में किसी स्थान पर तेज का अनुभव नहीं होता है। महाराज ठाकुर की काशीस्थ बाड़ीकी घटना और ढाका के डा०तरणी बाबू की अग्निक्रिया जिन्होंने देखी है, उनके निकट और इस विषय में सत्यता के प्रमाण का प्रयोजन नहीं है। अधिकारी व्यक्ति साधना कर इसकी सत्यता की उपलब्धि करेगा।

सर्पवृश्चिकादिका विषहरण

साँप आदि के काटने पर तन्त्रशास्त्र के अनुसार मन्त्र प्रयोग कर आरोग्य किया जाता है। किन्तु उससे पूर्व मन्त्रप्रयोगकारी को विषहराग्नि मन्त्र से सिद्धि प्राप्ति करनी होती है। विषहराग्नि मन्त्र यथा "खं खं"। उक्त मन्त्र की पूजा प्रणाली इस प्रकार है–

सदाचार सम्पन्न व्यक्ति सामान्य पद्धतियों नियम के अनुसार प्रातःकृत्यादि कर– शिरसि अग्नये ऋषये नमः मुखे पंक्तिछन्दसे नमः- हृदि अग्नये देवतायै नमः -गुह्ये खं बीजाय नमः- पादयोः बिन्दुशक्तये नमः, इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करेगा। बाद में खां अंगुष्ठाभ्यां नमः- खीं तर्जनीभ्यां स्वाहा- खूँ मध्यमाभ्यां वषट् खैं अनामिकाभ्यां हूँ -खौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्-खः करतलपृष्ठाभ्यामस्त्राय फट् इस प्रकार करन्यास और खां हृदयाय नमः, खीं शिरसे स्वाहा, खूँ शिखायैषट्, खैं कवचाय हूँ, खैं नेत्रत्रयाय वौषट्, खः करतलपृष्ठाभ्यामस्त्राय फट् इस प्रकार अंगन्यास कर वैश्वानर पद्धति के नियम के अनुसार इस मन्त्र का ध्यान और यथाशक्ति पूजादि करेगा। उसके बाद "**खं खं**" इस मन्त्र को यथाविधि बारह लाख जप कर पुरश्चरणांग होम में घृतद्वारा बारह सहस्र आहुति प्रदान करनी होगी। इस प्रकार विषहराग्नि मन्त्र का

T

पुरश्चरण कर रखने से जब-तब सर्पदष्ट रोगी को आरोग्य किया जा सकता है।

किसी को साँप काटने पर उक्त साधक अपने बाएँ करतल में पञ्चदल अंकित कर उस पद्मको श्वेतवर्णरूप समझ कर और उस पद्म की कर्णिकायें और पञ्चदल में "खं" इस बीज को लिखेगा; और बाद में रक्तवर्ण और अमृतमयरूप में चिन्तन करेगा; उसी हाथ द्वारा स्पर्श करने से विष विनष्ट होगा। इस प्रकार हस्तद्वारा विष पीड़ित व्यक्ति को स्पर्श कर एक सौ आठ बार विषहराग्नि मन्त्र का जप करने से सभी प्रकार के विष का नाश हो जाता है।

"ॐ नमो भवगते गरुडाय महेन्द्ररूपाय पर्वतशिखरकाररूपाय संहर-संहर मोचय मोचय चालय चालय पातय पातय निर्विष निर्विष विषमप्यमृत चाहारसदृशं रूपमिदं प्राज्ञापयामि स्वाहा, नमः लल लल वर वर दुन दुन क्षिप क्षिप हर हर स्वाहा"– इस गरुडमन्त्र का पाठ करने से भक्षित स्थावर विष अमृततुल्य हो जाता है। विषाक्त अन्नपानादि भी इस मन्त्र का पाठ से निश्चय अमृतवत् होगा।

सुपर्णं वैनतेयञ्च नागारिं नागभीषणम् ।
जितान्तकं विषारिंच अजितं विश्वरूपिणम् ।।
गरुत्मन्तं खगश्रेष्ठं ताक्ष्र्यं कश्यपनन्दनम् ।

अर्थात् सुपर्ण, विनतानन्दन, नाग-शत्रु, सर्पभीषण, शमन-विजयी, विषारि, अजेय, विश्वरूपी, गरुत्मान, खगेन्द्र, ताक्ष्र्य और कश्यपनन्दन गरुड़स्तवोक्त ये बारह नाम जो व्यक्ति प्रातःकाल में गात्रोत्थान कर स्नान काल में अथवा शयन काल में पाठ करता है। उस पर किसी प्रकार विष अपना प्रभाव नहीं डाल सकता है।

विषं नाक्रमते तस्य न च हिंसति हिंसकाः ।
संग्रामें व्यवहारे च विजयस्तस्य जायते ।।

-तन्त्रसार

T

उस पर विषका प्रभाव नहीं पड़ सकता। किसी प्रकारका हिंस्र जन्तु दंशन नहीं कर सकता और सर्वत्र उसकी विजय होती है।

"ॐ स व ह स्फुः ॐ हिलि मिलि चिलि हस्फुः ॐहिलि हिलि चिलि चिलि हस्फुः विष्णवे ब्रह्मणे फुः फुः इन्द्राय फुः सर्वेभ्यो देवेभ्यः स्फुः" इस मन्त्र से वृश्चिकादि का विष नष्ट होता है।

"ॐ गेरि ठः" इस मन्त्र से मुषिकादिका विष नष्ट होता है।

"ॐ ह्रां ह्रीं हुं हूं हूं ॐ स्वाहा गरुड स हुं फट्" इस मन्त्र से लूता (मकड़ी) का विष नष्ट होता है।

"ॐ नमो भगवते विष्णवे सर सर हन हन हूं फट् स्वाहा" इस मन्त्र से सभी प्रकार के कीट-विष विनष्ट होता है।

तन्त्रमें ये सब विषय इतने विस्तृतरूप में लिखा है कि उसको एक स्थान पर लिखने से प्रकाण्ड एक पुस्तक हो सकती है। हमने भिन्न भिन्न विषयो में से एक-दो उद्धृत किया है। विषय-विस्तार के भय से संक्षेप में समाप्त किया है।

शूलरोग का प्रतिकार

शूलरोग महाव्याधियों में परिगणित है। आयुर्वेद-शास्त्र में इस रोग को "कृच्छ्रसाध्य" नाम से लिखा गया है। तन्त्रोक्त उपाय से इस रोग से मुक्त हुआ जा सकता है। क्रियावान् तन्त्रोक्त साधकद्वारा इस रोग का प्रतिकार होना चाहिए।

अभिज्ञ साधक प्रथमतः आचमन और स्वस्तिवाचन कर-**"ॐ अद्येत्यादि अमुक -गोत्रस्य श्री अमुक-देवशर्मणः शूलरोग-प्रतिकारकामनाय अमुक मन्त्रं सहस्रं (अयुतं लक्षं वा) जपमहं**

T

करिष्यामि।'' इस मन्त्र का पाठ कर यथारीति संकल्प करें। उसके बाद शिवलिङ्ग में त्र्यम्बकपूजा पद्धति के विधान से यथाशक्ति पूजादि कर -**''ॐ मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव पर मे वृक्ष आयुधान्निधय कृत्ति वसान आचारपिनाकं विभ्रदागहि''** इस मन्त्र से स्थिर चित्त एकतान मानसे जप करेगा। जितनी संख्या का जप सङ्कल्प किया गया है, उतनी संख्या का जप करना होगा। सङ्कल्प के समय जप्य मन्त्र का उल्लेख करना होगा।

मन्त्र का प्रयोग करने से शूलरोग अति सरलता से आरोग्य होता है, यह बात ग्रन्थकार के परिचित व्यक्तियों को समझाना नहीं होगा। अब तक चार पाँच सौ रोग ग्रन्थाकार के निकट आरोग्य हुए हैं, इस को वे जानते हैं। जिन लोगों ने प्रसिद्ध चिकित्सकगण से परित्यक्त शूल रोग से ग्रस्त निकम्मा व्यक्ति सुख और स्वास्थ्य की आशा को छोड़कर मृत्यु की कामना करते थे, वे किस प्रकार नवजीवन प्राप्त किये हैं, उसे बहुत से व्यक्तियों ने प्रत्यक्षरूप से देखा है। यद्यपि उसकी प्रयोग-प्रणाली विभिन्न ढंग की है; किन्तु एक ही शास्त्र की व्यवस्था है। इसलिए इस मन्त्र से भी उसी प्रकार का फल प्राप्त होगा– सन्देह नहीं। स्वयं शिव ने कहा है-

साक्षान्मृत्योर्विमुच्यते किमन्याः क्षुद्रिकाः क्रियाः ।

-तन्त्रसार

इस मन्त्र से साक्षात् मृत्यु का निवारण किया जा सकता है– क्षुद्र कार्य साधन में सन्देह क्या?

सुख-प्रसव मन्त्र

निम्नलिखित दो मन्त्रों से कोई एक मन्त्र द्वारा किञ्चित् जल अभिमंत्रित कर उसी जल को पान कराने से अतिशीघ्र और सुख से प्रसव हो जाता है। प्रत्येक मन्त्र का आठबार जप कर जल अभिमन्त्रित करना होता है।

१. ॐ मन्मथ मन्मथ वाहि वाहि लम्बोदर मुञ्च मुञ्च स्वाहा।

२. मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः।
मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एह्येहि मारीच मारीच स्वाहा।।

प्रसव वेदना उपस्थित होकर बहुत विलम्ब होने पर दशमूला के थोड़ा उष्ण 'क्वाथ प्रथम मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित कर गर्भिणी को पीने के लिए दें। इससे गर्भिणी तत्क्षणात् सुख से प्रसव कर सकती है। किसी प्रकार की यातना का अनुभव नहीं करेगी।

''अं अँ हाँ नमस्त्रिमूर्तये'' इस मन्त्र से सूतिकागृह में बैठकर जप करें। इसमें प्रसूति अक्लेश प्रसव करने में समर्थ होगी। यह हमारे बहुत परीक्षित है। इसलिये इसे अग्राह्य या अविश्वास न करें। डॉक्टरों के हाथों न्यस्त पूर्वक कुल-जनों की लज्जा-घृणा से सिर खपाने से पूर्व इस प्रक्रिया का अवलम्बन कर देखिये; धन और लाज दोनों की ही रक्षा होगी।

मृतवत्सा दोष शान्ति

जिस रमणीकी सन्तान-प्रसव के एक पक्ष, एक मास अथवा एक वर्ष के बाद नष्ट हो जाती है, उसी नारी को मृतवत्सा कहा जाता है। यथा-

गर्भसंजातमात्रेण पक्षे मासे च वत्सरे।
पुत्रो म्रियते वर्षादौ यस्याः सा मृतवत्सिका।।

–श्रीदत्तात्रेयतन्त्र

T

नारी के मृतवत्सा दोष उत्पन्न होने से साधना-रहस्यवित् तान्त्रिकों के द्वारा उसकी शान्ति करानी होती है। जिस-तिस व्यक्ति द्वारा कर्मानुष्ठान कराने पर फल प्राप्ति की आशा नहीं है, परन्तु प्रत्यवायभागी होना होगा। मृतवत्सा दोष की शान्ति के लिए इस रूप से क्रिया करायेंगे-

अगहन अथवा ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा तिथि में गृहलेपन-पूर्वक एक नूतन कलसी गंगाजल से पूर्ण कर उक्त गृह में स्थापित करें। कलसी को शाखा, पल्लव और नवरत्न द्वारा सुशोभित कर स्वर्णमुद्रा प्रदान करते हुए षट्कोण मण्डल में स्थापित करें। बाद में एकाग्रचित्त से इस कलसी के ऊपर देवी की पूजा करें। बाद में पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, मत्स्य; मांस और मद्यादि द्वारा भक्ति-सहित ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी इन छ मातृकाओं की षट्कोण में पूजा करें। उसके बाद प्रणव (ॐ) उच्चारणपूर्वक दधि और अन्नद्वारा सात पिण्ड प्रस्तुत करें। छः मातृकागण को छः पिण्ड प्रदान कर सप्तम पिण्ड को पवित्र स्थान पर निक्षेप करें। उसके बाद अपने गृह में लौटकर बालिका और कुमारीगण को प्रीतिपूर्वक भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करायें। इन सब कुमारियों के सन्तुष्ट होने से ही देवता प्रसन्न होते हैं। उसके बाद नदी में कलसी विसर्जन कर आत्मीयों के निकट शुभ प्रार्थना करें।

निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करके जप एवं पूजादि करना होगा। यथा– **''ॐ परमं ब्रह्म परमात्मने अमूकी-गर्भे दीर्घजीविसूतं कुरु कुरु स्वाहा''**।

पूजा के अन्त में समाहित चित्त से संकल्पानुयायी निर्दिष्ट संख्या में इस मन्त्र का जप करें।

प्रतिवर्षमिदं कुर्याद्दीर्घजीविसुतं लभेत् ।
सिद्धियोगमिदं ख्यातं नान्यथा शंकरोदितम् ।।

–श्रीदत्तात्रेयतन्त्र

T

प्रतिवर्ष इस प्रकार एक बार देवतार्चना करने से मृतवत्सा रमणी का दीर्घजीवी पुत्र होता है। यह सिद्धियोग शंकरोक्त है, इसलिए कोई भी अविश्वास नहीं करता है।

गुहीत्वा शुभनक्षत्रे त्वपामार्गस्य मूलकम् ।
गुहीत्वा लक्षणामूलं एकवर्णगवां पयः ।।
पौत्वा सा विभ्रते गर्भः दीर्घजीविसुतो भवेत् ।।

–श्रीदत्तात्रेयतन्त्र

शुभनक्षत्र में अपामार्गकी मूल और लक्षणामूलका उत्तोलन कर एक वर्णा गाय के दूध के साथ प्रेक्षण कर पान करें। इससे स्त्रियों को गर्भ रहता है और वह गर्भस्थ पुत्र दीर्घजीवी होता है। इस औषध के सेवन के पूर्व पूर्वोक्तमन्त्रका जप करते हुए पुरश्चरण कर लेना होगा। मृतवत्सा दोष शान्ति के लिए उपयुक्त साधक के निकट से कवचादि संग्रह कर सकने पर विशेष लाभ होता है। भारतवर्ष में इस सत्यका प्रत्यक्ष बहुत से व्यक्तियों ने किया है।

बन्ध्या और काकबन्ध्या प्रतिकार

जिस रमणी को किसी समय कोई सन्तान सन्तति उत्पन्न नहीं हुई है, उसे बन्ध्या कहते हैं। प्राचीनकाल में देवादिदेव महादेव ने दत्तात्रेय मुनि के निकट बन्ध्या स्त्रियों की सन्तानादि के जन्मने की विधि का प्रकाशन किया है। हम भी उन्हीं परीक्षित उपायों को विवृत करते हैं। आशा करते हैं सन्तान के अभाव में जिस गृहस्थ के गृह में निरानन्द रहता है– वे सदाचार-सम्पन्न साधकों द्वारा इस विधि के अवलम्बन से शीघ्र ही पुत्रमुख देखकर गृह में आनन्द का प्रवाह कर सकेंगे।

पलाश वृक्ष का एक पत्र किसी गर्भवती रमणी के स्तन के दूध द्वारा प्रेक्षण कर ऋतुकाल में पान करना होगा। एक सप्ताह तक औषध को प्रत्यह पान कर शोक, उद्वेग, चिन्तादि परित्याग करना होगा। उसके बाद पतिसंग करने में उस नारी का गर्भ संचार हो जायगा। उक्त औषध के सेवन करने में दुध, शालिधान्य अन्न, मूँग की दाल प्रभृति लघूपाक द्रव्य अल्प परिमाण में आहार के रूप में ग्रहण करना होगा।

नागकेशर का चूर्ण सद्यजात गोदूध सहित एक सप्ताह तक प्रत्यह सेवन करना होगा। औषधि के सेवन के अन्त में घृत और दूध लेना चाहिए उसके बाद स्वामी सहवास करने से ही वह रमणी गर्भवती होगी। प्रथमोक्त नियमों का अवश्य पालन होना चाहिए।

"ॐ नमः सिद्धिरूपाय अमुकीं पुत्रवतीं कुरु कुरु स्वाहा"

इस मन्त्र से साधक पुरश्चरण करके उक्त औषधों से जो कोई एक औषध उक्त मन्त्र से एक सौ आठबार अभिमन्त्रित कर देने से और उसके बाद पान करने से अवश्य ही फल की प्राप्ति होगी। मन्त्रपूत न करने से फललाभ में विघ्न भी होता है।

पूर्वं पुत्रवती या सा क्वचिद्वन्ध्या भवेद् यदि ।
काकबन्ध्या तु सा ज्ञेया चिकित्सा तत्र कथ्यते ।।

—श्रीदत्तात्रेयतन्त्र

जो रमणी एक बार एक-मात्र पुत्र प्रसव कर ओर गर्भ नहीं धारण करती हैं, उसको काकबन्ध्या कहते हैं। इस काकबन्ध्याके दोष की शान्ति का उपाय तन्त्रशास्त्र में वर्णित हुआ है। यथा–

अपराजिता लता, मूल के सहित उतोरकर भैंस के दूध के साथ पेषण करते हुए भैंस के नवनीत सहित ऋतुकाल में रमणी खाएगी। अथवा रविवार को पुष्य नक्षत्र में अश्वगन्धा का मूल उतोर करके भैंस के दूध के साथ पेषण कर प्रत्यह चार तोला परिमाण में एक सप्ताह

तक खाएगी। उसके बाद पतिसंग करेगी; इससे स्त्रियों की काकबन्ध्या दोष नष्ट होकर दीर्घजीवी पुत्र होगा। यथा-

सप्ताहाल्लभते गर्भं काकबन्ध्या चिरायुषम् ।

–तन्त्रकोष

सदाचारी साधक **"ॐ नमो शक्तिरूपाय अस्या गृहे पुत्रं कुरु कुरु स्वाहा"**। इस मन्त्र से प्रथमतः पुरश्चरण कर एक सौ आठबार मन्त्र जप कर औषध पान करने दें। उक्त मन्त्रद्वारा औषध अभिमन्त्रित न करने से फललाभ की आशा नहीं की जा सकती।

तन्त्रशास्त्र में इस प्रकार की प्रक्रिया बहुत दिखाई देती है। विषय विस्तार के भय से हमने मात्र कई एक ही परीक्षित प्रक्रियाओं को उद्धृत किया है।

बालक-संस्कार

स्वभाव-नियम अथवा दैव उपाय से सन्तान प्राप्त कर यदि दीर्घजीवी, नीरोग सच्चरित्र और पण्डित न हो तो इससे पिता-माता के मन के कष्ट की अवधि नहीं रहती। असत् पुत्रद्वारा माता पिता नित्य कष्ट भोगते हैं। तन्त्रशास्त्र ने मानव के उस अभाव को भी पूर्ण करने का उपाय कर दिया है। पुत्र के जन्म ग्रहण करने के बाद उस प्रकरण का अवलम्बन कर जातपुत्रका संस्कार कार्य सम्पन्न करने से पुत्र पण्डित, कवि, वाग्मी, प्रभृति नाना सद्गुण सम्पन्न होता है। नीचे उसकी प्रक्रिया दी गयी है।

पुत्र के जन्म लेते ही- नाड़ीच्छेदन के पूर्व -पिता स्वर्णद्वारा पुत्र का मुखावलोकन कर अन्य घर में जाकर गुरु, पंचदेवता और तारिणी की पूजा कर वसुधारा (धाराहोम) देगा। उसके बाद पंचाहुति प्रदान कर

कांस्य (फूल) पात्र में समानांश घृत, मधु लेकर उसके ऊपर **"ऐं"** इस मन्त्र का सातबार जप करना होगा। बाद में दाहिने हाथ से अनामिका अँगुलीद्वारा इस घृत और मधु को लेकर **"ह्रीं आयुर्वचो बलं मेधा बर्द्धतां ते सदा शिशो"**–इस मन्त्र का पाठ करते-करते शिशु के मुख में देना होगा। इससे शिशु की आयुवृद्धि होती है। इसलिए इसका नाम आयुर्जनन है। इस समय पिता मन ही मन शिशु का एक गुप्त नाम रखेगा।

इसके बाद बालक की जिह्वा तीनबार दक्षिण हाथ द्वारा मार्जित कर पिता स्वेत दुर्वा अथवा स्वर्णशलाका द्वारा मधु लेकर बालककी जिह्वा में "वाग्भवकूट्" अर्थात् **"क्लीं ह्रीं ईं ह्रीं हेसाः"** इस मन्त्र का पंक्त्याकार से लिख देगा। असुविधा होने से अथवा आपत्ति रहने से अपने इष्टमन्त्र को लिख दें। इससे बालक सत्यवादी, जितेन्द्रिय, कवि और वाग्मी हो सकता है। यथा -

कविर्वाग्मी भवेत् पुत्रः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।

–तन्त्रसार

वास्तव में यह वाग्भवमन्त्र वागीशत्वप्रदायक है। यह मन्त्र पुरश्चरण पूर्वक मूर्ख व्यक्ति के मस्तकपर हाथ देकर एक सौ आठबार जप करने से वह मूर्ख भी कवि हो सकता है और जिह्वा में न्यास करने पर वक्ता हो सकता है।

जिह्वायां न्यसनाद्देवि मूकोऽपि सुकविर्भवेत् ।

–गन्धर्वतन्त्र

वयःप्राप्त महामूर्ख व्यक्ति उपयुक्त रूप में प्रयोग कर लेने पर जब मूर्खत्व को दूर कर सुकवि होता है, तब शिशु की तो बात ही नहीं। इसलिए नवजा शिशु को 'वाग्भवकूट' मन्त्र द्वारा ही संस्कार करना कर्त्तव्य है। संस्कार के अन्त में नाड़ीच्छेदन होना आवश्यक है।

किसी बाधाविघ्नवश नाड़ीच्छेद् के पूर्व ही उक्त अनुष्ठान को न कर सकने से तीन रात के अन्दर सम्पन्न किया जा सकता है। पिता के दूर देश में रहने से बालक के पितृव्य अथवा मातुल भी उसको कर सकते हैं। अन्य के द्वारा नहीं होगा।

उसके बाद कुलधर्म के अनुसार ग्यारह दिन अथवा एक मास शुभाशौच के बाद अवस्था के अनुसार यथाशक्ति उपचार द्वारा कुलदेवता की पूजा करें। बाद में फिर श्वेतदुर्वा, कुश अथवा स्वर्णशलाकाद्वारा पूर्वोक्त 'वाग्भव' बालक के ओष्ठ में लिख देना होगा। उससे बालक वाक्योचारण में समर्थ होने मात्र कवित्वसम्पन्न होता है।

बाद में माता के क्रोड़ में कुश के ऊपर शिशु को रखकर ब्राह्मणों के सहित समवेत होकर–**"इमं पुत्रं कामयत कामजानामिहैव हि, दैवेभ्यः पुष्णाति सर्वमिदं सज्जनं शिवशान्तिस्तारायै केशवेभ्यस्तारायै रूद्रेभ्यः उमायै शिवाय शिवयशसे"** इस मन्त्र का पाठ करते-करते कुश ओर स्वर्ण द्वारा जल छिड़क कर शान्ति करनी होगी। बाद में शिशु को गोद में लेकर-

ब्रह्मा विष्णुः शिवो दुर्गा गणेशो भास्करस्तथा ।
इन्द्रो वायु कुवेरश्च वरुणोग्निर्वृहस्पतिः ।
शिशोः शुभं प्रकुर्वन्तु रक्षन्तु पथि सर्वदा ।।

इस रक्षामन्त्र का पाठ करना होगा। उसके बाद गोद में शिशु को कुछ दूर बाहर लाकर **"ह्रीं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरन् पश्येयम् शरदः शतं जीवेयम् शरदः शतं श्रृणुयां शरदः शतम्"** इस मन्त्र का पाठ करते-करते शिशु को सूर्य दर्शन कराकर गृह में ले जावें। इस दिन ब्राह्मण को पूजोपकरण, अन्नवस्त्रादि और दक्षिणा देने की विधि है।

उस कार्य गुरु, पुरोहित, अथा तन्त्राभिज्ञ ब्राह्मण के द्वारा

सम्पन्न होना चाहिए। सदाचारी तान्त्रिक साधक के द्वारा शान्ति कार्य करा सकने पर और अच्छा होगा; तन्त्र में भी वह व्यवस्था है-

शान्तिं कुर्याद्बालकस्य ब्राह्मणैः सह साधकः।।

—महोग्रताराकल्प

इस नियम से आयुर्जनन और संस्कार करने से बालक सर्वप्रकार महत् पदवाच्य होगा। उसमें सन्देह का लेश भी नहीं है।

ज्वरादि सब रोगों की शान्ति

नक्षत्रदोष से उत्पन्न अर्थात् विपरीत नक्षत्र से जो रोगोत्पन्न होता है, वह असाध्य होता है और प्रायशः उसका प्रतिकार नहीं हो पाता है। विशेष प्रकार की चिकित्सा करने पर भी फलप्राप्ति नहीं होती है। तन्त्राभिज्ञ सदाचारसम्पन्न साधक द्वारा आगे कहे जाने वाले दैवकार्य का अनुष्ठान कर सकने पर साध्य होता है अर्थात् प्रतिकार होता है। नीचे प्रक्रियाओं को लिखा जा रहा है।

ज्वरशान्ति के लिए प्रथमतः संकल्प कर **"आगस्त्य ऋषिरनुष्टप् छन्दः कालिकादेवता ज्वरस्य सदा शान्त्यर्थे विनियोगः"** इस मन्त्र के क्रम से ऋष्यादिन्यास करें। उसके बाद-

ॐ कुवेरस्ते मुख रौद्रं नन्दिमानन्दिमावहन् ।
ज्वरं मृत्युभयं घोरं ज्वरं नाशयते ध्रुवम् ।।

इस मन्त्र को हजार अथवा दस हजार बार समाहित चित्त से जप कर आम्रपत्र द्वारा होम करने से सर्वविध दूषित ज्वर निश्चय ही शान्त हो जाता है।

स्थिरचित्त होकर मन ही मन मन्त्रार्थ-चिन्तनपूर्वक भक्ति के

साथ **"ॐ शान्ते शान्ते सर्वारिष्टनाशिनि स्वाहा"** इस मन्त्र से एक लक्ष जप करने से सर्वरोग शान्त हो जाते हैं। इस मन्त्र का दस हजार बार जप कर सिद्धि होने पर बाद में उक्त प्रक्रिया का अनुष्ठान सम्पन्न करें। रोगों की शान्ति के कार्य में पार्थिव शिवलिंग की पूजा अति फलदायक है।

तुम्बुरभैरव के ध्यान और मन्त्रजप से सभी रोगों की शान्ति होती है। मन्त्र यथा– **"ॐ तुम्बुरभैरव हौं अमुकस्य सर्वशान्तिं कुरु-कुरु रं रं ह्रौं ह्रौं।"**

प्रथमत: उक्त मन्त्र से अन्नादि संयुक्त बलि प्रदान करें। बाद में श्वेतदुर्वा, नानाविध पुष्प और धूपदीपादि विविध उपचारों से पूजाकर उक्त मन्त्रका यथाविधि हजार बार जप करें। मन्त्रके अन्दर अमुक स्थल पर जिसका नाम उल्लेख कर जप पूजादि करें उसके सभी रोगों की शान्ति होती है। त्रिकोणकुण्डमें वह्नि प्रज्वलित कर उक्त मन्त्रसे दुर्वा, पुष्प और तण्डुल संयुक्त घृतमिश्रित तिल और जीरकद्वारा दशांग होम करनेसे शान्ति हुआ करती है। रोगी के मस्तक में भैरवदेव अमृतधारा वर्षण करते हैं- दिन-रात इस रूपमें चिन्तन करनेसे शान्ति होती है।

शुद्धस्फटिकसङ्काशं देवदेवं त्रिलोचनम् ।
चन्द्रमण्डलमध्यस्थं चन्द्रचूड़ं जटाधरम् ।।
चतुर्भुजं वृषारूढ़ं भैरवं तुम्बुरसंज्ञकम् ।
शूलमालाधरं दक्षे वामे पुस्तं सुधाघटम् ।।
सर्वावयवसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।
श्वेतवस्त्रपरिधानं नागहारविराजितम् ।।*

नक्षत्रदोष से उत्पन्न ज्वरका प्रतिकार एक प्रकार से असाध्य

** सरल संस्कृत होनेसे अनुवाद नहीं दिया गया।*

है। एकमात्र हारीतोक्त विधानसे उसका प्रतिकार हो सकता है। जरोत्पत्ति के नक्षत्रकी विवेचना कर उस नक्षत्रोक्त द्रव्य और मन्त्रद्वारा होम करनेसे सभी प्रकार ज्वरकी शान्ति होती है। किन्तु वह अति विराट् व्यापार है। उससे ग्रन्थके कलेवरकी वृद्धि हो जाएगी। हम सर्वज्वरहरण बलिकी प्रक्रिया का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं। एकमात्र उसके अनुष्ठान से जिस किसी नक्षत्रसे उत्पन्न ज्वर होगा, उसकी शान्ति होगी। उससे ग्रन्थकर्त्ता कर्मकर्त्ता दोनों को ही सुविधा होगी। प्रणाली इस प्रकार की है–

ज्वरग्रस्त व्यक्तिकी नवमुष्टि परिमिता तण्डुल ले बलिपिण्ड पाक कर "**ॐ क्लीं ठं ठं भो भो ज्वर शृणु शृणु हन हन गर्ज्ज गर्ज्ज ऐकाहिकं द्वाहिकं त्र्याहिकं चातुराहिकं साप्ताहिकं अर्द्धमासिकं वार्षिकं द्वैवार्षिकं मौहूर्तिकं नैमिषिकं अट अट भट भट हूं फट् अमुकस्य ज्वरं हन हन मुंच मुंच भूम्यां गच्छ गच्छ स्वाहा।**" इस मन्त्रको कहकर बलि प्रदान करना होगा। प्रथमतः तण्डुल-चूर्णद्वारा एक ज्वरमूर्ति (पुत्तलिका) प्रस्तुत कर हरिद्राके द्वारा उसके अंगको रंजित करें और उसके चारों ओर हरिद्राके चार ध्वजद्वारा शोभित कर हरिद्राके रस से पूर्ण चार पुटपात्र स्थापित करें। बादमें इस पुत्तलिका को गन्धपुष्पद्वारा भूषित कर बलि प्रदान करें। बादमें "**ॐ अद्येत्यादि अमुक गोत्रस्य अमुकस्य उत्पन्नज्वरक्षयाय तन्नक्षत्राय एष रचितपुत्तलकया बलिर्नमः**" इस मन्त्रसे इस प्रतिमूर्तिको उत्तर दिशामें विसर्जित करें। यथा–

एतद्दिनत्रयं कुर्यात् ज्वररोगोपशान्तये

–कामरत्नतन्त्र

बलि प्रदानके बाद नक्षत्रको आचमनीय प्रदानपूर्वक रोगीके हृदयको स्पर्शकर '**भो भो ज्वर शृणु शृणु हन हन गर्ज गर्ज**

T

ऐकाहिकं द्वाहिकं त्र्याहिकं चातुराहिकं साप्ताहिकं मासिकं अर्द्धमासिकं वार्षिकं द्वैवार्षिकं मौहूर्त्तिकं नैमिषिकम् अट अट भट भट हूँ फट् वज्रपाणि राजा ॐ शिरो मुञ्च कण्ठं मुञ्च वाहूं मुञ्च उदरं मुञ्च कटिं मुञ्च उरुं मुञ्च भूम्यां गच्छ शृणु शृणु अमुकस्य ज्वरं हन हन हूं फट्'' इस मन्त्रका पाठ करते करते उसका शरीर मार्ज्जन करें। बादमें इस मन्त्रको भूर्ज्जपत्रमें अलक्तक द्वारा लिखकर रोगीकी शिखामें बंधन कर देगा।

इस प्रक्रिया से सर्वप्रकार दूषित ज्वर निश्चय आरोग्य होगा। शिववाक्य में सन्देह नहीं है।

आपदुद्धार

प्रत्यह रातमें यथानियम आपदुद्धार कवचका पाठ करने से सर्वापद शान्ति हो जाती है। प्रथमतः अंगन्यास करन्यास कर बटुकभैरवका ध्यान करके प्रहृष्ट चित्तसे उनका **''ॐ ह्रीं बटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु कुरु बटुकाय ह्रीं''** इस मन्त्रका जप करने से सर्वापद विनष्ट होकर काम्य विषय प्राप्त किया जा सकता है। इस कवचके पाठसे सभी प्रकारके रोग, दूषित ज्वर, भूत-प्रेतादिका भय, चौराग्निका भय, ग्रहभय, शत्रुभय, मारीभय, राजभय प्रभृत्ति विनष्ट होकर सर्व सौभाग्यका उदय होता है। जो व्यक्ति इस कवचका पाठ करता है, पाठ कराता है, अथवा श्रवण और पूजन करता है, उसका सर्वापद शान्त होकर सुख; सम्पद, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और पुत्रपौत्रादि की वृद्धि पाता है। यहाँ तक कि वह मनुष्य सुदुर्लभ इष्टसिद्धि प्राप्त कर सकता है। नीचे कवच को यथाविध उद्धृत करते हैं। संस्कृतांश सरल होनेके कारण उसका

T

अनुवाद प्रदत्त नहीं हुआ। इनमें ही पाठ का नियम, ध्यान, मन्त्र, न्यास और फलश्रुति की विवृति है; इसी कारण हमने और पृथक् ढंग से उसे उद्धृत नहीं किया। कवच यथा–

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम्।
शङ्करं परिपप्रच्छ पार्वती परमेश्वरम्।।

श्रीपार्वत्युवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रागमादिषु।
आपदुद्धरणं मन्त्रं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम्।।
सर्वेषाञ्चैव भूतानां हितार्थं वाञ्छितं मया।
विशेषतस्तु राज्ञां वै शान्तिपुष्टिप्रसाधनम्।।
अंगन्यास-करन्यास-बीजन्यास-समन्वितम्।
वक्तुमर्हसि देवेश मम हर्षविवर्द्धनम्।।

श्रीभगवानुवाच

शृणु देवि महामन्त्रमापदुद्धारहेतुकम्।
सर्वदुःखप्रशमनं सर्वशत्रुनिवर्हणम्।।
अपस्मारादिरोगाणां ज्वरादीनां विशेषतः।
नाशनं स्मृतिमात्रेण मन्त्रराजमिमं प्रिये।।
ग्रहराजभयानांच नाशनं सुखवर्द्धनम्।
स्नेहाद्वक्ष्यामि ते मन्त्रं सर्वसारमिमं प्रिये।।

T

सर्वकामार्थदं मन्त्रं राज्यभोगप्रदं नृणाम् ।
आपदुद्धरणं मन्त्रं वक्ष्यामीति विशेषतः ।।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य देवीप्रणवमुद्धरेत् ।
वटुकायेति वै पश्चादापदुद्धरणाय च ।।
कुरुद्वयं ततः पश्चाद्वटुकाय पुनः क्षिपेत् ।
देवीप्रणवमुद्धृत्य मन्त्रोद्धारमिमं प्रिये ।।
मन्त्रोद्धारमिमं देवि त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ।
अप्रकाश्यमिमं मन्त्रं सर्वशक्तिसमन्वितम् ।।
स्मरणादेव मन्त्रस्य भूतप्रेतपिशाचकाः ।
विद्रवन्ति भयार्त्ता वै कालरुद्रादिव प्रजाः ।।
पठेद्वा पाठयेद्वापि पूजयेद्वापि पुस्तकम् ।
नाग्निचौरभयं वापि ग्रहराजभयं तथा ।।
न च मारीभयन्तस्य सर्वत्र सुखवान् भवेत् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रपौत्रादिसम्पदः ।।
भवन्ति सततं तस्य पुस्तकस्यापि पूजनात् ।

श्रीपार्वत्युवाच

य एष भैरवो नाम आपदुद्धारको मतः ।
त्वया च कथितो देव भैरवः कल्प उत्तमः ।।
तस्य नामसहस्राणि अयुतान्यर्बुदानि च ।
सारमुद्धृत्य तेषां वै नामाष्टशतकं वद ।।
यस्तु संकीर्त्तयेदेतत् सर्वदुष्टनिवर्हणम् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति साधकः सिद्धिमेव च ।।

T

श्रीभगवानुवाच

श्रणु देवि प्रवक्ष्यामि भैरवस्य महात्मनः ।
आपदुद्धारकस्येह नामाष्टशतमुत्तमम् ।।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वापद्विनिवारकम् ।
सर्वकामार्थदं देवि साधकानां सुखावहम् ।।
देहांगन्यासनञ्चैव पूर्वं कुर्यात् समाहितः ।
भैरवं मूर्ध्नि विन्यस्य ललाटे भीमदर्शनम् ।।
अक्ष्नोर्भुताश्रयं न्यस्य वदने तीक्ष्णदर्शनम् ।
क्षेत्रदं कर्णयोर्मध्ये क्षेत्रपालं हृदि न्यसेत् ।।
क्षेत्राख्यं नाभिदेशे तु कट्यां सर्वाघनाशनम् ।
त्रिनेत्रमुर्वोर्विन्यस्य जंघयो रक्तपाणिकम् ।।
पादयोर्देवदेवेशं सर्वांगे बटुकं न्यसेत् ।
एवं न्यासविधिं कृत्वा तदनन्तरमुत्तमम् ।
पठेदेकमनाः स्तोत्रं नामाष्टशतसंज्ञकम् ।।
नामाष्टशतकस्यापि छन्दोऽनुष्टुवुदाहृतम् ।
बृहदारण्यको नाम ऋषिश्च परिकीर्त्तितः ।
देवता कथिता चेह सद्भिर्वटुकभैरवः ।।
सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थं विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।
भैरवो भूतनाथश्च भूतात्मा भूतभावनः ।।
क्षेत्रदः क्षेत्रपालश्च क्षेत्रज्ञः क्षत्रियो विराट् ।
श्मशानवासी मांसाशी खर्पराशी मखान्तकृत् ।।
रक्तपः प्राणपः सिद्धः सिद्धिदः सिद्धसेवितः ।
करालः कालशमनः कलाकाष्ठातनुः कविः ।।
त्रिनेत्रो बहुनेत्रश्च तथा पिंगललोचनः ।

शूलपाणिः खड्गपाणिः कंकाली धूम्रलोचनः ।।
अभीरुभैरवो भीमो भूतपो योगिनीपतिः ।
धनदो धनहारी च धनपः प्रतिभाववान् ।।
नागहारो नागकेशो व्योमकेशो कपालभृत् ।
कालः कपालमाली च कमनीयः कलानिधिः ।।
त्रिलोचनोज्वलन्नेत्रस्त्रिशिखी च त्रिलोकपात् ।
त्रिवृत्तनयनो डिम्भः शान्तः शान्तजनप्रियः ।।
बटुको बटुकेशश्च खट्वाङ्गवरधारकः ।
भूताध्यक्षः पशुपतिर्भिक्षुकः परिचारकः ।।
धूर्तो दिगम्बरः शौरिर्हरिणः पाण्डुलोचनः ।
प्रशान्तः शान्तिदः शुद्धः शंकरः प्रियबान्धवः ।।
अष्टमूर्तिर्निधीशश्च ज्ञानचक्षुस्तमोमयः ।
अष्टाधारः कलाधारः सर्पयुक्तः शशिशिखः ।।
भूधरो भूधराधीशो भूपतिर्भूधरात्मकः ।
कङ्कालधारी मण्डी च नागयज्ञोपवीतवान् ।।
जृम्भणो मोहनः स्तम्भो मारणः क्षोभनस्तथा ।
शुद्धनीलाञ्जनप्रख्यदेहो मुण्डविभूषितः ।।
बलिभुक् बलिभूतात्मा कामी कामपराक्रमः ।
सर्वापत्तारको दुर्गो दुष्टभूतनिषेवितः ।
कालः कलानिधिः कान्तः कामिनीवशकृद्वशी ।
सर्वसिद्धिप्रदो वैद्यः प्रभविष्णुः प्रभाववान् ।।
अष्टोत्तरशतं नाम भैरवस्य महात्मनः ।
मया ते कथितं देवि रहस्यं सर्वकामदम् ।।
य इदं पठति स्तोत्रं नामाष्टशतमुत्तमम् ।
न तस्य दुरितं किंचिन्न रोगेभ्यो भयं तथा ।।

T

न शत्रुभ्यो भयं किंचित् प्राप्नोति मानवः क्वचित् ।
पातकानां भयं नैव पठेत् स्तोत्रमनन्यधीः ।।
मारीभये राजभये तथा चौराग्निजे भये ।
औत्पातिके महाघोरे तथा दुःस्वप्नजे भये ।।
बन्धने च महाघोरे पठेत् स्तोत्रं समाहितः ।
सर्वे प्रशमनं यान्ति भयाद् भैरवकीर्त्तनात् ।।
एकादशसहस्रन्तु पुरश्चरणमिष्यते ।
त्रिसन्ध्यां यः पठेद्देवि संवत्सरमतन्द्रितः ।।
सिद्धिं प्राप्नुयादिष्टां दुर्लभामपि मानुषः ।
षन्मासान् भूमिकामस्तु स जप्त्वा लभते महीम् ।
राजा शत्रुविनाशाय जपेन्मासाष्टकं पुनः ।
रात्रौ वारत्रयञ्चैव नाशयत्येव शत्रुकान् ।।
जपेन्मासत्रयं रात्रौ राजानं वशमानयेत् ।
धनार्थी च सुतार्थी च दारार्थी यस्तु मानवः ।।
पठेद्वारत्रयं यद्वा वारमेकं तथा निशि ।
धनं पुत्रांस्तथा दारान् प्राप्नुयान्नात्र संशयः ।।
भीतो भयात् प्रमुच्येत देवि सत्यं न संशयः ।
यान् यान् समीहते कामांस्तांस्तां प्राप्नोति नित्यशः ।।
अप्रकाश्यमिदं गुह्यं न देयं यस्य कस्यचित्।
सुकुलीनाय शान्ताय ऋजवे दम्भवर्जिते ।।
दद्यात् स्तोत्रमिदं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ।
ध्यानं वक्ष्यामि देवस्य यथा ध्यात्वा पठेन्नरः ।।
शुद्धस्फटिकसंकाशं सहस्रादित्यवर्चसम् ।
अष्टबाहुं त्रिनयनं चतुर्बाहुं द्विबाहुकम् ।।
भुजङ्गमेखलं देवमग्निवर्णशिरोरुहम् ।

दिगम्बरं कुमारीशं बटुकाख्यं महाबलम् ।।
खट्वाङ्गमसिपाशञ्च शूलञ्चैव तथा पुनः ।
डमरुञ्च कपालञ्च वरदं भुजगं तथा ।।
नीलजीमूतसङ्काशं नीलाञ्जनसमप्रभम् ।
दंष्ट्राकरालवदनं नूपुराङ्गदसङ्कुलम् ।।
आत्मवर्णसमोपेतसारमेयसमन्वितम् ।
ध्यात्वा जपेत् सुसंहृष्टः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।।
एतत् श्रुत्वा ततो देवी नामाष्टशतमुत्तमम् ।
भैरवाय प्रहृष्टाभूत् स्वयञ्चैव महेश्वरी ।।
इति विश्वसारे आपदुद्धारकल्पे बटुकभैरवस्तवराजः ।

कतिपय मन्त्रों की आश्चर्य क्रिया

साधारण गृहस्थ व्यक्ति के नित्य-नैमित्तिक उपकार के लिए हम सिद्धमन्त्रों का संग्रह कर नीचे लिखते हैं। किस कार्य में किस प्रकार प्रयोग में लाया जाएगा, उसे भी लिखा जाता है। इन सिद्धमन्त्रों को व्यवहार में लाने के लिए पुरश्चरण की आवश्यकता नहीं है। केवल अधिकारानुयायी व्यक्ति यथायथ व्यवहार कर सकने पर फल प्राप्त करेगा। नित्यनैमित्तिक क्रियावान् तान्त्रिक साधक ही इन मन्त्रों के प्रयोग के अधिकारी हैं; अन्य की आशा दुराशामात्र है। मन्त्र और उनके प्रयोग नीचे दिये गये हैं :-

१. किसी के ऊपर देवगण क्रुद्ध हों तो- **ॐ शान्ते प्रशान्ते सर्वक्रोधोपशमने स्वाहा''** इस मन्त्रका २१ बार जप कर मुख धोएँ। तब उनके क्रोध उपशम होगा और वे प्रसन्न होंगे।

२. **"क्रीं ह्रीं ॐ ह्रीं ह्रीं।"** इस मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित कर लोष्ट्र निक्षेप करने से व्याघ्र की गतिशक्ति नष्ट हो जाएगी; उपरान्त वह मुख-व्यादान नहीं कर सकता।

३. **"ॐ ह्रीं ख्रीं ह्रीं छ्रीं ह्रीं ठ्रीं ह्रीं फ्रीं ह्रीं"** इस मन्त्रका जो व्यक्ति हृदयक्षेत्रमें एकाग्ररूपसे जप करता, उसके सर्वप्रकारके अनिष्ट नष्ट हो जाएँगे। अपने हाथसे रक्तवर्ण फूलकी माला गूँथकर देवीके उद्देश्यसे भक्तिभाव सहित प्रत्यह सौ बार इस मन्त्रका जप करनेसे चिरकालतक सुखपूर्वक काल यापन किया जा सकता है।

४. प्रत्यह शुद्धचित्तसे भैरवीका ध्यानकर **"ॐ क्ष्रीं क्ष्रीं क्ष्रीं क्ष्रीं क्ष्रीं फट्"** इस मन्त्रको पाँच सौ बार जप करनेसे सर्वतो भावसे मंगल होता है। इस मन्त्रके साधककी नित्य शुद्ध फल प्राप्त होता है, वह व्यक्ति सपरिवार परम शान्ति लाभ करेगा।

५. **"ॐ हुं कारिणी प्रसव ॐ शीतलां"** इस मन्त्र से तृणादिको अभिमन्त्रित कर गाभी और महिषी को खिलाने पर उनका दूध बहुत अधिक बढ़ जाता है।

६. श्वेत मदारका मूल पुष्यनक्षत्र में आहरण कर एक अंगुष्ठप्रमाण का काष्ठ खंडमें गणपतिकी प्रतिमूर्ति निर्माण करें। उसके बाद हविष्याशी होकर अति संयतचित्त और भक्ति भावसे **"ॐ पञ्चान्तकं अन्तरीक्षाय स्वाहा"** इस मन्त्रसे करवीपुष्प चन्दनादि द्वारा अर्चना करें। पूजाके अन्तमें रक्तकरवी पुष्पमें घृत-मधु मिलाकर **"पञ्चान्तकं शशधरं बीजं गणपतेर्विदुः ॐ ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा"** इस मन्त्रसे होम करें। जितेन्द्रिय और संयत होकर एक माह तक इस प्रकार करना होगा। इस पर देव गणपति वांछित फल प्रदान करेंगे।

७. "ॐ ह्रीं हयशीर्ष वागीश्वराय नमः" और "ॐ महेश्वराय नमः" इस दो मन्त्रों में किसी एक को यथानियम प्रत्यह जप करने से वाग्मी और कवि हुआ जा सकता है।

८. कृकलास की अधर शिखामें बंधनकर "ॐ नाभि वेगे उर्वशी स्वाहा" इस मन्त्रके जप करते हुए भोजन के लिए बैठने पर अपरिमित भोजन किया जा सकता है।

९. कुछ सर्षप लेकर "ॐ ॐ ह्रौं ह्रौं हः हः फट् स्वाहा" इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर रोगीके गात्र पर निपेक्ष करने से सभी प्रकार के ग्रहदोष दूर होंगे।

१०. "ॐ नमो नरसिंहाय हिरण्यकशिपुवक्षोविदारणाय त्रिभुवन-व्यापकाय भूत-प्रेत-पिशाच-डाकिनी-कुलोन्मूलनाय स्तम्भोद्भेदाय समस्त दोषान् हर हर विसर विसर पच पच हन हन कम्पय कम्पय मथ मथ ह्रौं ह्रौं फट् फट् ठः ठः एह्येहि वज्र आज्ञापयति स्वाहा" इस नृसिंहदेव के मन्त्र पाठ करने से भूत-प्रेतादि भय दूर होता है। भूतादिका आवेश भी सम्पूर्ण रूपसे नष्ट होगा।

११. प्रत्यह समाहितभावसे "ॐ भगवते रुद्राय चण्डेश्वराय हूँ हूँ फट् फट् स्वाहा" इस मन्त्रके जप करने से किसी प्रकार दैवी विपद्की आशंका नहीं रहती।

१२. "ॐ दृष्टकर अदृष्टकर कालिंगनाग हरनाग सर्पदुण्डी, विसुदाढ़ बन्धनं शिवगुरुप्रसादात्" इस मन्त्रका सातबार पाठ करके अपने परिधेय वस्त्र में ग्रन्थि दें। वह वस्त्र जब तक शरीर पर रहेगा तब तक सर्पादि नहीं काटेंगे।

१३. प्रत्यह भोजनके बाद आचमनके अन्तमें- "शर्यातिञ्च सुकन्याञ्च च्यवनं सत्वरमश्विनम्। भोजनान्ते स्मरेद्यस्तु तस्य चक्षुः

प्रसीदति।।'' इस मन्त्रके पाठपूर्वक सात गण्डूष जल अभिमन्त्रित कर चक्षुमें छींटा दे। इससे चक्षुरोग उत्पन्न नहीं होगा।

१४. **''ॐ नमो भगवते छिन्दि छिन्दि अमुकस्य शिरःप्रज्वलित पशुपाशे पुरुषाय फट्।''** इस मन्त्रके पाठपूर्वक अस्त्रद्वारा मृत्तिकाका छेदन करने पर- सब प्रकारके ज्वर नष्ट हो जाते हैं। अमुक स्थल पर रोगीका नाम देना होगा।

१५. प्रत्यह आहार के बाद आचमनके अन्तमें **''वातापिर्भक्षितो येन पीतो येन महोदधिः। यन्मया खादितं पीतं तन्मेऽगस्त्यः दरिष्यतु।''** इस मन्त्रको पाठ करके उदर पर सातबार हाथ रखेगा। इससे भुक्तद्रव्य जीर्ण होगा; कभी भी अजीर्णादि रोग नहीं होगा और निमन्त्रण आदि में गुरुपाक भोजन करने पर भी इस प्रक्रियासे अतिशीघ्र जीर्ण हो जाता है।

पाठक! और कितना लिखा जाय! इस प्रकार के क्षुद्र और गृहस्थों के नित्य प्रयोजन के कितने विषय इस तन्त्रशास्त्रमें स्थान पाए हैं– विचार करने पर विस्मयसे विमूढ़ होना पड़ता है। तन्त्रकारने द्रव्यगुण से आरम्भ कर रसायन, बाजीकरण, शान्ति, पुष्टि; क्रूरकर्म क्षुद्र क्षुद्र साधनों से देव-देवीके उच्च्व साधना, सर्वशक्ति आयत्तीकरण प्रभृत्ति सर्व विषयों पर प्रकाश डालकर मनुष्यको नई दृष्टि दी है। आज भी पाश्चात्यविज्ञान हरिताल अथवा पारदके व्यवहार से परिचित नहीं किन्तु बहुत पुर्वसे ही तन्त्रकार ने उनकी व्यवहार प्रणालीको प्रकृष्टरूप से स्पष्ट किया है। आज भी उनके फलसे साधु-सन्यासियों में स्वर्णादि प्रस्तुत करने की प्रणाली गुप्तरूपसे रक्षित है। हमारी इस पुस्तकका प्रतिपाद्य विषय- तन्त्रकी साधनासे ब्रह्मज्ञान लाभ, तथापि साधारण की परिक्षाके लिए कुछ तदतिरिक्त विषयों को परिशिष्ट में दिया गया है। साधना कर परीक्षान्तमें इसकी सत्यता की उपलब्धि साधक करें। अभी–

उपसंहार

के समय दीन ग्रन्थकारका निवेदन है कि पाठक! तन्त्रके मर्मको जाने बिना तन्त्रकी उपेक्षा न करें। तन्त्रशास्त्रके सदृश और कोई शास्त्र इस प्रकार साधना-प्रणालियों पर प्रकाश नहीं डाल पाये हैं। तन्त्रशास्त्र साधनाओं के कल्प-भण्डार है; जो जिस पदार्थ को चाहेगा तन्त्रशास्त्र उसको वही प्रदान करेगा। तन्त्रशास्त्र सर्वाधिकारी जनगणको अपने अंक में आश्रय देकर समान भावसे सभी के अभाव को पूर्ण करता है। वही तन्त्रज्ञ साधक कहते हैं–

येऽभ्यस्यन्ति इदं शास्त्रं पठन्ति पाठयन्ति वा ।
सिद्धयोऽष्टौ करे तेषां धनधान्यादिमन्नराः ।।
आदृताः सर्वलोकेषु भोगिनः क्षोभकारकाः ।
आप्नुवन्ति परं-ब्रह्म सर्वशास्त्रविशारदाः ।।

–तन्त्रसार

जो इस शास्त्रका अभ्यास करते हैं, पाठ करते हैं अथवा पाठ करवाते हैं–उनके हाथ में अष्टसिद्धि आ जाती है। विशेषत: वे धनधान्यादिसे सम्पन्न, सर्वलोकमें समादृत, उत्तम भोगशाली, शत्रु क्षोभकारी और सर्व-शास्त्र विशारद होकर अन्तमें परब्रह्म की प्राप्ति करते हैं।

पाठक! तुम अपने पूर्वपुरुषगण–अर्जित रत्न-राजिका अनुसन्धान न कर सकने के कारण सब विकृत मस्तिष्ककी कल्पना कहकर निश्चिन्त होकर बैठे हो; और सुदूर अमेरिकाके समुन्नत सभ्य प्रदेशमें उदार अनुसंधानकर्त्ता शिक्षित समाजने उस तन्त्रशास्त्रको किस अद्भुत विश्वास, भक्ति और क्रियाका नवयुग उत्पन्न किया है और हम उसी उच्च शिक्षा और विश्वास को छोड़कर आज किस प्रकार का परमुखापेक्षी और भीषण आत्मप्रवञ्चक होकर पड़े हैं– उस पर विचार करने से क्या लज्जा नहीं आती? यह देखो अमेरिकाके "International journal

of the Tantrik Order in America" नामक मासिक पत्र के पञ्चम खण्ड प्रथम संख्या में प्रकाशित सम्पादकीय ("The Fifth Veda"– Theory and Practice of Tantra) प्रबन्धक में एक स्थल पर Carl grant zollner महोदय लिखित तन्त्रविषय किस प्रकार की गवेषणा उद्धृत हुई है–

Tantriks devote their whole life and energy to the fearless investigation of Truth. Under the direction of what are considered to be the greatest teachers in the world, the initiated undergoes a course of training which modifies his organization from a Psychological, as well as a Physiological point of view. If the imagination be diseased, it is with a sudden. jerk, restored to its equilibrium.

"The method of the Tantrik is to test everything to its final analysis and receive a truth nothing to whose entity can be seen with absolute certainty with this knowledge. Tantrik literature is presented to the public in the sincere belief that it will do good, in the hope that it will enable all to perceive and to feel more deeply, certain things which, neglected, constitute the cause of lasting sorrow amongst those that should be happy. The Tantra itself, is very bold. But its boldness is its beauty, for it is the boldness of chastity, of a lofty and tender morality, for which we must drop pride and speak of things as they are. Religion in its higher sense as every man sees it is to him not only a rule of action, by which he lives and progresses, but it formulates the rule by which he must die and pass in to the mysterious realms of a future life. It is the study and consideration of the most ancient and profound religions that the attention on reverent and conscientionas minds is

invited. Those who are at liberty to develop themselves freely will seldom molest themselves about the opinions of the seers. Mystic philosophers do not clash but arrive at like conclusions by different routes and by the exercise of differnt faculties of mind.

–Carl Grant Zollner

उस प्रबन्ध के पास में सम्पादक ने स्वयं टीका की है।

"Whosoever loves his own opinions and fears to lose them, who looks with disfavour on new truth, should close this journal, it is useless and dangerous for him, he will understand it badly, and it will vex him" ठीक बात।

अन्य स्थल पर सम्पादक स्वयं कहते हैं–

"This Tantrik science is the essence of Vedas" "The Tantras are the fifth Vedas"

"Tantra–From the Sanskrit tan, to believe, to have faith in, hence, literally, an instrument or means of faith, is the name of the sacred works of the worshippers of the famale energy of God Shiva"

–International Cyclopadia, 1894.

महामहोपाध्याय पण्डित मोक्षमूलर (Max Muller) कोंत (Comte) हरबर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) प्रभृति प्रसिद्ध दार्शनिकों के मत उद्धृत कर-सम्पादक ने किस प्रकार सुन्दर युक्तिपूर्ण ढंग से तन्त्र की उपयोगिता और उसको प्राधान्य प्रतिपन्न किया है। उन्होंने म्लेच्छाचारी होने पर भी जिस प्रकार से तन्त्र की उपलब्धि की है, हम सात्त्विक होने पर भी मानो उसे हृदयङ्गम कर ही नहीं सकते। हमने साधना से तन्त्र में व्यभिचार को लाकर तन्त्र को बीभत्स बना डाला है। यह यथार्थ ही काल का प्रभाव है, उसमें और सन्देह नहीं। तब उन्होंने तन्त्र के प्रतिपाद्य विषय में यहाँ तक उपलब्धि की है–वही सम्पूर्ण नहीं;

विशुद्धब्रह्मानन्दप्रदब्रह्मज्ञान का पथ ही तन्त्र का चरम लक्ष्य है। तब हमारा देशी साधक-समाज तन्त्र की शृंङ्खलाबद्ध-साधना में जिस प्रकार पथभ्रष्ट होकर इच्छानुकूल पथ से परिचालित हुए हैं, अमेरिका का "Tantrik Order" (तान्त्रिक ऑर्डर) उस प्रकार उच्छृङ्खल नहीं हुआ है। वे प्रकृत पथ अवलम्बन करके ही अग्रसर हुए हैं। ज्ञान और योगके गुरु थियोसफिस्ट सम्प्रदाय-सदृश हो सकता है कि एक दिन वे ही हमारे गुरुरूप में भारत आकर हम लोगों को तन्त्र-रहस्य विषय में उपदेश और साधना-प्रक्रिया की शिक्षा देंगे। सभी वह अघटन-घटन-पटीयसी महामाया की इच्छा।

ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय कर तन्त्र की साधना प्रणाली सन्निविष्ट हुई है। अद्वैत ब्रह्मज्ञान ही तन्त्र का चरमलक्ष्य है; भक्ति और कर्म की सहायता से उस ज्ञान को प्राप्त करना होगा। हमने भी इस ग्रंथ में उसी पर प्रकाश डाला है। साधना कर पाठक अपनी मर्मोपलब्धि करेंगे। तन्त्र की सारकथा यह है कि जो मनुष्य कामना-शून्य होकर देवता के प्रति भक्तिपरायण होता है, भगवान् उसको मुक्ति प्रदान करते हैं। सकाम उपासकों को सायुज्यरूप मुक्ति प्राप्त होती है—निर्वाण नहीं और जो कामनाशून्य होकर देवाराधना करते हैं, वे निर्वाणमुक्ति प्राप्त करते हैं, फिर जन्मादि यन्त्रणा नहीं भोगनी पड़ती।

मुर्ध्ना प्रतिच्छते दैवस्तत्कामेन द्विजोत्तमः।।

—शाक्तानन्द-तरंगिणी

इस वचन द्वारा प्रतिपादित हुआ है कि अन्य कामना कर जो कर्म किया जाता हैं, वह भोगनाश्य विधा में निष्फल है और देवता प्रीति की कामना कर जो कर्म किया जाता है, वह शरीरारम्भक, दूर दृष्ट-विशेषात्मक, लिंगशरीर-नाशक विधि से सफल है। इस कारण लिंग-शरीर नष्ट हुए बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। कर्मक्षय होने से

ही ज्ञान का प्रकाश होता है। बिना ज्ञान के लिंगशरीर के नाश का कोई उपाय नहीं। इसलिये लिंगशरीरनाशक वह ज्ञान ही तन्त्र का चरम लक्ष्य है। इसी से तन्त्रकार जलदगम्भीर स्वर में कहते हैं–

विहाय नामरूपाणि नित्ये ब्रह्मणि निश्चले।
परिनिश्चिततत्त्वो यः स मुक्तः कर्मबन्धनात्।।
न मुक्तिर्जपनाद्धोमादुपवासशतैरपि।
ब्रह्मैवाहमिति ज्ञात्वा मुक्तो भवति देहभृत्।।

–महानिर्वाणतन्त्र

जो व्यक्ति नामरूपादि परित्याग कर नित्य निश्चल ब्रह्मतत्त्व को निरूपण कर सकता है, वह व्यक्ति कर्मबन्धन से मुक्त हो सकता है। जब तक पुत्र अथवा देहादि में अपनत्व का ज्ञान रहता है, तब तक सैकड़ों बार जप, होम, उपवास करने पर भी मुक्ति नहीं हो सकती है। किन्तु "मैं ब्रह्म हूँ" इस प्रकार ज्ञान के उत्पन्न होने से देही मुक्त होता है।

पाठक! देखो, तन्त्रशास्त्र ने किस प्रकार मुक्तिपथ का प्रदर्शन किया है। अभी भी क्या कहना है–तन्त्र ब्रह्मज्ञान में अदूरदर्शी था? कभी भी नहीं। वरन् तन्त्र ने सर्वसाधारण को शनैः-शनैः प्रवृत्ति मार्ग से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के उपाय को बतलाया है। इसलिये तन्त्रज्ञानाभिज्ञ परानुकरणकारी उच्छृङ्खल व्यक्ति के वाक्यविन्यास में मुग्ध न होकर धीर और स्थिर चित्त से तन्त्र की साधना में नियुक्त हो; देखोगे कि मन में अपार आनन्द और शक्ति का उदय होगा। दिन-दिन मुक्तिपथ से होकर मर्त्य में भी अमरत्व प्राप्त कर सकेगा। मैं भी संसार-सागर-निमग्न प्राणियों की मुक्ति के पोत-स्वरूपा हरि-हरविधिसेविता, जन्म-मरणभय-निवारिणी, भुक्ति-मुक्ति-प्रदायिनी उस शवशिरोधरा, रण-दिगम्बरा, सुरारिकुलघातिनी, सर्वार्थसाधिनी, हरउरोविहारिणी ब्रह्ममयी को ब्रह्म के सहित अभेद-ज्ञान सहित उनका शमनलाञ्छित, विरञ्चि-

वाञ्छित अतुलरातुल पदद्वन्द्वारविन्द में प्रणतिपूर्वक पाठकवर्ग के निकट से विदा ग्रहण करता हूँ।

ॐ नमस्ते परमं ब्रह्म नमस्ते परमात्मने।
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सद्रूपाय नमो नमः।।

ॐ तत् सत्

सम्पूर्ण

श्रीश्रीकृष्णार्पणमस्तु

T

परमहंस परिव्राजकाचार्य अनन्तश्री

स्वामी निगमानन्द सरस्वतीजी का

अमर अवदान तथा श्री श्रीनिगमानन्द विद्यानिकेतन से प्रकाशित व उपलब्ध ग्रन्थावली

१. योगीगुरु या योग और साधना की पद्धतियाँ : इस ग्रन्थ में सहज उपाय से योग-साधना की पद्धतियाँ सरल भाषा में वर्णन की गयी हैं। यह पुस्तक चार कल्प में विभाजित है–

योगकल्प में साधन-पद्धतियों का संग्रह, योग क्या है, शरीर-तत्त्व, हँसतत्त्व, प्राणतत्त्व, कुलकुण्डलिनी-तत्त्व, योगतत्त्व, योग के अङ्ग, योग के प्रकार, भेद इत्यादि विषयों का उल्लेख है।

साधनाकल्प में आसन-साधन, तत्त्व-साधन, नाडी-शोधन, त्राटकयोग, आत्मज्योति:दर्शन, इष्टदेवता, मुक्ति आदिका विवेचन हैं।

मन्त्रकल्प में दीक्षा-प्रणाली, सद्गुरु, मन्त्र-तत्त्व, मन्त्र-चैतन्य, मन्त्रसिद्धि का सहज उपाय आदि का वर्णन है।

स्वरकल्प में साँस का स्वाभाविक नियम, साँस का फल, वशीकरण, दवा के बिना रोगों से छुटकारा, चिरयौवन लाभ का उपाय आदि के उल्लेख हैं। *हिन्दी चौथा संस्करण,* *मूल्य ४०.०० रुपये*

२. ज्ञानीगुरु अथवा ज्ञान और साधना-पद्धति : इस ग्रन्थ में ज्ञान और योग के उच्च अङ्गों की विशद रूप में विवेचना की गयी है। यह पुस्तक तीन काण्डों में विभक्त हैं–

नानाकाण्ड में धर्म क्या है? धर्म की प्रयोजनीयता, गुरु की आवश्यकता और शास्त्र-विचार, तन्त्र-पुराण, सृष्टितत्त्व और देवता रहस्य, एकेश्वरवाद और कुसंस्कार-खण्डन, द्वैताद्वैत-विचार, कर्मफल एवं जन्मान्तरवाद आदि हैं।

ज्ञानकाण्ड में ज्ञान क्या है? ज्ञान का विषय, साधनचतुष्टय, अनन्तरूप वर्णन, समाधि-अभ्यास, ज्ञानयोग तथा ब्रह्मनिर्वाण आदि का उल्लेख है।

T

साधनाकाण्ड में साधना का प्रयोजन, मायावाद, कुण्डलिनी-

साधना, अष्टाङ्गयोग और उसकी साधना, प्राणायाम-साधना, प्रकृति पुरुष योग, योनिमुद्रा-साधना, भूतशुद्धि की साधना, जीवन्मुक्ति, योगबल से देहत्याग आदि है। *मूल्य ५०.०० रुपये*

३. ब्रह्मचर्य साधन या ब्रह्मचर्य पालन की नियमावली– इस पुस्तक में ब्रह्मचर्य साधना की धारावाहिक नियमावली व उनकी उपकारिता सुशृङ्खल और सरल भाषा में विवेचित की गयी है एवं ब्रह्मचर्य रक्षा की बहुत सी योगोक्त साधना-प्रणालियोंका भी वर्णन है।

४. प्रेमिक गुरु – इसमें जीवन की पूर्णतम साधना, प्रेम, भक्ति और मुक्ति का विषय विशद रूप से वर्णित हुआ है।

पूर्वस्कन्ध में– भक्तितत्त्व, साधनभक्ति, भावभक्ति, प्रेमभक्ति, भक्तिविषय में अधिकारी, भक्ति लाभ का उपाय, चैतन्योक्त साधन पञ्चक, पञ्चभाव की साधना, राधाकृष्ण और अचिन्त्यभेदाभेदतत्त्व, शाक्त और वैष्णव, किशोरी भजन, शृङ्गारसाधना इत्यादि।

*उत्तर स्कन्ध में–*भक्ति ही मुक्ति के उपाय का स्वरूप लक्षण, वेदान्तोक्त निष्ठा में मुक्ति, मुक्तिलाभ का उपाय, संन्यासाश्रम ग्रहण, अवधूतादि संन्यास, संन्यासी का कर्त्तव्य, भगवान् शङ्कराचार्य और तद्धर्म, आचार्य शङ्कर और गौराङ्गदेव, भगवान् रामकृष्ण, जीवन्मुक्त अवस्था इत्यादि है। *मूल्य– ५०.०० रुपये*

५. माँ की कृपा– इस पुस्तक में एक साधक ने किस प्रकार से साधना करके जगज्जननी का दर्शन पाया और जगन्माता अपने श्रीमुख से जो उपदेशामृत दिये उनका पूरा-पूरा वर्णन किया गया है। *मूल्य-१२.००*

६. महायोगी सद्‌गुरु निगमानन्द– तन्त्र योग-ज्ञान और प्रेम इन चारों साधनाओं में सिद्ध परमहंस परिव्राजकाचार्य अनन्तश्री स्वामी निगमानन्द सरस्वतीजी की जीवनी कथा। प्रस्तुत ग्रन्थ में स्वामीजी कैसे गृहत्याग किये? उन्हें जगन्माता 'तारा' जी का दर्शन कैसे मिला? फिर क्रमशः योग-ज्ञान एवं प्रेम की साधनाओं में कैसे अग्रसर हुए? माता अन्नपूर्णा उन्हें कैसी छलना की? इत्यादि विषयों के साथ सम्पूर्ण साधनजीवन का साफ़-साफ विवरण तथा उनके स्वहस्तरचित ज्ञानचक्र दिया गया है। *मूल्य – २०.०० रुपये*

T